लोक-साहित्य की भूमिका

लोक-साहित्य की भूमिका

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय

भूमिका-लेखक
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्व विद्यालय, प्रयाग

साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९५७ ईसवी

साढ़े सात रुपया

मुद्रक : हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

पितृकल्प, ज्येष्ठ भ्राता

प्रो० बलदेव उपाध्याय

के चरण-कमलों में

सादर, सप्रेम, समर्पित

—कृष्णदेव

भूमिका

लोक साहित्य की परंपरा कदाचित् उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी मनुष्य जाति। अब तो यह माना जाता है कि भाषा का उद्गम ही सगीतात्मक था। बाद को धीरे धीरे गद्य-भाषा और संगीत ये तत्व दो। पृथक् महत्त्वपूर्ण सामाजिक सस्थाओ के रूप में विकसित हुए।

किन्तु लोक गीतों, लोक कथाओं, तथा लोकोक्तियों आदि की परम्परा सनातन से मौखिक रही। फलस्वरूप इन क्षेत्रों की प्राचीन सामग्री सुरक्षित नहीं रह सकी। लिपिबद्ध किए जाने के कारण नागरिक साहित्य की परंपरा तो प्रत्येक देश में क्रमबद्ध रूप में मिलती है, किन्तु लोक साहित्य की नहीं।

यूरोप और अमरीका में उन्नीसवीं शताब्दी में लोक भाषा और लोक साहित्य के महत्त्व और अध्ययन की ओर विद्वानों का ध्यान गया था और इस क्षेत्र में पश्चिमी देशों में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। अपने देश में इस क्षेत्र की ओर वर्त्तमान शताब्दी में विद्वान आकर्पित हुए।

हिंदी में इस कार्य का क्रमबद्ध प्रारभ प० रामनरेश त्रिपाठी के ग्राम-गीतों के सकलन और प्रकाशन से हुआ। हिंदी प्रदेश की किसी एक भाषा, व्रजभाषा, के लोक साहित्य का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन डा० सत्येन्द्र ने उपस्थित किया था। इसके बाद तो इस क्षेत्र के कार्य में काफी प्रगति हुई।

कई वर्ष हुए श्री कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोक साहित्य का एक विस्तृत अध्ययन थीसिस के रूप में प्रकाशित किया था। उनकी प्रस्तुत पुस्तक लोक-साहित्य के अध्ययन के सिद्धान्तों की भूमिका के रूप में है और हिंदी में अपने ढग का पहला प्रयास है। इसमें लोक नाट्य को छोड़ कर लोक-साहित्य के शेष समस्त मुख्य रूपों, जैसे लोक गीत, लोक गाथा, लोक-कथा तथा लोकोक्तियों का विवेचन है। लेखक का विशेष अध्ययन भोजपुरी लोक साहित्य का है, अतः यह स्वाभाविक है कि उदाहरणों आदि में भोजपुरी का प्राधान्य हो गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में योग्य लेखक ने कुछ उपयोगी परिशिष्ट भी दिए हैं जिन्हें इस विषय से अभिरुचि रखने वाले पाठक विशेष उपयोगी पावेंगे। हिंदी, अंग्रेजी तथा भारत की अन्य भाषाओं में पायी जाने वाली लोक-

साहित्य सम्बन्धी सामग्री की पूर्ण सूचियाँ लेखक ने दी हैं। इस विषय के व्यापक अध्ययन में ये विशेष सहायक सिद्ध होंगी।

लोक साहित्य के अध्ययन को प्रयाग विश्वविद्यालय ने हिंदी के एम० ए० के पाठ्यक्रम में एक वैकल्पिक प्रश्नपत्र के रूप में स्थान दिया। कुछ अन्य विश्वविद्यालय भी इस परम्परा को अपना रहे हैं। इस विषय के विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत पुस्तक पाठ्य-ग्रंथ का काम दे सकेगी। यों लोक साहित्य में अभिरुचि रखने वाला हिंदी का साधारण पाठक भी पुस्तक को रोचक और उपयोगी पाएगा।

आशा है कि इस ग्रंथ से प्रेरणा लेकर इस विषय पर भविष्य में अधिकाधिक कार्य होगा और लोक साहित्य के सिद्धान्तों पर विस्तृत अध्ययन प्रकाश में आएँगे। इस क्षेत्र में लेखक का यह प्रथम प्रयास अत्यंत सराहनीय है।

धीरेन्द्र वर्मा



प्राक्कथन

लोक-साहित्य अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जन-संस्कृति का जैसा सच्चा तथा सजीव चित्रण इसमें उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र नहीं। सरलता, स्वाभाविकता और सरसता में यह अपना सानी नहीं रखता। लोक-कथा संसार के समस्त कथा-साहित्य का जनक है और लोकगीत सकल काव्य की जननी है। इस कारण लोक-साहित्य की महत्ता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इस देश में लोक-साहित्य का अध्ययन चिर उपेक्षित विषय रहा है। परन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि अब अधिकारी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो रहा है। हिन्दी की विभिन्न बोलियों में उपलब्ध लोक-गीतों, कथाओं, गाथाओं और लोकोक्तियों के संग्रह का प्रयास द्रुत गति से हो रहा है। फल-स्वरूप अनेक ग्रन्थ प्रकाशित भी हुए हैं। प्रयाग तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयों की एम० ए० (हिन्दी) परीक्षा में लोक-साहित्य वैकल्पिक विषय के रूप में स्वीकृत किया गया है। अनेक शोधी छात्र लोक-साहित्य के विभिन्न विषयों को लेकर विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान का कार्य कर रहे हैं। लोक-साहित्य के संकलन तथा सम्यक् सम्पादन के लिए कई लोकसाहित्य-परिषदों की स्थापना हुई है जिनके द्वारा शोध-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती है। इस दिशा में डॉ० डी० एन० मजुमदार एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, मानव-विज्ञान-शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ का प्रयास अत्यन्त स्तुत्य है जिन्होंने "एथ्नोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी" की स्थापना की है। इस संस्था से लोक-गीतों के अनेक अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। डा॰ मजुमदार के सम्पादकत्व में 'इस्टर्न एन्थ्रोपॉलाजिस्ट' नामक एक शोध पत्रिका भी प्रकाशित होती है। 'अवध-भारती', 'ब्रज-भारती', 'मरुभारती', 'राजस्थान भारती', 'भोजपुरी' आदि पत्रिकाओं में लोकसाहित्य सम्बन्धी बहुत सी पठनीय सामग्री आजकल प्रकाशित हो रही है। वर्तमान पुस्तक के लेखक ने अमेरिका, फ्रांस तथा जर्मनी आदि देशों में अपने लेखों को प्रकाशित कर भारतीय लोक-साहित्य के सन्देश को विदेशो में फैलाने का उल्लेख प्रयास किया है। इस प्रकार लोकसाहित्य के अध्ययन के प्रति विद्वत्समुदाय जागरूक दिखायी पड़ता है। अतएव लोक-साहित्य के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की जा सकती है।

लोक-साहित्य के वर्गीकरण की पद्धति, उसका विस्तार, लोक काव्य और अलंकृत काव्य में भेद, लोक-गाथाओं की विशेषताएँ तथा लोक-कथाओं के मूल तत्त्व, लोकोक्तियों और मुहावरों का महत्त्व, बच्चों के खेल, पालने के गीत और मृत्यु सम्बन्धी गीत—इत्यादि जितने भी विषय लोक-साहित्य में अन्तर्भुक्त होते हैं उन सभी विषयों और समस्याओं का समाधान इस ग्रन्थ में किया गया है। इस पुस्तक की रचना लोक-साहित्य के सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में की गयी है। अतएव इसमें लोक-गीत, लोक-गाथा और लोक-कथाओं के मूल तत्त्वों का सन्निवेश करने का प्रयास हुआ है। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य देशों में जो अनुसन्धान हुआ है उसका अध्ययन कर उन पश्चिमी मनीषियों के मतों का भी प्रतिपादन यथास्थान किया गया है। इस पुस्तक के प्रणयन में लेखक ने तुलनात्मक दृष्टि से काम लिया है। भारतवर्ष में जो गीत प्रचलित हैं उसी कोटि का यदि कोई गीत अंग्रेजी साहित्य में उपलब्ध है तो उसे भी उद्धृत किया गया है। पालने के गीत मृत्यु-गीत तथा आवृत्ति मूलक टेक पदों के अध्याय में इस पद्धति का विशेष रूप से अवलम्बन हुआ है। पाद-टिप्पणियों में अंग्रेजी में मूल ग्रन्थों से प्रचुर रूप में उद्धरण दिये गये हैं। इस पुस्तक की प्रामाणिकता के लिए ऐसा करना आवश्यक समझा गया। दूसरा कारण यह भी था कि लोक-साहित्य सम्बन्धी ये अंग्रेजी ग्रन्थ साधारणतया उपलब्ध नहीं होते अतः पाठकों को पुस्तक में आये हुए संकेतों के उद्धरण ग्रन्थ के कलेवर में ही प्राप्त हो जायँ, इस सुविधा की दृष्टि से भी यह समुचित था।

प्रस्तुत ग्रन्थ को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—(१) साधन (२) सिद्धान्त और (३) संस्कृति। 'साधन' वाले अध्याय में लोक-साहित्य के संकलन की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए लोकसाहित्य-संग्रही की योग्यता का वर्णन किया गया है। यही जन-साहित्य—जो गाँवों में बिखरा हुआ है—के संकलन की वैज्ञानिक पद्धति है। उस कला को जान कर ही इस क्षेत्र के कार्यकर्ताओं को इसमें हाथ लगाना चाहिए। संग्रह का काम करते समय किन-किन बाहरी साधनों की आवश्यकता पड़ती है इसका उल्लेख भी संक्षेप में किया गया है जिससे नवीन अनुसन्धान-कर्ताओं को पथ-प्रदर्शन प्राप्त हो सके। 'सिद्धान्त' के अन्तर्गत लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा तथा प्रकीर्ण लोक-साहित्य के मूलतत्त्वों एवं उनकी प्रधान विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत है। इस विवेचन को सुधी-समुदाय के समक्ष उपस्थित करते हुए उदाहरण स्वरूप जो गीत दिये गये

सतत प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है। उन्होंने भूमिका लिखने की कृपा करके प्रस्तुत पुस्तक को महत्त्व प्रदान किया है। डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी० एच० डी० तथा डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डी० लिट् के अनेक सुझावों के लिये मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। ज्येष्ठ भ्राता पं० बलदेव उपाध्याय एम-ए० साहित्याचार्य, रीडर, संस्कृत विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी तथा डॉ० वासुदेव उपाध्याय एम-ए० पी० एच०-डी, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिनकी मंगल-कामना तथा आशीर्वाद ही मेरा बल और सम्बल है। प्रिय चिरंजीव हरि-शंकर जी एम० ए०, विशारद ने इस ग्रन्थ के लेखन में अनेक प्रकार की सहायता पहुँचाई है। अतः वे मेरे आशीष के भाजन हैं। मित्रवर श्री नर्मदेश्वर जी चतुर्वेदी के प्रति किन शब्दों में अपनी भावना प्रकट करूँ जिनके उद्योग से ही यह पुस्तक इतनी शीघ्र और सुन्दर रूप में प्रकाशित हो सकी है।

लोकसाहित्य के सामान्य सिद्धान्तों का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत करने वाला संभवतः यह प्रथम मौलिक ग्रन्थ है। वर्तमान लेखक ने अपने जीवन के अनेक बहुमूल्य वर्षों को लोक-साहित्य के अध्ययन और मनन में बिताया है। अतः यहाँ जो कुछ लिखा गया है वह प्रामाणिकता से युक्त है। केवल पुस्तक के पृ० २१ पर प्रमादवश श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव छप गया है जो वास्तव में श्री पूरनचन्द श्रीवास्तव होना चाहिए। ग्रन्थकर्ता ने 'नामूलं लिख्यते किञ्चित् नानपेक्षितमुच्यते' इस मल्लीनाथी प्रतिज्ञा को निभाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। इस कार्य में उसे कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है इसका निर्णय तो दोषज्ञ वृन्द ही कर सकते हैं। मेरा तो केवल इतना ही निवेदन है कि :—

"आपरितोषात् विदुषां, न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्"

११ जुलाई सन् १९५७ ई०
१०९ लूकरगंज, इलाहाबाद

कृष्णदेव उपाध्याय

विषय-सूची

प्राक्कथन

भूमिका

संकेत-शब्द-सूची

अध्याय १—लोक-साहित्य का संकलन

संग्रह की कठिनाइयाँ—गवैयों का क्रमिक अभाव, पर्दे की प्रथा, पुनरावृत्ति में असमर्थता, गवैये सर्वदा गाने को तैयार नहीं, संकुचित मनोवृत्ति। *लोक-साहित्य-संग्रह-कर्ता के उपादान*—जनता के साथ तादात्म्य भावना, सहानुभूति, अनुसन्धान-चातुरी, जाँचकर किसी तथ्य को स्वीकार करना, स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग, यथा श्रुत तथा लिखितम्, संग्रह की प्रामाणिकता, विभिन्न पाठों का संग्रह, *वाह्य साधन*—नोटबुक, पेन तथा पेन्सिल, केमरा, रेकार्डिङ्ग मशीन। १—११

अध्याय २—हिन्दी की विभिन्न बोलियों मे लोक-साहित्य-सम्बन्धी संग्रह-कार्य।

मिश्रित संग्रह, भोजपुरी, ब्रज, अवधी. राजस्थानी, मारवाड़ी बुन्देलखण्डी, मालवी, कौरवी, छत्तीसगढ़ी, निमाड़ी, मगही, मैथिली लोकगीतों, लोकोक्तियों, कहावतों और कथाओं के संग्रह। १२—२५

अध्याय ३—लोक साहित्य का वर्गीकरण

लोक-गीतों के वर्गीकरण की पद्धति—(१) संस्कारों की दृष्टि से (२) रसानुभूति की प्रणाली से (३) ऋतुओं और व्रतों के क्रम से (४) विभिन्न जातियों के प्रकार से (५) क्रिया-गीत के आधार पर; त्रिपाठी जी का विभाजन, पारीक का वर्गीकरण; (२) *लोक गाथा*—बैलेड के लिए गाथा शब्द की सार्थकता, लोक-गाथा की परिभाषा, लोक-गीत

और लोक गाथा में अन्तर, (३) लोक-कथा, (४) लोक-नाट्य (५) प्रकीर्ण साहित्य । २६—४१

अध्याय ४—लोक-गीतों का विवेचन

(क) संस्कार सम्बन्धी गीत—(१) सोहर—नामकरण, परम्परा, वर्ण्य विषय (२) मुण्डन के गीत, वर्ण्यविषय, (३) यज्ञोपवीत के गीत—वर्ण्यविषय, बुन्देलखण्डी और मैथिली में जनेऊ के गीत (४) विवाह के गीत—गीतों के भेद, ब्रज के विवाह-गीत, वर्ण्य विषय, मैथिली तथा राजस्थानी में विवाह-गीत, (५) गवना के गीत—वर्ण्यविषय, मैथिली तथा राजस्थानी गवना के गीत (६) मृत्यु गीत—भेद, परम्परा, ब्रज में मृत्यु गीत, भोजपुरी में मृत्यु-गीत, यूरोपीय देशों में मृत्यु गीत—कार्सिका, इटली तथा फ्रांस आदि, दक्षिणी भारत में मृत्यु-गीत की प्रथा ।

(ख) ऋतु सम्बन्धी गीत—(१) कजली—नामकरण, वर्ण्य विषय, (२) होली—वर्ण्य विषय, (३) चैता—वर्ण्य विषय, (४) बारहमासा—परम्परा, वर्ण्य विषय, बंगला में बारहमासा ।

(ग) व्रत सम्बन्धी गीत—(१) नाग पचमी के गीत (२) बहुरा (३) गोधन (४) पिड़िया (५) छठी माता के गीत ।

(घ) जाति सम्बन्धी गीत—(१) अहीरों के गीत (२) दुसाधों के गीत (३) गोंड़ो के गीत (४) तेलियों के गीत (५) गड़ेरियों के गीत

(ङ) क्रिया गीत—(१) जाँत के गीत (२) रोपनी के गीत (३) सोहनी के गीत

(च) देवी-देवताओं के गीत—हनुमान्, भैरूँजी, तुलसी, गगा माता ।

(छ) विविध गीत—झूमर, अलचारी, पूर्वी और निर्गुन आदि । ४२—४७

अध्याय ५—लोक-गाथाओं की मीमाँसा

लोक-गाथा का नामकरण, बैलेड, *लोक-गाथाओं की*

विशेषताएँ—(१) रचयिता का अज्ञात होना (२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव (३) संगीत तथा नृत्य का अभिन्न साहचर्य (४) स्थानीयता का प्रचुर पुट (५) मौखिक प्रवृत्ति (६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव (७) अलकृत शैली की अविद्यमानता तथा स्वाभाविक प्रवाह (८) रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव (९) लम्बा कथानक (१०) टेक पदों की पुनरावृत्ति—महत्त्व, वर्णन, रिफ्रेन और कोरस में अन्तर, इन तीनों के उदाहरण, अंग्रेजी साहित्य से उदाहरण, गुजराती उदाहरण, कोरस, टेक पदों का वर्गीकरण। ८०—१०४

अध्याय ६—लोक-गाथाओं की उत्पत्ति

विभिन्न मत, (१) ग्रिम का सिद्धान्त—समुदायवाद, ग्रिम के मत का खण्डन, (२) श्लेगल का सिद्धान्त—व्यक्तिवाद, (३) स्टेन्थल का सिद्धान्त—जातिवाद, (४) विशप पर्सी का सिद्धान्त—चारणवाद, (५) चाइल्ड का सिद्धान्त—व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद, (६) डा० उपाध्याय का सिद्धान्त-समन्वयवाद। १०५—११४

अध्याय ७—लोक-गाथाओं के प्रकार

(१) डा० उपाध्याय का वर्गीकरण—(क) प्रेम-कथात्मक गाथा (ख) वीर-कथात्मक गाथा (ग) रोमांच-कथात्मक गाथा (२) प्रोफेसर कीट्रीज का वर्गीगरण (३) प्रोफेसर गूमर का वर्गीकरण (क) प्राचीनतम गाथाएँ (ख) कौटुम्बिक गाथाएँ (ग) अलौकिक गाथाएँ (घ) पौराणिक गाथाएँ (ङ) सीमान्त गाथाएँ (च) आरण्यक गाथाएँ। ११५—१२३

अध्याय ८—लोक कथाओं का विश्लेषण

(क) लोक-कथाओं की प्राचीन परम्परा—वृहत्कथा, कथा सरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविंशतिका, शुक शसति, जातक।

(ख) लोक-कथाओं का वर्गीकरण—प्राचीन वर्गीकरण, लोक-कथाओं के प्रकार (१) उपदेश कथा (२) व्रत कथा

और लोक गाथा में अन्तर, (३) *लोक-कथा*, (४) *लोक-नाट्य* (५) *प्रकीर्ण साहित्य* । २६—४१

अध्याय ४—लोक-गीतों का विवेचन

(क) *सस्कार सम्बन्धी गीत*—(१) सोहर—नामकरण, परम्परा, वर्ण्य विषय (२) मुण्डन के गीत, वर्ण्यविषय, (३) यज्ञोपवीत के गीत—वर्ण्यविषय, बुन्देलखण्डी और मैथिली में जनेऊ के गीत (४) विवाह के गीत—गीतों के भेद, व्रज के विवाह-गीत, वर्ण्य विषय, मैथिली तथा राजस्थानी में विवाह-गीत, (५) गवना के गीत—वर्ण्यविषय, मैथिली तथा राजस्थानी गवना के गीत (६) मृत्यु गीत—भेद, परम्परा, व्रज में मृत्यु गीत, भोजपुरी में मृत्यु-गीत, यूरोपीय देशों में मृत्यु गीत—कार्सिका, इटली तथा फ्रांस आदि, दक्षिणी भारत में मृत्यु-गीत की प्रथा ।

(ख) *ऋतु सम्बन्धी गीत*—(१) कजली—नामकरण, वर्ण्य विषय, (२) होली—वर्ण्य विषय, (३) चैता—वर्ण्य विषय, (४) बारहमासा—परम्परा, वर्ण्य विषय, बगला में बारहमासा ।

(ग) *व्रत सम्बन्धी गीत*—(१) नाग पचमी के गीत (२) बहुरा (३) गोधन (४) पिड़िया (५) छठी माता के गीत ।

(घ) *जाति सम्बन्धी गीत*—(१) अहीरों के गीत (२) दुसाधों के गीत (३) गोंड़ो के गीत (४) तेलियों के गीत (५) गड़ेरियों के गीत

(ङ) *क्रिया गीत*—(१) जाँत के गीत (२) रोपनी के गीत (३) सोहनी के गीत

(च) *देवी-देवताओं के गीत*—हनुमान्, भैरूँजी, तुलसी, गगा माता ।

(छ) *विविध गीत*—झूमर, अलचारी, पूर्वी और निर्गुन आदि । ४२—४७

अध्याय ५—लोक-गाथाओं की मीमाँसा

लोक-गाथा का नामकरण, बैलेड, *लोक-गाथाओं की*

विशेषताएँ—(१) रचयिता का अज्ञात होना (२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव (३) संगीत तथा नृत्य का अभिन्न साहचर्य (४) स्थानीयता का प्रचुर पुट (५) मौखिक प्रवृत्ति (६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव (७) अलंकृत शैली की अविद्यमानता तथा स्वाभाविक प्रवाह (८) रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव (६) लम्बा कथानक (१०) टेक पदों की पुनरावृत्ति—महत्त्व, वर्णन, रिफ्रेन और कोरस में अन्तर, इन तीनों के उदाहरण, अंग्रेजी साहित्य से उदाहरण, गुजराती उदाहरण, कोरस, टेक पदों का वर्गीकरण। ८०—१०४

अध्याय ६—लोक-गाथाओं की उत्पत्ति

विभिन्न मत, (१) ग्रिम का सिद्धान्त—समुदायवाद, ग्रिम के मत का खण्डन, (२) श्लेगल का सिद्धान्त—व्यक्तिवाद, (३) स्टेन्थल का सिद्धान्त—जातिवाद, (४) विशप पर्सी का सिद्धान्त—चारणवाद, (५) चाइल्ड का सिद्धान्त—व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद, (६) डा० उपाध्याय का सिद्धान्त-समन्वयवाद। १०५—११४

अध्याय ७—लोक-गाथाओं के प्रकार

(१) डा० उपाध्याय का वर्गीकरण—(क) प्रेम-कथात्मक गाथा (ख) वीर-कथात्मक गाथा (ग) रोमांच-कथात्मक गाथा (२) प्रोफेसर कीट्रीज का वर्गीगरण (३) प्रोफेसर गूमर का वर्गीकरण (क) प्राचीनतम गाथाएँ (ख) कौटुम्बिक गाथाएँ (ग) अलौकिक गाथाएँ (घ) पौराणिक गाथाएँ (ङ) सीमान्त गाथाएँ (च) आरण्यक गाथाएँ। ११५—१२३

अध्याय ८—लोक-कथाओं का विश्लेषण

(क) लोक-कथाओं की प्राचीन परम्परा—बृहत्कथा, कथा सरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविंशतिका, शुक शसति, जातक।

(ख) लोक-कथाओं का वर्गीकरण—प्राचीन वर्गीकरण, लोक-कथाओं के प्रकार (१) उपदेश कथा (२) व्रत कथा

(३) प्रेम-कथा (४) मनोरजन-कथा (५) सामाजिक कथा (६) पौराणिक कथा । डा० सत्येन्द्र का वर्गीकरण—व्रज की लोक-कथाओं के भेद, डा० सेन का वर्गीकरण ।

(ग) लोक-कथाओं की विशेषताएँ—(१) प्रेम का अभिन्न पुट (२) अश्लील शृङ्गार का अभाव (३) मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य (४) मगल कामना की भावना (५) संयोग मे कथाओं का अन्त (६) रहस्य-रोमाञ्च एवं अलौकिकता की प्रधानता (७) उत्सुकता की भावना (८) वर्णन की स्वाभाविकता, शैली, लोक-कथाओं और आधुनिक कहानियों में अन्तर । १२४—१३६

अध्याय ६—प्रकीर्ण साहित्य

१—लोकोक्तियाँ—परम्परा, लोकोक्तियों के सग्रह, लोकोक्तियों की विशेषताएँ, *लोकोक्तियों का वर्गीकरण*, (क) स्थान-सम्बन्धी (ख) जाति सम्बन्धी (ग) प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धी (घ) पशु-पक्षी सम्बन्धी (ङ) प्रकीर्ण, व्रज की लोकोक्तियों के भेद।

लोकोक्तियों के रचयिता (१) घाघ (२) भड्डरी (३) लाल बुझक्कड़ ।

२—मुहावरे—मुहावरे का अर्थ, मुहावरों की उत्पत्ति, परिभाषा, लोकोक्ति तथा मुहावरे में अन्तर, मुहावरों का महत्त्व, परम्परा तथा व्यापकत्व, मुहावरों की विशेषताएँ, जन-जीवन का चित्रण ।

३—पहेलियाँ—उत्पत्ति, परम्परा, सस्कृत साहित्य में पहेलियाँ । *पहेलियों के प्रकार*—(१) खेती सम्बन्धी पहेलियाँ (२) भोज्य पदार्थ सम्बन्धी (३) घरेलू वस्तु सम्बन्धी (४) प्राणि सम्बन्धी (५) प्रकृति सम्बन्धी (६) शरीर सम्बन्धी (७) प्रकीर्ण पहेलियाँ, ढकोसले ।

४—पालने के गीत—उत्पत्ति, सस्कृत में लोरियाँ, बाल-गीत, गुजराती बाल-गीतों के प्रकार, पालने के गीतों का जन्म, अंग्रेजी साहित्य में लोरियाँ, रस की दृष्टि से गीतों के

प्रकार; इन गीतों के अंग्रेजी, गुजराती तथा महाराष्ट्री उदाहरण।
५—खेल के गीत—महत्त्व, भेद—(१) कबड्डी, (२) मौन साधन (३) झाका झूमरि (४) ओका-बोका का खेल। विदेशों में खेल। १३७—१८६

अध्याय १०—लोक-साहित्य में काव्यत्व
(क) लोक-गीतों में अलंकार-योजना—अलंकार-योजना की विशेषता—उपमा, श्लेष, रूपक।
(ख) लोक-गीतों में रसपरिपाक—शृंगार रस, करुण रस, (१) विदाई, मैथिली विदाई के गीत, राजस्थानी गीत, (२) वियोग (३) वैधव्य। शान्त रस, हास्य रस, वीर रस।
(ग) लोक-गीतों में छन्द विधान।
सोहर, विरहा, आल्हा
(घ) लोक-गीतों में भाव-व्यञ्जना और छन्द-विधान का सामञ्जस्य
संस्कृत में छन्दविधान का नियम, भाव-व्यञ्जना और छन्द का समन्वय।
(ङ) लोक-गीतों में तुक और लय
भोजपुरी गीतों में तुक, मैथिली गीतों में तुक, लय। १९०—२२९

अध्याय ११—लोक-साहित्य में लोक-संस्कृति का चित्रण।
(क) सामाजिक जीवन का चित्रण—आदर्श सतीत्व, माता और पुत्री, भाई और बहन, सास और पतोहू, ननद और भावज, सौतिया डाह, (ख) आर्थिक पक्ष का चित्रण—निर्धनता का वर्णन, किसान जीवन की साध, (ग) धार्मिक जीवन की झलक,—विभिन्न देवताओं की पूजा, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना। २३०—२४४

अध्याय १२—राष्ट्रीय जीवन में लोक-साहित्य की महत्ता
(१) ऐतिहासिक महत्त्व (२) भौगोलिक तथा आर्थिक महत्त्व (३) सामाजिक महत्त्व (४) धार्मिक महत्त्व (५) नैतिक महत्त्व (६) भाषाशास्त्र सम्बन्धी महत्त्व। लोक-साहित्य के सम्बन्ध में विद्वानों का मत। २४५—२६२

(३) प्रेम-कथा (४) मनोरजन-कथा (५) सामाजिक कथा (६) पौराणिक कथा। डा० सत्येन्द्र का वर्गीकरण—व्रज की लोक-कथाओं के भेद, डा० सेन का वर्गीकरण।

(ग) लोक-कथाओं की विशेषताएँ—(१) प्रेम का अभिन्न पुट (२) अश्लील शृङ्गार का अभाव (३) मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य (४) मगल कामना की भावना (५) सयोग मे कथाओं का अन्त (६) रहस्य-रोमाञ्च एव अलौकिकता की प्रधानता (७) उत्सुकता की भावना (८) वर्णन की स्वाभाविकता, शैली, लोक-कथाओं और आधुनिक कहानियों में अन्तर। १२४—१३६

अध्याय ६—प्रकीर्ण साहित्य

१—लोकोक्तियाँ—परम्परा, लोकोक्तियों के सग्रह, लोकोक्तियों की विशेषताएँ, *लोकोक्तियों का वर्गीकरण,* (क) स्थान-सम्बन्धी (ख) जाति सम्बन्धी (ग) प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धी (घ) पशु-पक्षी सम्बन्धी (ङ) प्रकीर्ण, व्रज की लोकोक्तियों के भेद।

लोकोक्तियों के रचयिता (१) घाघ (२) भड्डरी (३) लाल बुझक्कड़।

२—मुहावरे—मुहावरे का अर्थ, मुहावरों की उत्पत्ति, परिभाषा, लोकोक्ति तथा मुहावरे में अन्तर, मुहावरों का महत्त्व, परम्परा तथा व्यापकत्व, मुहावरों की विशेषताएँ, जन-जीवन का चित्रण।

३—पहेलियाँ—उत्पत्ति, परम्परा, सस्कृत साहित्य में पहेलियाँ। *पहेलियों के प्रकार*—(१) खेती सम्बन्धी पहेलियाँ (२) भोज्य पदार्थ सम्बन्धी (३) घरेलू वस्तु सम्बन्धी (४) प्राणि सम्बन्धी (५) प्रकृति सम्बन्धी (६) शरीर सम्बन्धी (७) प्रकीर्ण पहेलियाँ, ढकोसले।

४—पालने के गीत—उत्पत्ति, संस्कृत में लोरियाँ, बाल-गीत, गुजराती बाल-गीतों के प्रकार, पालने के गीतों का जन्म, अंग्रेजी साहित्य में लोरियाँ, रस की दृष्टि से गीतों के

प्रकार, इन गीतों के अंग्रेजी, गुजराती तथा महाराष्ट्री उदाहरण।

५—खेल के *गीत*—महत्त्व, भेद—(१) कबड्डी, (२) मौन साधन (३) झाका झूमरि (४) ओका-बोका का खेल। विदेशों में खेल। १३७—१८६

अध्याय १०—लोक-साहित्य में काव्यत्व

(क) लोक-गीतों में अलंकार-योजना—अलंकार-योजना की विशेषता—उपमा, श्लेष, रूपक।

(ख) लोक-गीतों में रसपरिपाक—शृंगार रस, करुण रस, (१) विदाई, मैथिली विदाई के गीत, राजस्थानी गीत, (२) वियोग (३) वैधव्य। शान्त रस, हास्य रस, वीर रस।

(ग) लोक-गीतों में छन्द विधान।

सोहर, बिरहा, आल्हा

(घ) लोक-गीतों में भाव-व्यञ्जना और छन्द-विधान का सामञ्जस्य

संस्कृत में छन्दविधान का नियम, भाव-व्यञ्जना और छन्द का समन्वय।

(ङ) लोक-गीतों में तुक और लय

भोजपुरी गीतों में तुक, मैथिली गीतों में तुक, लय। १९०—२२६

अध्याय ११—लोक-साहित्य में लोक-संस्कृति का चित्रण।

(क) सामाजिक जीवन का चित्रण—आदर्श सतीत्व, माता और पुत्री, भाई और बहन, सास और पतोहू, ननद और भावज, सौतिया डाह, *(ख) आर्थिक पक्ष का चित्रण*—निर्धनता का वर्णन, किसान जीवन की साध, *(ग) धार्मिक जीवन की झलक,*—विभिन्न देवताओं की पूजा, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना। २३०—२४४

अध्याय १२—राष्ट्रीय जीवन में लोक-साहित्य की महत्ता

(१) ऐतिहासिक महत्त्व (२) भौगोलिक तथा आर्थिक महत्त्व (३) सामाजिक महत्त्व (४) धार्मिक महत्त्व (५) नैतिक महत्त्व (६) भाषाशास्त्र सम्बन्धी महत्त्व। लोक-साहित्य के सम्बन्ध में विद्वानों का मत। २४५—२६२

अध्याय १३—लोक-साहित्य की धार्मिक पृष्ठ-भूमि।
देवताओं की पूजा, व्रतों का विधान, धार्मिक विश्वास, भाग्यवाद। २६३—२७०

अध्याय १४—उपसंहार
लोक-साहित्य का महत्त्व—यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का समन्वय, ग्रिम तथा गूमर के विचार।

परिशिष्ट (क)
भारत में लोक-संस्कृति (फोकलोर) सम्बन्धी अनुसन्धान का विवेचन

परिशिष्ट (ख)
लोक-साहित्य-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली

परिशिष्ट (ग)
लोक-साहित्य सम्बन्धी पठनीय सामग्री

परिशिष्ट (घ)
कुछ प्रसिद्ध विदेशी लोक-संस्कृति-परिषदों के नाम और पते। २७१—३१८

संकेत-शब्द-सूची

इ० स्का० पा० बै०—इंलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स
ऋ० वे०—ऋग्वेद
ओ० इ० बै०—ओल्ड इंलिश बैलेड्स
ऐ० ब्रा०—ऐतरेय ब्राह्मण
क० कौ०—कविता-कौमुदी (भाग ५) ग्राम-गीत
ग्रा० गी०—ग्राम-गीत (कविता कौमुदी भाग ५)
ज० ए० सो० बं०—जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल
ता० ब्रा०—ताण्ड्य ब्राह्मण
भो० ग्रा० गी०—भोजपुरी ग्राम-गीत भाग २
भो० लो० गी०—भोजपुरी लोक गीत भाग १
भो० लो० गी० र०—भोजपुरी लोक-गीतों में करुण रस
न्यू० इ० डि०—न्यू इंलिश डिक्शनरी
मै० लो० गी०—मैथिली लोक-गीत
रा० ए० सो० बं०—रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल
रा० लो० गी०—राजस्थान के लोकगीत भाग १,२
रा० लो० गी०—राजस्थानी लोक गीत
रा० च० मा०—रामचरित मानस
ब्र० लो० सा० अ०—ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन
श० ब्रा० }
श० प० ब्रा० } शतपथ ब्राह्मण
शा० ब्रा०—शाकटायन ब्राह्मण
ह० ग्रा० सा०—हमारा ग्राम साहित्य
हि० सा० स०—हिन्दी साहित्य सम्मेलन
है० आ० फो०—हैण्ड बुक ऑव् फोकलोर

लोक-साहित्य का संकलन

लोक साहित्य संकलन का मार्ग बड़ा कण्टाकीर्ण है। इसमें पद पद पर विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं। धैर्य का धनी ही इस कार्य को सम्यक् रूप से सम्पादित कर सकता है। जिन लोगों में अध्यवसाय की कमी है, जो थोड़ी ही देर में किसी काम से ऊब जाते हैं, लोक साहित्य का संग्रह उनके वश के बाहर की बात है। इस कार्य में समय का भी कुछ कम अपव्यय नहीं होता। कई दिनों की प्रतीक्षा के बाद एक या दो गीत हाथ लगते हैं। गवैयों को गवा कर गीत लिखना कम कठिन काम नहीं है। इस। कार्य में जो बाधाएँ उपस्थित होती हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

१ गवैयों का क्रमिक अभाव

गाँवों में गीतों के गाने वालों का क्रमश. अभाव होता जा रहा है। कुछ गीत ऐसे हैं जिन्हें विशेष जातियाँ—धोबी, चमार, दुसाध, तेली अहीर गोंड आदि—ही गाती हैं। नयी सभ्यता के प्रसार से तथा गाँवों में भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से इन जातियों के पढे लिखे नवयुवक लोक-गीतों से घृणा करने लगे हैं। वे इन गीतों को गाने मे अपना अपमान समझते हैं। वे अपनी पुश्तैनी सम्पत्ति को जान बूझ कर खोते जा रहे हैं। ऐसी दशा में लोकगीतों के संरक्षण की इनसे आशा करना दुराशा मात्र है। जिन लोगों ने इन गीतों की अब तक रक्षा कर रखी है, वे गाँव के वे बूढे और बुढ़िया हैं जो कराल काल के गाल में कवलित होने के लिए समय की प्रतीक्षा कर रही हैं। इस कारण लोकगीतों के संग्रहकर्ता का। कार्य कठिन होता जा रहा है।

२ पर्दे की प्रथा

पर्दे की प्रथा के कारण भी इस कार्य में बड़ी बाधा उपस्थित होती है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तथा बिहार के पश्चिमी जिलों में पर्दे की बड़ी कठोर प्रथा है जिसके कारण कोई कुल-वधू पर-पुरुष के सामने नहीं आ सकती। बूढ़ी स्त्रियाँ भी पर्दे का व्यवहार करती हैं। ऐसी दशा में गीत संग्रह के प्रेमियों के लिए बड़ी कठिनाई एवं बाधाएँ उपस्थित होती हैं। कहा जाता है कि हिन्दी के कवि श्री मन्नन द्विवेदी लोक-गीतों के बड़े प्रेमी थे। वे जाँत के गीतों—जिन्हें जँतसार कहते हैं—का संग्रह करना चाहते

थे, परन्तु पर्दे की प्रथा के कारण कोई भी स्त्री उन्हें इन गीतों को सामने गाकर लिखवाने के लिए तैयार नहीं हुई। अतः वे रात्रि में जिस घर में जँतसार गाया जाता था, उसके पिछवाड़े (पृष्ठ भाग) में खड़े होकर गीतों को लिखा करते थे। इस पुस्तक के लेखक को भी ऐसी अनेक यातनाएँ भुगतनी पड़ी हैं।

आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ लोकगीतों को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगी हैं। वे इन गीतों को गाना फैशन के विरुद्ध समझती हैं। संस्कार सम्बधी समस्त गीत स्त्रियों के ही कल कण्ठ में निवास करते हैं अतः शिक्षित युवतियों से उन गीतों को गवाकर लिखना कठिन कार्य है।

३ पुनरावृत्ति मे असमर्थता

गवैये जब अपनी मस्ती मे आते हैं तभी गाते हैं और जब गाने लगते हैं तब बड़े सुर में गाते हैं। जब वे तरंग में आकर ऊँचे स्वर से गाना प्रारम्भ करते हैं तब अपनी सुधि के साथ ही कथा के प्रसंग को भी भूल जाते हैं। यह बात विशेषकर लोकगाथाओं के गाने में होती है। 'लोरकी' एक प्रबन्धात्मक गीत है जो ताल-स्वर से गाया जाता है। जब गवैये भावावेश मे आकर इसे गाने लगते हैं तब इसे लिपिबद्ध करना बड़ा कठिन होता है। यदि गीत के संग्राहक ने गीत की कोई कड़ी लिखते समय छोड़ दी तो पुनः उसे लिपि बद्ध करना कठिन है। गवैया प्रारम्भ से ही किसी गीत को गा सकता है। गीत गाते समय किसी छूटी हुई पंक्ति को फिर से गाने में वह असमर्थ सा होता है। गीत की पुनरावृत्ति की उसकी असमर्थता से संग्रहकर्ता का कार्य दुरूह हो जाता है। उसका गीत अधूरा ही रह जाता है। ये गवैये इस तेजी के साथ इन गाथाओं (लोरकी, विजयमल आदि) को गाते हैं कि पहिले तो गीत के अर्थ को समझना कठिन है, फिर उसे उसी तेजी के साथ लिखना और भी कठिन हो जाता है।

स्त्रियाँ जब विवाह आदि माङ्गलिक अवसरों पर समवेत स्वर से गीत गाने लगती हैं तो गीत के अभिप्राय को समझ कर स्पष्ट रूप से उन गीतों को सुन कर लिखना कुछ साधारण व्यापार नहीं है। ये भी किसी गीत को बीच से ही दुहराकर नहीं गा पातीं।

४. गवैये सर्वदा गाने को तैयार नहीं

लोकगीतों के संग्रहकर्ता के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थित होती है कि गवैये सदा गाने के लिए तैयार नहीं होते। जब उनके मन में

उमग आता है तभी वे गाते हैं। वे ऋतु के अनुकूल ही गीतों को गाना पसन्द करते हैं, जैसे फागुन के दिनों में वह 'फगुआ' या होली गायेंगे और चैत के दिनों के 'चैता' या 'घाटो'। वे आज्ञा देकर गवाये नहीं जा सकते हैं। यदि आग्रह या भय के कारण वे गायेंगे भी तो उनका हृदय उस गीत में नहीं होगा। उनका मन नहीं रमेगा। अतः सग्रहकर्ता को ऋतु के अनुकूल गीत सुनने और लिखने के लिए समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

एक दूसरी कठिनाई और है। किसी कार्य विशेष को करते समय गाये जाने वाले गीतों—एक्शन साग्स—की यह एक विशेषता है कि वे उस कार्य को करते समय ही अच्छी तरह से गाये जा सकते हैं, जैसे रोपनी के गीत धान को रोपते समय ही सम्यक् रीति से गाये जाते हैं। सोहनी के गीतों के विषय में भी यही बात समझनी चाहिए एक बार इन पंक्तियों के लेखक को सोहनी के गीतों को खेत की मेड़ पर बैठ कर लिखना पड़ा था, क्योंकि उस गीत को गाने वाली (अहीरिन) स्त्री घर पर उसे गाने के लिए तैयार नहीं थी। इसम सन्देह नहीं कि उपयुक्त वातावरण में ही गीतों को गाने में आनन्द आता है, परन्तु इस कारण सग्रहकर्ता का बहुत सा समय नष्ट होता है।

५. संकुचित मनोवृत्ति

गवैयों की सकुचित मनोवृत्ति भी इस सग्रह कार्य मे बहुत बड़ी बाधा उपस्थित करती है। प्रायः यह देखा जाता है कि गवैये गीतों को लिपि-बद्ध कराने में बड़ा सकोच करते हैं। वे सग्रहकर्ता का स्वागत न करके, किसी व्याज से उन्हें टालने की कोशिश करते हैं। सभवत. वे यह समझते हैं कि इन गीतों के लिपिबद्ध हो जाने से उनके पेशे को धक्का लगेगा अथवा उनका आदर-सम्मान कम हो जायेगा। प्रस्तुत लेखक ने गोरख-पंथी साधुओं से—जो कॅथरी लिए और सारङ्गी बजाते हुए अपनी पेट-पूजा की योजना करते फिरते हैं—गोपीचन्द तथा भरथरी की गाथाओं को लिखना चाहा था, परन्तु उसे इस कार्य में सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। इन भिक्षुक गायकों की यह धारणा बद्धमूल है कि इससे उनकी जीविका जाती रहेगी। इन गायकों को यह क्या मालूम कि इन गीतों के लिपिबद्ध हो जाने से लोक साहित्य की कितनी अनमोल निधियाँ नष्ट होने से बच जायेंगी।

लोकगीतों के सकलन-कर्ताओं के सामने उपर्युक्त कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। जिसे इन गीतों के प्रति अटूट अनुराग और अदम्य उत्साह न हो, वह इस कार्य में सफलीभूत नहीं हो सकता।

लोक-साहित्य-संग्रहकर्त्ता के उपादान

(क) आन्तरिक साधन

१ जनता के साथ तादात्म्य-भावना

लोक साहित्य के प्रेमी के लिए यह आवश्यक है कि जिस देश या प्रदेश को वह अपने कार्य का क्षेत्र बनाये वहाँ की जनता से निकटतम सम्बध स्थापित करे। अपने को महान् समझना अथवा जिन लोगों के बीच कार्य करना है, उनको सभ्य या शिक्षित बनाने की भावना घातक सिद्ध होती है। इसलिए यह आवश्यक है सग्रही अपने वैभव तथा सुन्दर एव बहुमूल्य वेशभूषा का प्रदर्शन उनके सामने न करे। सुष्ठु तथा सुन्दर व्यवहार, सज्जनतापूर्ण वर्ताव और स्थानीय शिष्टाचार के नियमों का पालन करना अनिवार्य है।[1] यदि स्थानीय शिष्टाचार का पालन न किया गया तो उस प्रदेश की जनता से सम्मान नहीं प्राप्त किया जा सकता। स्थानीय लोगों के कार्य-कलापों में दिलचस्पी लेना भी वांछनीय है, तभी वे लोग गीत और कहानियाँ सुनायेंगे अन्यथा नहीं। आशय यह है कि सभी प्रकार से वहाँ के लोगो के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिए।

२. सहानुभूति

सग्रह की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि जनता के साथ वास्तविक सहानुभूति प्रदर्शित की जाय। स्थानीय विश्वासों, प्रथाओं तथा अयपरम्पराओं के लिए सर्वाधिक सम्मान दिखलाना चाहिए, चाहे जनता की धारणाएँ कितनी भी तुच्छ तथा तर्कहीन क्यों न हो। यदि हम उनकी प्रथाओं का आदर न करेंगे तो वे लोग आत्मीयता की भावना नहीं रखेंगे।

---

[1] "A kindly, simple geinal manner; much patience in listening and quick perception of and compliance with the local rules of etiquette and courtesy are needful"

सोफिया बर्न०—हैं० आ० फो०

ज्ञाता या प्रमाणभूत (Authority) हो उसी से उस विषय की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

सोफिया बर्न ने लिखा है कि "युवती स्त्रियाँ प्रेम गीत, टोटका, शकुनशास्त्र तथा भूत-दूत के विषय में प्रमाणभूत हैं। बूढ़ी स्त्रियाँ शिशु-गीत, लोक-कथा तथा जन्म, मृत्यु और बिमारी से सम्बन्धित विधि-विधानों की अधिक जानकारी रखती है। संग्रही को पशु-पक्षियों के विषय में किसी शिकारी से बातचीत करनी चाहिए, लकड़ीहारे से वृक्षों के विषय में और गृहिणी से रसोई बनाने और कपड़ो को साफ करने के सम्बंध में पूँछ-ताछ करनी चाहिए।"[1]

नीच कही जानीवाली अस्पृश्य जाति के अनेक व्यक्ति सुन्दर गीतों के भाण्डार हैं। दुसाध नामक एक अछूत जाति पचरा के गीत गाने में निपुण है। घुमन्तू नट जाति के लोग अनेक गीतों को जानते हैं। अतः संग्रही के मन में स्पृश्यास्पृश्य की भावना नहीं आनी चाहिए। उसका यह परम कर्तव्य है कि वह इन लोगों के घर जाय और उनके रीति-रिवाजों, प्रथाओं और गीतों का संग्रह करे।

४. जाँच कर किसी तथ्य को स्वीकार करना

संग्रही को यह बात स्वयसिद्ध रूप से स्वीकार नहीं कर लेनी चाहिए कि किसी जाति-विशेष में अमुक प्रथा का अभाव है अथवा उनमें अमुक गीत प्रचलित नहीं है या वे लोग अमुक प्रथा में विश्वास नहीं करते। यदि कोई बात संग्रही की दृष्टि या अनुसन्धान में अन्तर्गत नहीं आती तो इसका यह अर्थ कभी नहीं समझना चाहिए कि उस प्रथा या गीत का अस्तित्व

---

1 Young women are the best authorities on love songs, charms, omens, and simple methods of divination Old women on nursery songs and tales and all the lore connected with birth, death and sickness, One must talk to the hunter about birds and beasts, to the woodcutter about trees and to the house-wife about baking and washing

हैं० आ० फो० पृ० ८

है ही नहीं। इसके विपरीत उसे चाहिए कि उक्त वस्तु के अभाव के साक्षीभूत प्रमाणों को लिपि बद्ध कर लें। किसी स्थान विशेष मे किसी प्रथा, परम्परा या विश्वास के अभावों को लिख लेना उतना ही आवश्यक है, जितना कि उनकी सत्ता का लिपि बद्ध करना। किसी तथ्य को तब तक स्वीकार या अस्वीकार नहीं करना चाहिए जबतक कि उसके पक्ष और विपक्ष में पक्के प्रमाण न मिल जायँ।

५. स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग

जहाँ तक सम्भव हो संग्रही को स्थानीय भाषा मे ही अपने संकलन का कार्य करना चाहिए। लोक-गीतों और कथाओं के संग्रह मे यह बात अत्यन्त आवश्यक है। प्रथाओं और रीति-रिवाजों को लिपिबद्ध करते समय उन स्थानीय पारिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए जिनके पर्याय-वाची या समानार्थक शब्दों का हिन्दी भाषा में अभाव है। विवाह के अवसर पर उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में बहुत सी प्रथाएँ प्रचलित हैं—जैसे 'माटी कोड़ाई', 'हरदी लगाई', 'लावा भुजाई', 'नहछू-नहावन' आदि। ये प्रथाएँ लौकिक तथा स्थानीय हैं। अत. वैवाहिक प्रथाओं को लिपि-बद्ध करने के साथ ही इस अवसर पर प्रयुक्त होने वाले विशेष शब्दों—'द्वार पूजा', 'अइगा' 'गुरहत्थी', 'नेवता', 'कोहबर', 'रोका' आदि—को इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि हिन्दी मे इनके अभिप्राय को द्योतित करनेवाले शब्दों का अभाव सा है।

६. यथा श्रुतम् तथा लिखितम्

लोक-साहित्य के संग्रहकर्ता को चाहिए कि वह जिस गीत या कथा को जिस प्रकार से सुनें उसे उसी प्रकार से उसे लिपिबद्ध करे। इस सम्बंध मे उसका यही सिद्धान्त होना चाहिए कि 'यथा श्रुतम् तथा लिखितम्'। यदि लिखित गीत या कथा मे कहीं अशुद्धि जान पड़े तो संग्रही को अपनी बुद्धि के अनुसार उसका संशोधन कदापि नहीं करना चाहिए। यह संशोधन कभी-कभी घातक सिद्ध होता है और गीत के मूल अर्थ को बिल्कुल नष्ट कर देता है। उदाहरण के लिए 'सलवलों' शब्द को लीजिए। इसका भोजपुरी में अर्थ होता है अनगढ़ी लकड़ी को छील-छाल कर चिकना बनाना। जैसे 'हम पार सलवलों' अर्थात् मैंने चारपाई के पैर को चिकना तथा सुन्दर बनवा लिया। एक भोजपुरी गीत में इसी अर्थ में इस

'सलवलों' शब्द का प्रयोग हुआ है।[१] परन्तु डा० सर ग्रियर्सन जैसा सुप्रसिद्ध भाषा-मर्मज्ञ भी इस शब्द के अर्थ के चक्कर में पड़ गया है और उन्होंने 'सलवलों' पाठ को अशुद्ध समझ कर, इसका संशोधन 'सुलवलों' कर दिया है और अर्थ बतलाया है 'सुलाया' जो मूल अर्थ से बिल्कुल भिन्न तथा अशुद्ध है।

कहने का आशय केवल इतना ही है कि गीतों और कथाओं में संग्रही की ओर से संशोधन उपस्थित करना खतरे से खाली नहीं है। बहुत संभव है कि जिस पाठ को अपनी समझ में न आने के कारण हम अशुद्ध समझ रहे हैं, कुछ दिनों के बाद वह समस्या सुलझ जाय और उसका ठीक अर्थ लग जाय।

७, संग्रह की प्रामाणिकता

अपने संग्रह पर प्रामाणिकता का सिक्का लगाने के लिए संग्रही के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस व्यक्ति से लोक-साहित्य का संग्रह करे उसका नाम, अवस्था, स्त्री या पुरुष, निवास स्थान (पूरे पते के साथ), व्यवसाय और उसकी स्थिति (Status) को भी लिपिबद्ध कर ले। यदि किसी व्यक्ति—विशेषकर स्त्रियों—को अपना नाम बतलाने में आपत्ति हो तो इसके लिए विशेष आग्रह नहीं करना चाहिए। गवैये का नाम, पता आदि लिख लेने से पहिला लाभ तो यह होगा कि यदि कोई व्यक्ति किसी गीत या कथा की यथार्थता की जाँच करना चाहेगा तो वह इसे आसानी से कर सकेगा है। दूसरा लाभ यह है कि किस जिले या प्रदेश में किस बोली का कौन सा रूप प्रचलित है यह जाना जा सकता है। किस जाति में कौन सा गीत या कथा किस रूप में प्रचलित है, इसका ज्ञान भी आसानी से हो सकता है। भाषा-शास्त्री के लिए उपर्युक्त सूचनाएँ बड़ी लाभदायक हैं।

८, विभिन्न पाठों का संग्रह

एक गीत के जितने भी विभिन्न पाठ (versions) मिल सकें इन सभी का संग्रह करना वाञ्छनीय है। एक ही लोक-गाथा अनेक प्रान्तों में भिन्न-भिन्न रूप में प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए आल्हा को लिया जा सकता है। मूल आल्हा जो बुन्देलखण्डी में लिखा गया था, आजकल उपलब्ध नहीं होता। परन्तु इसके कन्नौजी और भोजपुरी पाठ (versions)

---

[१] 'चनन के पेड़ काटि पटिया रे सलवलों'।

आज भी मिलते हैं। राजा गोपीचन्द तथा भरथरी की कथा लोक-गाथा के रूप में समस्त उत्तरी भारत में गायी जाती है। ढोला मारू की प्रेम कथा राजस्थान से लेकर भोजपुरी प्रदेश तक गवैयों के मुख से सुनी जाती है। यदि इन गीतों के विभिन्न पाठों का संकलन कर अध्ययन किया जाय तो यह पता चलेगा कि इनके कथानकों में स्थान विशेष के कारण कितना परिवर्तन हो गया है। अतः भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इन पाठों का संग्रह आवश्यक है।

डा० चाइल्ड ने अंग्रेजी तथा स्काटिश लोकगीतों के कितने भी विभिन्न पाठ उपलब्ध हो सके हैं उन सबका संकलन अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ[1] में किया है। उन्होंने Lady Isabel and the Elf-knight नामक गीत के नव विभिन्न पाठों का, 'Sir Patrick Spens' शीर्षक गीत के अठारह विभिन्न पाठों का और "Mary Hamilton" शीर्षक गीत के अठाइस विभिन्न पाठों का संग्रह अपने प्रामाणिक ग्रन्थ में किया है।[2] प० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'ग्रामगीत' में 'भगवती देवी' गीत के तीन-चार पाठों को लिपिबद्ध किया है, जिनमें प्रत्येक में कथा सम्बधी विशेषताएँ पायी जाती हैं।

(ख) वाह्य साधन

लोक-साहित्य के संग्रहकर्ता को वाह्य साधनों से भी सुसज्जित रहना चाहिए। जिस प्रकार लड़ाई में लड़ने वाले सैनिक के लिए बम और बन्दूक आवश्यक साधन हैं, उसी प्रकार लोक-साहित्य के संग्रही के लिए 'पेन' और 'पेपर' आदि अनिवार्य सामग्री है।

१. नोटबुक, पेन तथा पेन्सिल

संग्रही को चाहिए कि अपने साथ सदा एक नोटबुक रखा करें। यह नोटबुक ऐसी होनी चाहिए जिसके पेज आवश्यकता पड़ने पर उससे अलग किये जा सकें या उसमें जोड़े जा सकें। प्रत्येक गीत, कथा, प्रथा, रीति-रिवाज, विधि-विधान, विश्वास तथा परम्परा को पृथक्-पृथक् पृष्ठों में लिखना चाहिए जिससे अधिक सामग्री उपलब्ध होने पर उन्हें एक साथ ही रखा जा सके।

---

[1] इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स।

[2] इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स (केम्ब्रिज द्वारा सम्पादित) प्रिफेस, पृ० ४

हिन्दी की विभिन्न बोलियों में लोक-साहित्य-सम्बंधी संग्रह-कार्य

भारतीय लोक-साहित्य के अनमोल रत्नों को परखने और उन्हें प्रकाश में लाने का सर्वप्रथम प्रयास युरोपीय विद्वानों द्वारा हुआ है। भारत के प्राचीन इतिहास और सस्कृति के उद्धार करने में जिस प्रकार इन्होंने हमारा पथ-प्रदर्शन किया है उसी प्रकार लोक साहित्य के सग्रह और प्रकाशन में भी। इन्हीं विद्वानो से प्रेरणा प्राप्त कर हिन्दी भाषा के प्रेमियों ने अपने मौखिक साहित्य की रक्षा की ओर ध्यान दिया है।

मिश्रित संग्रह

हिन्दी में लोक-साहित्य के सग्रह का सर्वप्रथम कार्य सभवतः प० रामनरेश त्रिपाठी का है। ये ही इस कार्य के अग्रदूत कहे जा सकते हैं। त्रिपाठी जी ने यो तो कई काव्य-ग्रन्थों की रचना की है, परन्तु उनका लोक-गीतों के सग्रह का कार्य ही सबसे अधिक प्रधान है और यही उनकी कीर्ति को चिरकाल तक जीवित रख सकता है। त्रिपाठी जी के पहिले लोकगीतों का सग्रह नहीं हुआ था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्वय त्रिपाठी जी ने इसका उल्लेख किया है[1] कि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री मन्नन द्विवेदी ने 'सरवरिया' नाम से कुछ लोक-गीतों को प्रकाशित किया था, परन्तु वह पुस्तक आजकल उपलब्ध नहीं है। परन्तु व्यवस्थित रूप से देश के प्रत्येक कोने में घूम-घूमकर गीता के सग्रह का प्रथम प्रयास त्रिपाठी जी ने ही किया, इसमे सन्देह नहीं। इन्होंने कई वर्षों के अनवरत प्रयास से कई हजार गीतों का सग्रह किया। इनके गीतों का सग्रह कविता-कौमुदी, भाग ५ (ग्राम-गीत) के नाम से प्रकाशित हुआ है।[2] इस सग्रह में हिन्दी की सभी प्रधान बोलियों—व्रज, अवधी और भोजपुरी—के गीतों का सकलन किया

---

[1] कविता कौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत)

[2] हिन्दी मन्दिर, प्रयाग।

गया है। त्रिपाठी जी ने लोक साहित्य के जिज्ञासुओं का इस ग्रन्थ से बड़ा उपकार किया है।

इस पुस्तक में सोहर, जनेऊ, विवाह, जाँत, सावन, निरवाही, हिंडोला, कोल्हू, मेला और बारहमासा इन दस प्रकार में गीतों का संग्रह है। पुस्तक के प्रारम्भ में त्रिपाठी जी ने 'ग्राम गीतों का परिचय' शीर्षक से महत्त्वपूर्ण भूमिका लिखी है, जिसमें लोकगीत सम्बंधी अनेक आवश्यक बातों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन गीतों में निहित लोक संस्कृति के ऊपर भी कुछ प्रकाश डाला गया है।

त्रिपाठी जी की दूसरी पुस्तक 'हमारा ग्राम साहित्य' है[1]। इसके प्रारम्भ में भी 'ग्राम साहित्य का संक्षिप्त परिचय' दिया गया है जो बड़ा उपयोगी है। इस परिचय में उन्होंने लोक-गीतों की महत्ता का प्रतिपादन किया है। विभिन्न जातियों के द्वारा जिनमें अहीर, कहार, तेली, गड़ेरिया धोबी, चमार आदि प्रधान हैं—गाये जाने वाले गीतों का संकलन इसमें किया गया है। इसके अतिरिक्त घाघ और भड्डरी की खेती तथा ऋतु सम्बंधी सूक्तियाँ भी दी गई हैं। 'सोहर' इनकी तीसरी पुस्तक है जिसमें पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का संकलन है।

लोक गीतों के दूसरे संग्रह-कर्ता श्री देवेन्द्र सत्यार्थी हैं जिन्होंने त्रिपाठी जी की ही भांति भारत तथा बर्मा में प्रत्येक प्रदेश में घूम-घूमकर लोक-गीतों का संकलन किया है। इस प्रकार इन्होंने भी कई हजार गीतों का संग्रह किया है। लोक गीतों के सम्बंध में सत्यार्थी जी की कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनके नाम हैं—(१) गिद्धा (१९३६) (२) दीवा बले सारी रात (१९४१) (३) मैं हूँ खानाबदोश (१९४१), (४) गाये जा हिन्दुस्तान (१९४६), (५) धरती गाती है (१९४८), (६) धीरे बहो गंगा (१९४८) और (७) बेला फूले आधी रात (१९४८)। इन्होंने अंग्रेजी में भी एक पुस्तक लिखी है।[2] सत्यार्थी जी ने जिस श्रम तथा लगन के साथ इस कार्य को सम्पादित किया है, उसकी प्रशंसा अवश्य की जानी चाहिए। परन्तु इनकी पुस्तकों में गंभीरता का अभाव देखकर बड़ा निराश होना पड़ता है। पहिली बात जो इनके संग्रहों में खटकती है वह है क्रम-बद्धता का अभाव। इन्होंने किसी एक पुस्तक में किसी एक भाषा के गीतों का वैज्ञानिक संकलन प्रस्तुत

---

[1] हिन्दी मंदिर, प्रयाग।

[2] Meet my people (१९४३)

नहीं किया है, बल्कि विभिन्न भाषाओं के दो-चार गीतों को पकड़कर उनके सहारे भावात्मक निबन्ध लिखा है। इनकी पुस्तकों में चलतापन अधिक है। इसी से इनकी कोई पुस्तक भाषा-विज्ञान तथा लोक-साहित्य के विद्यार्थी के लिए विशेष काम की चीज़ नहीं है।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं जिनमें ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, मारवाड़ी और राजस्थानी प्रधान हैं। इन सभी बोलियों में लोक साहित्य संग्रह सम्बन्धी कार्य हो रहा है। अनेक विद्वान् बड़ी लगन के साथ इस कार्य को सम्पादित कर रहे हैं। हिन्दी की इन विभिन्न बोलियों में से जितना कार्य भोजपुरी में हुआ है, उतना संभवतः अन्य किसी बोली में नहीं। भाषा भाषियों के विस्तार की दृष्टि से भी इस बोली का महत्त्व कुछ कम नहीं है। अतः सर्वप्रथम इसी का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

(१) भोजपुरी

भोजपुरी ग्राम-गीत, भाग १—इस ग्रन्थ का सम्पादन प्रस्तुत लेखक ने किया है।[१] भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह का यह सर्व प्रथम ग्रन्थ है। इस पुस्तक में संकलित गीतों का संग्रह लेखक ने बड़े परिश्रम से भोजपुरी प्रदेश में घूम-घूम कर किया है। प्रत्येक गीत के संग्रह की अपनी राम कहानी है। पं० बलदेव उपाध्याय ने लगभग सौ पृष्ठों की विद्वत्ता-पूर्ण भूमिका में भोजपुरी भाषा और साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डाला है तथा विविन्न दृष्टियों से लोक गीतों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।

इस पुस्तक में कुल २७१ गीतों का संग्रह किया गया है। ये गीत संस्कार और ऋतुओं के क्रम से रखे गये हैं तथा इनका वर्गीकरण निम्नांकित पन्द्रह श्रेणियों में हुआ है। :—

सोहर, खेलवना, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक परिहास, गवना, जाँत, छठीमाता, शीतला माता, झूमर, बारहमासा, कजली, चैता, बिरहा और भजन। इस पुस्तक का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से सम्पन्न हुआ है। प्रत्येक गीत का सन्दर्भ देते हुए पाद टिप्पणी में कठिन शब्दों का अर्थ भी लिखा गया है। पुस्तक के अन्त में चौबीस पृष्ठों का शब्दकोष भी दिया गया है, जो भाषाशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए बड़ा उपयोगी है।

---

[१] हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २०००)। इसका दूसरा संस्करण 'भोजपुरी लोक-गीत' के नाम से वहीं से सं० २०११ में प्रकाशित हुआ है।

नहीं किया है, बल्कि विभिन्न भाषाओं के दो-चार गीतों को पकड़कर उनके सहारे भावात्मक निबन्ध लिखा है। इनकी पुस्तकों में चलतापन अधिक है। इसी से इनकी कोई पुस्तक भाषा-विज्ञान तथा लोक-साहित्य के विद्यार्थी के लिए विशेष काम की चीज नहीं है।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं जिनमें ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, मारवाड़ी और राजस्थानी प्रधान हैं। इन सभी बोलियों में लोक साहित्य संग्रह सम्बन्धी कार्य हो रहा है। अनेक विद्वान् बड़ी लगन के साथ इस कार्य को सम्पादित कर रहे हैं। हिन्दी की इन विभिन्न बोलियों में से जितना कार्य भोजपुरी में हुआ है, उतना संभवतः अन्य किसी बोली में नहीं। भाषा-भाषियों के विस्तार की दृष्टि से भी इस बोली का महत्त्व कुछ कम नहीं है। अतः सर्वप्रथम इसी का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

(१) भोजपुरी

भोजपुरी ग्राम-गीत, भाग १—इस ग्रन्थ का सम्पादन प्रस्तुत लेखक ने किया है।[1] भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह का यह सर्व प्रथम ग्रन्थ है। इस पुस्तक मे संकलित गीतों का संग्रह लेखक ने बड़े परिश्रम से भोजपुरी प्रदेश में घूम-घूम कर किया है। प्रत्येक गीत के संग्रह की अपनी राम कहानी है। प० बलदेव उपाध्याय ने लगभग सौ पृष्ठों की विद्वत्ता-पूर्ण भूमिका में भोजपुरी भाषा और साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डाला है तथा विविन्न दृष्टियों से लोक गीतों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।

इस पुस्तक मे कुल २७१ गीतों का संग्रह किया गया है। ये गीत संस्कार और ऋतुओं के क्रम से रखे गये हैं तथा इनका वर्गीकरण निम्नांकित पन्द्रह श्रेणियो में हुआ है। :—

सोहर, खेलवना, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक परिहास, गवना, जाँत, छठीमाता, शीतला माता, झूमर, बारहमासा, कजली, चैता, बिरहा और भजन। इस पुस्तक का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से सम्पन्न हुआ है। प्रत्येक गीत का सन्दर्भ देते हुए पाद टिप्पणी में कठिन शब्दों का अर्थ भी लिखा गया है। पुस्तक के अन्त मे चौबीस पृष्ठों का शब्दकोष भी दिया गया है, जो भाषाशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए बड़ा उपयोगी है।

---

[1] हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २०००)। इसका दूसरा संस्करण 'भोजपुरी लोक गीत' के नाम से वहीं से सं० २०११ में प्रकाशित हुआ है।

भोजपुरी ग्राम-गीत, भाग २—इस पुस्तक का भी संग्रह तथा सम्पादन वर्तमान लेखक ने ही किया है।[1] इसकी भूमिका डाक्टर अमरनाथ झा ने लिखी है। इसमें निम्नलिखित पचीस प्रकार के लोक-गीतों का संग्रह है, जिनकी समस्त संख्या ४२० है :—

सोहर, जोग, नेहला, विवाह, बहुरा, पिंड़िया, गोधन, नागपंचमी, जँतसार, झूमर, कजली, बारहमासा, होली, छठ, चैता, सोहनी, रोपनी, बिरहा, कहरऊँ, खेल-गीत, पचरा, निर्गुन, देशभक्ति, पूर्वी, पराती और भजन। इस पुस्तक के भी सम्पादन का क्रम वही है जो प्रथम भाग का है। पुस्तक के अन्त में लगभग सौ पृष्ठों में टिप्पणियाँ दी गई हैं, जिनमें गीतों में आये हुए ऐतिहासिक, भूगोलिक, धर्म या समाज सम्बन्धी शब्दों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन टिप्पणियों की विशेषता के सम्बंध में डा० अमरनाथ झा ने लिखा है कि "उपाध्याय जी ने लगभग एक सौ पृष्ठों की टिप्पणियाँ लिखकर पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है। इससे प्रान्तान्तर के निवासियों को गीतों के समझने में बड़ी सहायता मिलेगी।"[2]

भोजपुरी लोक-गीतों में करुणरस—इसके सम्पादक दुर्गाशङ्कर प्रसाद सिंह हैं[3] जिन्होंने बड़े परिश्रम से गीतों का संग्रह किया है। उन्होंने पुस्तक की भूमिका में भोजपुरी की उत्पत्ति, प्राचीनता, विस्तार आदि विषयों पर प्रकाश डाला है। इनकी दूसरी पुस्तक 'भोजपुरी कवि और काव्य' अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है।[4] इस पुस्तक में उत्तर प्रदेश तथा बिहार के ज्ञात प्रायः सभी कवियों की चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ के द्वारा बहुत से ऐसे कवियों की कृतियों का पता चला है जो अभी तक प्रकाश में नहीं आई थीं। सरभंग सम्प्रदाय के कवियों का वर्णन इस ग्रन्थ में प्रथम बार हुआ है। इससे लेखक के अनुसन्धान की प्रवृत्ति और अध्यवसाय का पता चलता है।

भोजपुरी ग्राम्य-गीत—इसके संग्रहकर्ता और सम्पादक डब्लू० जी० आर्चर आई० सी-एस और संकटाप्रसाद हैं।[5] छोटा नागपुर की विभिन्न

[1] हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २००५ वि०) से प्रकाशित।

[2] भूमिका पृ० ६

[3] हि० सा० स० से प्रकाशित।

[4] राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित।

[5] बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना (१९४३) में प्रकाशित।

नहीं किया है, बल्कि विभिन्न भाषाओं के दो-चार गीतों को पकड़कर उनके सहारे भावात्मक निबन्ध लिखा है। इनकी पुस्तकों में चलतापन अधिक है। इसी से इनकी कोई पुस्तक भाषा-विज्ञान तथा लोक-साहित्य के विद्यार्थी के लिए विशेष काम की चीज नहीं है।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं जिनमें ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, मारवाड़ी और राजस्थानी प्रधान हैं। इन सभी बोलियों में लोक साहित्य संग्रह सम्बन्धी कार्य हो रहा है। अनेक विद्वान् बड़ी लगन के साथ इस कार्य को सम्पादित कर रहे हैं। हिन्दी की इन विभिन्न बोलियों में से जितना कार्य भोजपुरी में हुआ है, उतना संभवतः अन्य किसी बोली में नहीं। भाषा-भाषियों के विस्तार की दृष्टि से भी इस बोली का महत्त्व कुछ कम नहीं है। अतः सर्वप्रथम इसी का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

(१) भोजपुरी

भोजपुरी ग्राम-गीत, भाग १—इस ग्रन्थ का सम्पादन प्रस्तुत लेखक ने किया है।[१] भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह का यह सर्व प्रथम ग्रन्थ है। इस पुस्तक में संकलित गीतों का संग्रह लेखक ने बड़े परिश्रम से भोजपुरी प्रदेश में घूम-घूम कर किया है। प्रत्येक गीत के संग्रह की अपनी राम कहानी है। पं० बलदेव उपाध्याय ने लगभग सौ पृष्ठों की विद्वत्ता-पूर्ण भूमिका में भोजपुरी भाषा और साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डाला है तथा विविन्न दृष्टियों से लोक गीतों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।

इस पुस्तक में कुल २७१ गीतों का संग्रह किया गया है। ये गीत संस्कार और ऋतुओं के क्रम से रखे गये हैं तथा इनका वर्गीकरण निम्नांकित पन्द्रह श्रेणियों में हुआ है।:—

सोहर, खेलवना, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक परिहास, गवना, जाँत, छठीमाता, शीतला माता, झूमर, बारहमासा, कजली, चैता, बिरहा और भजन। इस पुस्तक का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से सम्पन्न हुआ है। प्रत्येक गीत का सन्दर्भ देते हुए पाद टिप्पणी में कठिन शब्दों का अर्थ भी लिखा गया है। पुस्तक के अन्त में चौबीस पृष्ठों का शब्दकोष भी दिया गया है, जो भाषाशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए बड़ा उपयोगी है।

---

[१] हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २०००)। इसका दूसरा संस्करण 'भोजपुरी लोक गीत' के नाम से वहीं से सं० २०११ में प्रकाशित हुआ है।

भोजपुरी ग्राम-गीत, भाग २—इस पुस्तक का भी संग्रह तथा सम्पादन वर्तमान लेखक ने ही किया है।[1] इसकी भूमिका डाक्टर अमरनाथ झा ने लिखी है। इसमें निम्नलिखित पचीस प्रकार के लोक-गीतों का संग्रह है, जिनकी समस्त संख्या ४२० है :—

सोहर, जोग, सेहला, विवाह, बहुरा, पिंड़िया, गोधन, नागपचमी, जँतसार, झूमर, कजली, बारहमासा, हाली, डफ, चैता, सोहनी, रोपनी, बिरहा, कहरऊँ, गोंड-गीत, पचरा, निर्गुन, देशभक्ति, पूर्वी, पाराती और भजन। इस पुस्तक के भी सम्पादन का क्रम वही है, जो प्रथम भाग का है। पुस्तक के अन्त में लगभग सौ पृष्ठो में टिप्पणियाँ दी गई है, जिनमें गीतों में आये हुए ऐतिहासिक, भूगोलिक, धर्म या समाज सम्बधी शब्दों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन टिप्पणियों की विशेषता के सम्बंध मे डा० अमरनाथ झा ने लिखा है कि "उपाध्याय जी ने लगभग एक सौ पृष्ठों की टिप्पणियाँ लिखकर पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है। इससे प्रान्तान्तर के निवासियों को गीतों के समझने मे बड़ी सहायता मिलेगी।[2]

भोजपुरी लोक-गीतों में करुणरस—इसके सम्पादक दुर्गाशङ्कर प्रसाद सिंह हैं[3] जिन्होने बड़े परिश्रम से गीतों का सग्रह किया है। उन्होंने पुस्तक की भूमिका मे भोजपुरी की उत्पत्ति, प्राचीनता, विस्तार आदि विषयों पर प्रकाश डाला है। इनकी दूसरी पुस्तक 'भोजपुरी कवि और काव्य' अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है।[4] इस पुस्तक में उत्तर प्रदेश तथा बिहार के ज्ञात प्रायः सभी कवियों की चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ के द्वारा बहुत से ऐसे कवियों की कृतियो का पता चला है जो अभी तक प्रकाश में नहीं आई थीं। सरभग सम्प्रदाय के कवियों का वर्णन इस ग्रन्थ में प्रथम बार हुआ है। इससे लेखक के अनुसन्धान की प्रवृत्ति और अध्यवसाय का पता चलता है।

भोजपुरी ग्राम्य-गीत—इसके सग्रहकर्त्ता और सम्पादक डब्लू० जी० आर्चर आई० सी-एस और सकटाप्रसाद हैं।[5] छोटा नागपुर की विभिन्न

---

[1] हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २००९ वि०) से प्रकाशित।

[2] भूमिका पृ० ६

[3] हि० सा० स० से प्रकाशित।

[4] राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित।

[5] बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना (१९४३) में प्रकाशित।

पुस्तक लिखी है जिसमें लोक-सङ्गीत की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही विभिन्न प्रकार के लगभग पचास लोक-गीतों की स्वर-लिपि भी प्रस्तुत की गई है।[1]

इधर लगभग तीन-चार वर्षों से आरा (विहार) से 'भोजपुरी' नामक पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है, जिसमें लोक-साहित्य-सम्बधी बहुत सी सामग्री प्रकाश में आई है। इस प्रकार भोजपुरी लोक साहित्य के सम्बध में अधिकारी विद्वानों द्वारा अनुसन्धान-कार्य हो रहा है।

२. ब्रज

हिन्दी की बोलियों में ब्रजभाषा का सबसे प्रमुख स्थान है। राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं और गोपियों के साथ गोपाल कृष्ण के रास की यही भूमि है। अतः इस क्षेत्र में लोकगीतों की प्रचुरता का होना स्वाभाविक है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इस क्षेत्र के लोक साहित्य के सङ्कलन का कार्य किया है, परन्तु उसका अधिकाश प्रकाशित रूप में देखने में नहीं आया है। इस साहित्य का जितना ही शीघ्र प्रकाशन हो उतना ही अच्छा है।

डा० सत्येन्द्र ने 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' शीर्षक पुस्तक लिखी है जिसमें इस क्षेत्र के गीतों का विस्तृत रूप से परिचय दिया गया है। इस ग्रथ में विस्तार बहुत है। फिर भी ब्रज में प्रचलित गीतों तथा गाथाओं के विषय में इससे अच्छी जानकारी प्राप्त होती है। डा० सत्येन्द्र के सम्पादन में 'ब्रज लोक-सस्कृति' प्रकाशित हुई है, जिसमें ब्रज की जन-सस्कृति के विभिन्न अवयवों—इतिहास, कला, गीत आदि—पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है।

ब्रजमण्डल के कुछ उत्साही विद्वानों ने 'ब्रज साहित्य मण्डल' की स्थापना की है, जिसका उद्देश्य ब्रज की सस्कृति की रक्षा तथा प्रकाशन है। इसके तत्वावधान में 'ब्रज-भारती' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है, जिसमें लोक साहित्य सम्बधी अनेक गीत और कहानियाँ निकला करती हैं। डा० सत्येन्द्र की 'ब्रज की लोक कहानियों का सग्रह' इसी मण्डल से प्रकाशित हुआ है।

३ अवधी

जहाँ तक इन पक्तियों के लेखक को ज्ञात है अवधी के अधिकांश

---

[1] प्रेस में है।

लोकगीत भी अभी प्रकाश में नहीं आये हैं। प्रयाग
संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० बाबूराम सक्सेना ने अपन
भाषा का विकास' (एवोलूशन ऑव अवधी) लिखते सम॰ ...
संग्रह किया था, परन्तु वे प्रकाश में आकर सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं बन सके। इधर वर्तमान लेखक ने अवधी के लगभग चार-पाँच सौ लोकगीतों का संग्रह प्रतापगढ़ जिले से किया है। श्रीकृष्णदास और श्री सत्यव्रत अवस्थी जैसे कुछ उत्साही युवक इस दिशा में सचेष्ट बतलाये जाते हैं।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने कविता कौमुदी भाग ५ में कुछ अवधी गीतों का संग्रह किया है। परन्तु यह सङ्कलन किसी क्रम के अनुसार नहीं है। अतएव लोक-साहित्य के पिपासुओं की पिपासा इससे शान्त नहीं हो सकती

इधर डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने 'अवधी और उसका साहित्य नामक पुस्तक लिखी है[1] जिसमें अवधी के प्राचीन लोक-गीतों तथा आधुनिक लोक-कवियों की चर्चा अत्यंत सक्षिप्त रूप में की गई है। अभी हाल ही में फतेहपुर से 'अवध-भारती' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है। आशा है इसके द्वारा अवधी लोक-साहित्य के अनमोल रत्न प्रकाश में आयेंगे।

४. राजस्थानी

राजस्थान भारत की वीर-प्रसू भूमि सदा से रही है। बाप्पा रावल राणा साँगा और महाराणा प्रताप को जन्म देने का गौरव इसी भूमि को प्राप्त है। अतएव इस प्रदेश में प्राचीन वीरों के शौर्यपूर्ण कार्यों की प्रशंस में गाये जाने वाले गीतों की प्रचुरत्ता का होना स्वाभाविक है। परन्तु इसके साथ शृंगार रस से सम्बंध रखने वाले गीत भी कुछ कम नहीं हैं।

नरोत्तमदास स्वामी ने 'राजस्थान रा दूहा' (दो भाग) का सम्पाद बड़ी योग्यता के साथ किया है।[2] नरोत्तमदास स्वामी, श्री सूर्यकरण पारी और ठाकुर रामसिंह के द्वारा 'राजस्थान के लोकगीत' का संग्रह तथ सम्पादन दो भागों में हुआ है।[3] प्रथम भाग की भूमिका में विद्वान सम्पादक ने राजस्थान के लोक-साहित्य का थोड़ा परिचय भी दिया है। 'राजस्थान ग्राम गीत' के सम्पादक श्री नरोत्तम स्वामी हैं, जिन्होंने बड़े आयास के साथ इ

---

[1] राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित।

[2] पिलाणी राजस्थानी सीरीज़, जयपुर

[3] राजस्थान रिसर्च सोसाइटी (१९३८) कलकत्ता

गीतों को अकाल काल-कवलित होने से बचाया है। स्वर्गीय श्री सूर्यकरण पारीक ने 'राजस्थानी लोकगीत' नाम से एक सुन्दर पुस्तक की रचना की है जिसमें उक्त प्रदेश के गीतों की विवेचना समास-शैली में की गई है।[१] 'राजस्थानी बाताँ' में पारीक जी ने कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया है।[२] नरोत्तम दास स्वामी का 'बीकानेर के गीत' अपने ढंग का अच्छा प्रकाशन है।[३]

राजस्थान के कुछ शोधी विद्वानों ने जोधपुर के भूतपूर्व महाराजा के तत्वावधान में 'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी' को स्थापना की है जिसका प्रधान उद्देश्य राजस्थानी साहित्य—जिसमें लोक साहित्य भी सम्मिलित हैं—की रक्षा करना तथा उसे प्रकाश में लाना है। इस संस्था की ओर से 'राजस्थान-भारती' नामक एक त्रैमासिक प्रकाशित होता है, जिसमें कभी-कभी लोक-साहित्य से सम्बध रखने वाली अनेक उपयोगी सामग्री उपलब्ध होती है।

इधर 'मरु-भारती' भी कुछ वर्षों से प्रकाशित होने लगी है। यदि इन पत्रिकाओं में लोकगीत और लोक-गाथाएँ नियमित रूप से प्रकाशित होने लगें तो स्थानीय मौखिक साहित्य नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

४ मारवाड़ी

मारवाड़ी गीतों के भी अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं। खेताराम माली का 'मारवाड़ी गीत संग्रह' सुन्दर है। मदन लाल वैश्य द्वारा संग्रहीत 'मारवाड़ी गीतमाला' इस दिशा में स्तुत्य प्रयास है। निहाल चन्द शर्मा के द्वारा संकलित 'मारवाड़ी गीत' और ताराचन्द ओझा के 'मारवाड़ी स्त्री-गीत-संग्रह' में इन संग्रहकर्ताओं का परिश्रम लक्षित होता है। परन्तु मारवाड़ी गीतों का सबसे सुन्दर संकलन जगदीश सिंह गहलोत कृत 'मारवाड़ के ग्राम-गीत' हैं। श्री गहलोत ने बड़े परिश्रम से इस संग्रह को तैयार किया है।

सर्वश्री सूर्यकरण पारीक, रामसिंह तथा नरोत्तम स्वामी ने मारवाड़ में प्रसिद्ध 'ढोला-मारु रा दूहा' नामक प्रख्यात लोक-गाथा का सम्पादन

---

[१] हि० सा० स०, प्रयाग (सं० १९९६)

[२] पिलाणी राजस्थानी ग्रन्थमाला, जयपुर (राजस्थान)

[३] नवल किशोर प्रेस, लखनऊ

बड़ी योग्यता तथा विद्वता के साथ किया है।[१] मारवाड़ में ढोला और मारु इन दो प्रेमियों की कथा प्रसिद्ध है। यह प्रेमाख्यान सम्बंधी प्रबन्धात्मक काव्य है जिसकी भाषा बड़ी सरस और मधुर है। सारी कथा दोहा (दूहा) छन्द में कही गई है। विद्वान् सम्पादकत्रय ने पुस्तक की भूमिका में लोकगीत-सम्बंधी सिद्धान्तों का वर्णन किया है, जिससे पुस्तक का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। लोक-गाथाओं में यह अपने ढङ्ग का अद्वितीय ग्रन्थ है।

६. बुन्देलखण्डी

बुन्देलखण्ड में लोक साहित्य के संग्रह का कार्य बडे उत्साह के साथ हो रहा है। ओरछा के भूतपूर्व नरेशकी सरक्षता में वहाँ कुछ वर्ष पूर्व 'लोक वार्ता-परिषद्' का स्थापना की गई थी जिसने बुन्देलखण्ड के लोक-गीतों, गाथाओं, कथाओं, कहावतों तथा मुहावरों के सग्रह का कार्य बडे उत्साह से करना प्रारम्भ किया था। इस परिषद् के तत्त्वावधान में 'लोक-वार्ता' नामक त्रैमासिक पत्रिका श्रीकृष्णानन्द गुप्त के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती थी। इस परिषद् ने अपने कुछ ही वर्षों के अस्तित्व में बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य किया। परन्तु सन् १६४७ ई० में ओरछा राज्य के भारत-सङ्घ में विलयन के साथ ही लोक साहित्य के शोध का सारा काम स्थगित ही रह गया। प० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'मधुकर' पत्रिका द्वारा बुन्देल-खण्डी लोक साहित्य का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। परन्तु यह पत्रिका भी अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। प्रयाग विश्व विद्यालय के श्री माल-वीय और जबलपुर के श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव ने इस विषय पर काम किया है।

बुन्देलखण्डी लोकगीतों का कोई अच्छा संग्रह अभी तक देखने में नहीं आया। हाँ, लोकसाहित्य के प्रेमी तथा विद्वान् श्री कृष्णानन्द गुप्त ने 'ईसुरी की फागें' नाम से ईसुरी नामक प्रसिद्ध बुन्देल-खण्डी लोककवि के गीतों का संग्रह प्रकाशित किया है।[२] श्री गुप्त की इच्छा कई भागों में इन फागों को प्रकाशित करने की थी, परन्तु उनकी यह योजना पूर्ण नहीं हो सकी। पं० शिवसहाय चतुर्वेदी ने 'बुन्देलखण्डी लोक कथाओं' का सग्रह बड़ी सुन्दरता से किया है जो इस बोली में प्रथम प्रयास है।

---

[१] नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित इसका दूसरा संस्करण सं० २०११ में वहीं से प्रकाशित।

[२] लोक वार्ता परिषद्, टीकमगढ़ से प्रकाशित।

७. मालवी

श्री श्याम परमार ने मालवी-लोकगीतों का सग्रह कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। इनका 'मालवी लोकगीत' इस दिशा में प्रथम स्तुत्य प्रयास है। इधर इन्होंने 'मालवी और उसका साहित्य' भी प्रकाशित किया है, जिसमें मालवी लोक-गीतों तथा लोक-नाट्यों का सुन्दर परिचय दिया गया है।[1] ऐसा विश्वास किया जाता है कि श्री परमार मालवी लोक-गीतों का गवेषणात्मक अध्ययन शीघ्र ही प्रस्तुत करेंगे।

८ कौरवी

आजकल खड़ी बोली जिस प्रदेश में बोली जाती है उसका प्राचीन नाम कुरु प्रदेश है। कुछ विद्वानों ने इस प्रदेश में प्रचलित भाषा का नाम-करण कौरवी किया है। त्रिपि काचार्य राहुल साकृत्यायन ने कुरु प्रदेश के लोकगीतों और कहानियों का सग्रह 'आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत' नाम से प्रकाशित किया है। इस पुस्तक में सगृहीत गीत और कहानियाँ राहुलजी को मेरठ जिले की किसी बुढिया से प्राप्त हुई थीं। इस पुस्तक को उन्होंने गीतों की आगार उसी बुढिया को समर्पित किया है।

कुछ वर्ष हुए लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के एक छात्र ने 'कुरु प्रदेश के लोकगीत' शीर्षक एक निबन्ध प्रस्तुत किया था,[2] जिसमें इस प्रदेश में गाये जाने वाले गीतों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया था। यह निबन्ध अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। यदि यह प्रकाश में आ जाय तो इस प्रदेश के गीतों के सम्बध में हमारे ज्ञान में निश्चित रूप से वृद्धि होगी। सुश्री सत्यागुप्त कौरवी लोक-साहित्य पर काम कर रही हैं।

९. छत्तीसगढी

उसमानिया विश्वविद्यालय के डा० श्यामाचरण दूबे ने 'छतीसगढी लोकगीतों का परिचय' नामक सग्रह प्रस्तुत किया है। इस चेत्र के गीतों का यह प्रथम सग्रह है जो वास्तव में सराहनीय है। प० रामनारायण उपाध्याय के अथक प्रयास से 'निमाड़ी ग्राम-गीत' प्रकाश में आयें हैं। उपाध्याय जी अकेले ही व्यक्ति हैं जिन्होंने इस चेत्र मे एकान्त साधना से काम किया है।

---

[1] राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित

[2] अप्रकाशित

इधर श्री कृष्णलाल 'हंस' ने निमाड़ी लोक-साहित्य पर व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया है।

१०. मगही मैथिली

बिहारी भाषा की तीन बोलियाँ प्रसिद्ध है :—(१) भोजपुरी (२) मैथिली (३) मगही। भोजपुरी लोक-साहित्य ;के सङ्कलन की चर्चा पहिले की जा चुकी है। मगही लोक-गीतों का सग्रह कई विद्वानों ने किया है। इन गीतों का एक सङ्कलन राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना (विहार) से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। मैथिली भाषा का साहित्य तो समृद्ध है, ही परन्तु इसमें लोकगीतों की भी कुछ कमी नहीं है। विद्यापति की कोमल-कान्त-पदावली से परिपूरित इस बोली के लोकगीत भी बडे सरस और मधुर हैं। श्री राम इकबाल सिंह 'राकेश' ने मैथिली-लोक-गीत' शीर्षक से इन गीतों का सङ्कलन और सम्पादन किया है।[1] इस ग्रथ की भूमिका डा० अमरनाथ झा ने लिखी है। यह सग्रह विशाल लोकगीत रूपी समुद्र के दो चार बिन्दु के समान है। आशा है कोई मैथिली लोक-साहित्य का प्रेमी इस बोली के अवशिष्ट गीतों और कथाओं का सङ्कलन कर उन्हें शीघ्र ही प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास करेगा।

लोकोक्तियाँ लोक साहित्य के आवश्यक अग है। जन-जीवन की युग युग की अनुभूतियाँ इनमें सचित रहती हैं। लोक-गीतों में संग्रह की ही भाँति यूरोपीय विद्वानों ने इन लोकोक्तियों के सग्रह की ओर भी ध्यान दिया था। फेलन की 'डिक्शनरी आफ हिन्दुस्तानी प्रोवर्ब्स' इस दिशा में श्लाघनीय प्रयास है। फेलन ने आज से लगभग सौ वर्ष पहिले बिहारी तथा भोजपुरी लोकोक्तियों का संकलन किया था। यह विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ अपने ढंग का अनूठा है।

इधर कुछ लोक-साहित्य सेवियों का भी ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। भोजपुरी लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों के सम्बन्ध में डा० उदयनारायण तिवारी के कार्य की चर्चा पहिले की जा चुकी है। श्री लक्ष्मी लाल जोशी ने 'मेवाड़ की कहावतें' (प्रथम भाग) और रतनलाल मेहता ने "मालवी कहावतों' का प्रकाशन किया है। मेनारिया ने 'राजस्थानी भीलों की कहावतें' संकलित कर एक बड़े अभाव की पूर्ति की

---

[1] हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित।

है। श्री कन्हैयालाल सहल ने 'राजस्थानी कहावतें' संगृहीत कर इस दिशा में सुन्दर पथ प्रदर्शन किया है। इस प्रदेश की कहावतों का सकलन 'राजस्थानी कहावतों के' नाम से कलकत्ते से निकला है। श्री हरगोविन्द गुप्त ने बुन्देली लोकोक्तियों के सम्बध में बहुत बड़ा कार्य किया है। उन्होंने लगभग दो हजार बुन्देली लोकोक्तियों का सग्रह बड़े श्रम तथा लगन के साथ किया है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'बेला फूले आधी रात'[1] में हिन्दी की लोकोक्तियों की सामान्य रूप से चर्चा करते हुए खेती से सम्बद्ध कुछ लोकोक्तियों का सग्रह प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार गढवाली और कुमायुनी लोकोक्तियों का प्रकाशन भी हो चुका है।

हिन्दी की दो प्रसिद्ध बोलिया—व्रज और अवधी-की लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों का प्रकाशन सम्भवतः अभी नहीं हुआ है। आशा है ये भी शीघ्र ही प्रकाश में आयेगीं। प० रामनरेश त्रिपाठी ने कविता-कौमुदी भाग ५ में उत्तर प्रदेश की कुछ कहावतें दी हैं। वर्षा, आँधी, पानी, खेती आदि के सम्बध में घाघ और भड्डरी तथा अन्य जन कवियों द्वारा प्रचलित की गई लोकोक्तियों का एक नया सग्रह त्रिपाठी जी ने अभी हाल ही में तैयार किया है।[2] प० गणेशदत्त 'इन्द्र' ने विभिन्न मासों तथा ग्रहों के सम्बध में एक लेख-माला सन् १९४१ में 'जयाजी प्रताप' में प्रकाशित की थी, जिसमें लोकोक्तियों का अच्छा स ग्रह है। प० सूर्यनारायण व्यास के सम्पादकत्व में 'मालवी लोकोक्तियों' का नया स ग्रह तैयार हुआ है।

कहानी-संग्रह

इधर अनेक लोक-कथाओं का प्रकाशन आत्माराम ऐण्ड सन्स, नयी दिल्ली से हुआ है। स्थानाभाव के कारण इनका विशेष विवरण न देकर पुस्तक तथा लेखक का नाम लिखना ही पर्याप्त समझा जाता है।

१. विन्ध्यभूमि की लोक-कथाएँ—श्री चन्द्र जैन
२. व्रज की लोक कथाएँ—आदर्श कुमारी यशपाल
३. मालवा की लोक कथाएँ—श्याम परमार
४. राजस्थान की लोक कथाएँ—पुरुषोत्तम मेनारिया
५. गढ़वाल की लोक कथाएँ—गोविन्द चातक

---

[1] पृ० २२०-२२८

[2] आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित।

६. उत्तर भारत की लोक-कथाएँ—सावित्री देवी वर्मा भाग १, २, ३
७. निमाड़ी लोक कथाएँ—कृष्णलाल हंस भाग १, २
८. छत्तीसगढ़ की लोक-कथाएँ—चन्द्रकुमार

इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न प्रदेशों—बंगाल, पंजाब तथा सौराष्ट्र की लोक कथाओं का भी प्रकाशन उपर्युक्त स्थान से हुआ। वर्तमान लेखक ने 'भोजपुरी-लोक-कथाओं' का संकलन तैयार किया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

आत्माराम एण्ड सन्स के द्वारा प्रकाशित उपर्युक्त पुस्तकें खड़ी बोली में बालकों को दृष्टि में रख कर लिखी गई हैं। गत पृष्ठों में हिन्दी की विभिन्न बोलियों में उपलब्ध लोक साहित्य सम्बधी केवल प्रधान ग्रन्थों का ही उल्लेख किया गया है।[1] श्री नरेन्द्र धीर की पुस्तक 'मैं धरती पजाब की' उल्लेखनीय है। रेवरेंड ओकले तथा तारादत्त गैरोला की पुस्तक 'हिमालय की लोक कथाएँ' अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है।

---

[1] विशेष के लिए देखिए
(१) श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य, पृ० २३ ३१
(२) प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट (क) तथा परिशिष्ट (ग)
(३) श्रीकृष्णदास : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या

लोक-साहित्य का वर्गीकरण

लोक-साहित्य को जन-जीवन का दर्पण कहा जाय तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। लोक साहित्य जनता के हृदय का उद्गार है। सर्व-साधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्कारों और ऋतुओं में गीत गा-गा कर अपना मनोरंजन करती है। कहानियों को सुनना उनके मनबहलाव का अनन्य साधन है। समय समय पर चुभती हुई लोकोक्तियों और भाव-भरे मुहावरों का प्रयोग कर ग्रामीण जन अपने हृदयगत विचारों का प्रकाशन करते हैं। कुछ सूक्तियों में जिनका निर्माण जनता के अनुभव पर आश्रित है ऐसी अनुभूतियाँ पायी जाती हैं, जिनकी उपलब्धि अन्यत्र नहीं हो सकती। इस प्रकार हम लोक-साहित्य को प्रधानतया पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) लोक-गीत (Folk-lyrics)

(२) लोक-गाथा (Folk-ballads)

(३) लोक-कथा (Folk-tales)

(४) लोक-नाट्य (Folk-drama)

(५) प्रकीर्ण साहित्य (Miscellaneous Literature)

प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ, सुभाषित, बच्चों के गीत, पालने के गीत, खेल के गीत, अर्थहीन गीत इत्यादि आते हैं, जिनका व्यवहार गाँव के लोग अपने प्रतिदिन के व्यवहार में किया करते हैं।

(१) लोक-गीतों के वर्गीकरण की पद्धति

लोक-साहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। जन-जीवन में अपनी प्रचुरता तथा व्यापकता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है। लोक-साहित्य के जिन विभिन्न भेदों का उल्लेख पहिले किया गया है, उनमें पचास प्रतिशत से भी अधिक लोकगीतों की संख्या समझनी चाहिए। ये गीत विभिन्न उत्सवों तथा ऋतुओं में गाये जाते हैं। इनका विभाजन प्रधानतया निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

१. संस्कारों की दृष्टि से ।
२. रसानुभूति की प्रणाली से ।
३. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से ।
४. विभिन्न जातियों के प्रकार से ।
५. क्रिया-गीत की दृष्टि से ।

१. संस्कारों की दृष्टि से

भारतीय जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है। यदि यह कहा जाय कि भारतीय लोगों का धर्म ही प्राण है तो इसमें कुछ अतिशयोक्ति न होगी। भारतीय जीवन में धर्म का स्थान कितनी महत्ता रखता है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। जन्म के पहिले से लेकर मृत्यु के बाद तक इस देश के लोगों का जीवन संस्कारों से सम्बद्ध है। हमारे धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारों का विधान किया है, जिनमें गर्भाधान, पुंसवन, पुत्र जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह और मृत्यु प्रधान हैं। इनमें भी प्रथम दो संस्कारों की प्रथा अब नहीं है। शेष पाँच संस्कार ही आजकल प्रधान रूप से किये जाते हैं। इन विभिन्न संस्कारों के अवसर पर स्त्रियाँ अपने कोमल कण्ठ से गीत गा गा कर जन-मन का अनुरंजन किया करती हैं। मृत्यु के अवसर के गीत बड़े ही कारुणिक तथा हृदय विदारक होते हैं। किसी प्रिय व्यक्ति पति या पुत्र के मरने पर उसकी स्त्री या माता उस मृतात्मा के गुणों का वर्णन करती हुई रोती और विलाप करती है। ऐसे गीतों की संख्या अधिक नहीं है।

२. रसानुभूति की प्रणाली से

लोकगीतों में अनेक रसों की अभिव्यक्ति बड़ी ही सुन्दर रीति से हुई है। इन गीतों में विभिन्न रसों की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है उसका स्रोत कदापि नहीं सूख सकता। यों तो इन गीतों में सभी रसों की उपलब्धि होती है परन्तु निम्नांकित पाँच रसों की ही प्रधानता पायी जाती है।

१. शृङ्गार रस
२. करुण रस
३. वीर रस
४. हास्य रस
५. शान्त रस

के लोगों का राष्ट्रीय या जातीय गीत है। अहीर लोग जिस भावभंगी तथा सुन्दरता के साथ इसे गाते हैं, उस प्रकार से दूसरा नहीं गा सकता है। जो अहीर विरहा गाने में जितना ही प्रवीण होता है, वह उतना ही योग्य समझा जाता है। इस जाति के लोगो में विवाह के अवसर पर वर की योग्यता उसके विरहा गाने पर ही आश्रित होती है।

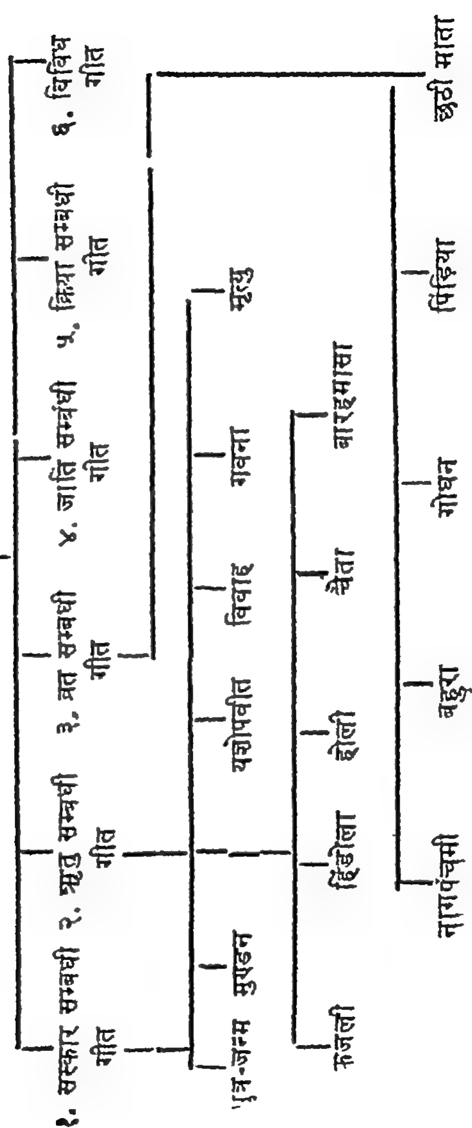
'पचरा' नामक गीत को दुःसाध जाति के लोग प्रायः गाया करते है। जब कोई इस जाति व्यक्ति बीमार पड़ जाता है, तब इस जाति का कोई बूढा बुलाया जाता है। वह आकर रोगी के पास, बैठकर पचरा गा-गा कर देवी का आवाहन करता है। इस प्रकार कई दिनों तक इस प्रक्रिया के करने से रोगी का रोग दूर हो जाता है, ऐसा उनका विश्वास है।

वर्षा ऋतु में एक विशेष जाति के लोग-नट-ढोल को गले में बाँध कर 'आल्हा' गाते फिरते है। इस प्रकार भिक्षा का अयोजन करना उनका व्यवसाय हो गया है। गेरुआ वस्त्र को धारण करने वाले कुछ साधु—जो 'साँई' के नाम से प्रसिद्ध है—सारगी के ऊपर गोपोचन्द और भरथरी के गीत गाते फिरते है। यह कार्य उनकी उदर-पूर्ति का प्रधान साधन बन गया है। माली लोग माता के गीत-गाते हैं।

५. क्रिया के आधार पर

कुछ ऐसे भी गीत पाये जाते हैं जो किसी विशेष कार्य को करते समय गाये जाते हैं। उदाहरण के लिए धान को रोपते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उन्हें 'रोपनी के गीत' कहते हैं। इसी प्रकार खेत को निराते या सोहते समय जो गीत गाये जाते हैं वे 'निरवाही' या 'सोहनी' के नाम से प्रसिद्ध है। 'जँतसार' उन गीतों को कहा जाता है जिन्हें जाँत पीसते समय स्त्रियाँ गाती हैं। तेली तेल को 'पेरते' समय अपने हृदय के भावों का मन्थन करता हुआ जिन पदों को सस्वर रूप से गाता है उन्हें 'कोल्हू के गीत' की सञा दी गई है। चूँकि ये गीत एक विशेष के कार्य (क्रिया) करते समय गाये जाते हैं अतः इन्हें क्रिया गीतों की श्रेणी में रखा गया है। इन गीतों को गाने से काम करने से उत्पन्न थकावट दूर होती जाती है और साथ ही उस काम के करने में मन भी लगा रहता है।

उपर्युक्त लोक-गीतों के वर्गीकरण को निम्न लिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—


लोक-गीत
१. संस्कार सम्बंधी गीत
२. ऋतु सम्बंधी गीत
३. व्रत सम्बंधी गीत
४. जाति सम्बंधी गीत
५. क्रिया सम्बंधी गीत
६. विविध गीत
पुत्र-जन्म
मुण्डन
यज्ञोपवीत
विवाह
गवना
मृत्यु
कजली
हिंडोला
होली
चैता
बारहमासा
नागपंचमी
बहुरा
गोधन
पिंड़िया
छठी माता

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(४) व्रत-उपवास और त्यौहारों के गीत
(५) सस्कारों के गीत
(६) विवाह के गीत
(७) भाई-बहन के प्रेम के गीत
(८) साली-सालेल्यॉं (सरहज) रा गीत
(९) पति-पत्नी के प्रेम के गीत
(१०) पणिहारियों के गीत
(११) प्रेम के गीत
(१२) चक्की पीसते समय के गीत
(१३) बालिकाओं के गीत
(१४) चरखे के गीत
(१५) प्रभाती गीत
(१६) हरजस—राधा-कृष्ण के प्रेम के गीत
(१७) धमालें–होली के अवसर पुरुषों द्वारा गेय गीत
(१८) देश-प्रेम के गीत
(१९) राजकीय-गीत
(२०) राज दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत
(२१) जम्मे के गीत—वीरों, सिद्ध पुरुषों महात्माओं की स्मृति में रखे गये जागरण को 'जम्मा' कहते हैं।
(२२) सिद्ध पुरुषों के गीत
(२३) क—वीरों के गीत
(२३) ख—ऐतिहासिक गीत
(२४) क—गवालों के गीत
(२४) ख—हास्यरस के गीत
(२५) पशु-पक्षी सम्बंधी गीत
(२६) शान्त रस के गीत
(२७) गाँवों के गीत (ग्राम-गीत)
(२८) नाट्य गीत
(२९) विविध—

इस श्रेणी विभाजन के सम्बध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसमें कोई क्रम नहीं दिखलायी पड़ता। पारीकजी ने हास्य, शृङ्गार और वीर रस के गीतों को तीन श्रेणियों मे पृथक्-पृथक् रखा है, जिनको एक ही वर्ग

में रखा जा सकता है। इसी प्रकार भाई-बहन और पति-पत्नी के गीतों का अन्तर्भाव संस्कार या ऋतु सम्बधी गीतों में किया जा सकता है।

इधर श्याम परमार ने 'भारतीय लोक-साहित्य' में श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव के मत का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा प्रतिपादित लोकगीतों के भेदों का उल्लेख किया है। श्री भालेराव ने गीतों को चार श्रेणियों मे विभक्त किया है।[१]

(१) सस्कार विपयक गीत।

(२) माहवारी गीत।

(३) सामाजिक-ऐतिहासिक गीत।

(४) विविध।

माहवारी गीतों में श्री भालेराव ने ऋतु और व्रत सम्बंधी गीतों को एक ही साथ रखा है। सामाजिक-ऐतिहासिक गीतों का सम्बंध लोक-गाथाओं से है। कहने की आवश्यकता नहीं यह विभाजन भी हमारे पूर्वोक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत ही है।

जिस प्रकार काव्य का विभाजन गीति-काव्य और प्रबन्ध काव्य के प में किया जाता है, उसी प्रकार लोक-गीतों का विभाजन भी उनके वर्ण्य विपय के आधार पर गेय गीत (Lyrics) और प्रबन्ध गीत (Ballads) इन दो भागों में किया जा सकता है। गेय गीत वे छोटे-छोटे गीत हैं जिनमें कथावस्तु का प्रायः अभाव होता है। उनकी गेयता ही इन गीतों की आत्मा है। इस श्रेणी के गीतों मे सस्कार, ऋतु और व्रत सम्बधी गीत आते हैं। प्रबन्ध गीत वे गीत हैं जिनमें कथावस्तु की ही प्रधानता रहती है। उनमें भी गेयता होती है, परन्तु उसका स्थान गौण है। कथानक को आगे बढाने में जितनी गेयता आवश्यक है, उतनी ही उनमें पायी जाती है। यही इनका स्वरूपगत भेद समझना चाहिए।

२. लोक-गाथा

पिछले किसी अध्याय में लोक-साहित्य का विभाजन करते हुए उसका वर्गीकरण लोकगीत और लोक-गाथा के रूप में किया गया है। लोकगीत वे गीत हैं जिनमें कथानक प्राय कुछ भी नहीं होता। गेयता ही उनका प्रधान गुण है। परन्तु लोक-गाथाओं मे कथावस्तु की ही प्रधानता

---

[१] श्याम परमार : भारतीय लोक-साहित्य, पृ० ६४-६५

होती है। गेयता उसमें गौण स्थान रखती है। आकार की दृष्टि से भी दोनों में भेद पाया जाता है। लोकगीत छोटे-छोटे होते हैं, परन्तु लोक-गाथा अपने कथानक के कारण बहुत बड़ी होती है। पहिले को हम गीति-काव्य और दूसरे को प्रबन्ध-काव्य कह सकते हैं। कजली, होली, चैता, सोहर, जँतसार, भजन और पराती आदि गीति काव्य की कोटि में रखे जा सकते हैं और आल्हा, विजयमल, लोरकी, हीर-राँझा, ढोला-मारू, राजा रसालू के गीतों को प्रबन्ध काव्य कहा जा सकता है। अंग्रेजी में लोकगीत को 'फोक-लिरिक' और प्रबन्ध काव्य को 'फोक-बैलेड' कहा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीत और लोक-गाथा में विषय-गत और स्वरूपगत दोनों प्रकार की विभिन्नता पायी जाती है। लोकगीतों में साधारणतया शृङ्गार और करुण रस की प्रधानता पायी जाती है, परन्तु लोक-गाथाओं का प्रधान रस प्राय: वीर हुआ करता है। 'ढोला मारू रा दूहा' इस नियम का अपवाद समझना चाहिए।

अँग्रेजी विद्वानों द्वारा बैलेड की जो परिभाषा बतलायी गई है, उसकी पर्यालोचना करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बैलेड में कथानक और गेयता दोनों विद्यमान रहते हैं। लोक-गाथाओं के भी ये ही दोनों आवश्यक तत्त्व हैं इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अतः लोक-गाथा वह कथा है जो गीतों में कही गई हो।

बैलेड के लिए 'गाथा' शब्द की सार्थकता

श्री सूर्यकरण पारीक ने ग्राम-गीत और लोकगीत में पार्थक्य दिखलाने का प्रयास किया है। इन्होंने बैलेड शब्द के लिए 'गीत-कथा' का प्रयोग किया है।[1] परन्तु लेखक की विनम्र सम्मति में बैलेड के लिए 'लोक-गाथा' शब्द का प्रयोग अधिक समीचीन है। संस्कृत साहित्य में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली (लिरिक्स) के अर्थ में प्राचीन काल से होता चला आया है। हाल की 'गाथा सप्तशती'—जिसमें शृङ्गार रस से भरी सात सौ आर्याओं का संग्रह है—इसका उदाहरण है। पालि साहित्य में भी गाथा का अर्थ यही पाया जाता है। पालि जातकावली में सिंह चर्म जातक में निम्नांकित श्लोकों को गाथा के उदाहरण में उद्धृत किया गया है[2] :—

---

[1] पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० ७८-८९

[2] पालि जातकावली

"नेतं सीहस्स नदितं न ब्यग्घस्स न दीपिनो।
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो॥"
चिरं पि खो तं खादेय्य गद्रभो हरितं यवं।
पारुतो सीहचम्मेन रवमानो च दूसयी॥

वैदिक साहित्य में गाथिन् शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया गया पाया जाता है जो किसी प्राचीन आख्यान या कला को कहने वाला हो।[1] गाथा शब्द से इन् प्रत्यय करने पर इस पद की निष्पत्ति होती है। अतः गाथा शब्द का अर्थ हुआ कोई आख्यान या कथा की हिन्दी भोजपुरी बोली में गाथा का अभिप्राय किसी कथा या कहानी से समझा जाता है। जैसे 'का आपन गाथा गवले बाड़' अर्थात् तुम क्या अपनी कहानी सुना रहे हो? अथवा 'ताहार गाथा ना ओराई' अर्थात् तुम्हारी कथा समाप्त नहीं होगी। इस प्रकार 'गाथा' शब्द में गेयता और कथानक दोनों का अंश विद्यमान है। इस शब्द से दोनों का भाव द्योतित होता है। इसलिए ऐसे प्रबन्धात्मक गीतों के लिए जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ ही गेयता भी विद्यमान हो 'लोक-गाथा' शब्द का प्रयोग नितांत उपयुक्त है।

इधर हिन्दी में बैलेड शब्द के लिए गीत-कथा या कथा-गीत का प्रयोग कुछ लोग करने लगे हैं। प्रबन्धात्मक गीत का व्यवहार भी कहीं-कहीं देखने में आता है। परन्तु लेखक की सम्मति में 'लोक-गाथा' शब्द से जिस भाव की अभिव्यक्ति होती, है वह इन उपर्युक्त शब्दों से नहीं होती। इसलिए इस पुस्तक में बैलेड के लिए सर्वत्र 'लोक-गाथा' शब्द का ही व्यवहार किया गया है। यदि लोक-साहित्य के विद्वान् इस शब्द को अपनावें तो लोकगीत और कथा-गीत के पार्थक्य की बहुत कुछ गड़बड़ी सदा के लिए दूर हो जायेगी।

लोक-गाथा की परिभाषा

बैलेड अथवा लोक-गाथा की परिभाषा अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है। प्रोफेसर केट्रीज का मत है कि बैलेड वह गीत है जो किसी कथा को कहता है अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलेड वह कथा है जो गीतों में कही गई हो।[2] हैजलिट् ने बैलेड की परिभाषा बतलाते हुए

[1] ऋग्वेद १।७।१

[2] A ballad is a song that tells a story or to take the other point of view a story told in song.
इंगलिश ऐंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स, भूमिका पृ० ११

इसे 'गीतात्मक कथानक' कहा है।[१] फ्रैंक सिजविक ने अपनी पुस्तक में बैलेड की परिभाषा बतलाने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इसे एक अमूर्त पदार्थ कहा है।[२] न्यू इगलिश डिक्शनरी के प्रधान सम्पादक डा० मरे ने बैलेड की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजनापूर्ण कविता है जिसमें कोई जनप्रिय आख्यान रोचक ढङ्ग से वर्णित हो।[३]

लोक-गीत और लोक-गाथा में अन्तर

लोक गीत और लोक-गाथा के अन्तर को प्रधानतया दो भागों में बाँटा जा सकता है :—(१) स्वरूपगत भेद (२) विषयगत भेद। स्वरूपगत भेद के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि लोकगीत आकार में छोटा होता है परन्तु लोक-गाथा का आकार बहुत बड़ा होता है। उदाहरण के लिए बिरहा लोक-गीत है जो केवल चार कड़ियों (पक्तियों या चरणों) में ही समाप्त हो जाता है परन्तु लोक-गाथा का विस्तार सैकड़ों पृष्ठों में होता है। आजकल जो 'आल्ह खण्ड' उपलब्ध होता है वह बड़े आकार के लगभग पाँच सौ पृष्ठों का है। 'ढोला मारू रा दूहा' के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। सोरठी और विजयमल का कथानक भी बहुत लम्बा है। कुछ लोक-गाथाओं का आकार छोटा भी होता है—जैसे 'छत्रियाणी भगवती'—परन्तु इनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

दूसरा भेद विषयगत है। लोक-गीतों में विभिन्न संस्कारों—पुत्र जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना, ऋतुओं—वर्षा, वसन्त और ग्रीष्म और पर्वों पर गाये जाने वाले गीत सम्मिलित हैं जिनमें घर-गृहस्थी, प्रेम-विरह, वन्ध्या, विधवा आदि के सुख-दुःखों के वर्णन की प्रधानता ही उप-

---

[१] Lyrical Narrative

[२] "The difficulty is to define the ballad, for it has some of the qualities of an abstract thing It is essentially fluid, nor rigid nor static"
दि बैलेड पृ० ८

[३] A simple spirited poem in short stanzas in which some popular story is graphically told
न्यू० इ० डि०

लब्ध होती है। कहीं कोई विधवा स्त्री अपने भाग्य को कोसती है तो किसी वन्ध्या स्त्री का करुण प्रलाप सुनाई पड़ता है। कहने का आशय यह है कि घर के संकुचित क्षेत्र में जीवन की जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार मनुष्य करता है, उन्हीं की झाँकी हमें इन लोक-गीतों में देखने को मिलती है। परन्तु लोक-गाथाओं का विषय लोक-गीतों से कुछ भिन्न है। इसमें सन्देह नहीं कि इन गाथाओं में भी प्रेम का पुट गहरा रहता है, लेकिन यह प्रेम जीवन के संघर्षों का सामना करता हुआ भी अन्त में सफलीभूत होता हुआ दिखलाया गया है। इन गाथाओं में वीरता, साहस, रहस्य एवं रोमाञ्च का अंश अधिक पाया जाता है। उदाहरण के लिए आल्हखण्ड में माढ़ोगढ़ की लड़ाई का वर्णन उपलब्ध होता है तो 'सोरठी' की गाथा में रहस्य और रोमाञ्च की प्राप्ति होती है। कहीं-कहीं इन गाथाओं में अनेक वीर पुरुष लोक-त्राता या जन-रक्षक के रूप में अंकित किये गये हैं। अनेक गीतों में मुगलों के अत्याचार से स्त्रियों को बचाने के लिए त्यागी वीरों ने अपने प्राणों की आहुति तक दे दी है।

इस प्रकार लोक-गीतों और लोक-गाथाओं का पार्थक्य स्पष्ट है।

३. लोक-कथा

लोक-साहित्य के वर्गीकरण में लोक-कथाओं का प्रमुख स्थान है। ये अपनी अनन्तता और लोकप्रियता के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। माताएँ सुन्दर कहानियाँ सुना कर अपने बच्चों को आनन्द प्रदान करती हैं। बालक इन कहानियों को सुनते-सुनते निद्रा देवी की गोद में चले जाते हैं। बालिकाएँ अपने भाई की सुख और समृद्धि के लिए पिड़िया का व्रत करती हैं और कार्तिक में भ्रातृ-द्वितीया से लेकर अगहन की शुक्ल पक्ष की दूज तक तक—पूरे एक महीने तक—नियमित रूप से पिड़िया की कथा रात्रि में सुनती हैं। प्रातःकाल में इस कथा को सुने बिना वे अन्न ग्रहण नहीं कर सकतीं। प्रत्येक व्रत के अवसर पर किसी न किसी देवी-देवता की कथा कही जाती है। त्रिलोकीनाथ की कथा अब गाँवों में सत्यनारायण की कथा का स्थान लेने जा रही है। जाड़े की रात्रियों में चौपाल में बैठकर ग्राम-वृद्ध, रोचक कहानियों को सुना कर बालकों का मनोरंजन किया करते हैं। शीत से रक्षा के लिए अग्नि को प्रज्वलित कर उसके चारों ओर बैठ कर आग 'तापने' वाले ग्रामीण जन लोक-कहानियों को सुना कर जनता का दिल बहलाते हैं। खेतों में पशुओं को चरानेवाले चरवाहे किसी वृक्ष की शीतल

छाया में एकत्र बैठ कर छोटी-छोटी चुटीली कहानियों के द्वारा समय बिताते हैं। कहने का आशय यह है कि लोक-जीवन इन लोक-कथाओं द्वारा पूर्ण रूप से अनुस्यूत है।

४. लोक-नाट्य

नाटक में गीत, नृत्य और संगीत की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। गीत के साथ संगीत की योजना बड़ा आनन्द प्रदान करती है, परन्तु इसके साथ ही यदि नृत्य भी हुआ तो आनन्द की सीमा नहीं रहती। संस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि नाट्य जन-मन के अनुरंजन का सर्वोत्कृष्ट साधन है। ग्रामीण जनता नाट्य को देख कर प्रसन्नता का जितना अनुभव करती है उतना अन्य किसी वस्तु से नहीं। भोजपुरी प्रदेश में भिखारी ठाकुर का लिखा हुआ 'बिदेसिया' बड़ा लोक-प्रिय तथा प्रसिद्ध लोक-नाट्य है, जिसमें परदेश में गये हुए पति का वर्णन है। उसके वियोग में उसकी स्त्री अनन्त कष्टों का अनुभव करती है और अपने दुःखों को लिपिबद्ध कर वह अपने परदेसी पति के पास भिजवाती है, जिसे पढ़कर वह घर लौट आता है। 'बिदेसिया' नाटक की संक्षेप में यही कथा है।

भिखारी पहिले स्वयं इस नाटक का अभिनय किया करता था जिसे देखने के लिए हज़ारों आदमियों की भीड़ इकट्ठी होती थी। दस-दस और पन्द्रह-पन्द्रह मील से लोग पैदल चल कर 'बिदेसिया' नाटक को देखने के लिए आया करते थे। जनता-दर्शकों-की उमड़ती हुई भीड़ को नियन्त्रित करने के लिये अधिकारियों को पुलिस का प्रबन्ध करना पड़ता था। अब उसके अनुयायियों ने अनेक मंडलियों की स्थापना कर 'बिदेसिया' के अभिनय की परम्परा को कायम रखी है। यह लोक-नाट्य बड़ा ही लोकप्रिय सिद्ध हुआ है।

गुजरात में 'गर्बा' नामक लोक-नृत्य बड़ा प्रसिद्ध है जिसमें गीत और संगीत का सुन्दर सामञ्जस्य पाया जाता है। गुजराती लोक-साहित्य के आचार्य श्री झवेरचन्द मेघाणी ने इस लोक-नृत्य को गीत-संगीत नृत्य की त्रिवेणी कहा है। युवती स्त्रियाँ अथवा लड़कियाँ समुदाय में इस नृत्य का अभिनय करती है जो बड़ा ही मनोरंजक होता है।

इसी प्रकार मालवा में 'माँच' नामक लोक नृत्य प्रसिद्ध है जिसका अभिनय देखने के लिए जनता की बड़ी भीड़ एकत्र हुआ करती है। इन लोक-नृत्यों का अध्ययन बड़ा ही रुचिकर और मनोरंजनकारी है।

५. प्रकीर्ण साहित्य

ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों, कहावतों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों और कहावतों में चिरसञ्चित अनुभूत ज्ञान-राशि भरी पड़ी है। इनके अध्ययन से हमारी सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है, जिनका विस्तृत विवेचन यथावसर किया जायेगा। कुछ ऐसी भी सूक्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें नीति के वचन कहे गये हैं। घाघ और भड्डरी की उक्तियों में ऋतु-विज्ञान की बहुमूल्य सामग्री पायी जाती है। खेती और वर्षा के सम्बंध में घाघ की जो उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, उनमें स्वानुभूति की मात्रा अत्यधिक है। पशुओं की पहिचान भी घाघ को अच्छी थी। उन्होंने अच्छे या बुरे पशुओं की जो पहिचान बतलायी है, वह बिल्कुल ठीक है। पालने के गीत तथा खेल के गीत भी इसी कोटि में रखे जा सकते हैं। माताएँ बच्चों को पालने पर सुला कर मधुर गीत गाती हैं जिन्हें सुनते-सुनते बच्चे सो जाते हैं। बालक खेल खेलते समय गीतों को भी गाते रहते हैं।

गाँव के लोग अपने दैनिक व्यवहार में गाली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया करते हैं। अतः मौखिक साहित्य के अन्तर्गत गालियों की चर्चा अत्यावश्यक है। इन गालियों में समाज की दशा का उल्लेख यत्रतत्र पाया जाता है।

लोकगीतों का विवेचन

(१) संस्कार-सम्बंधी गीत

हमारे जीवन के सभी कृत्य धर्म से ओत-प्रोत हैं। भारतीय धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारों का विधान किया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारे जीवन में कोई न कोई संस्कार होते ही रहते हैं। जन्म से पूर्व भी पुंसवन आदि संस्कारों का वर्णन उपलब्ध होता है। यद्यपि कुल संस्कारों की संख्या सोलह है परन्तु पुत्र जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु प्रधान संस्कार माने जाते हैं। इन अवसरों पर (अन्तिम को छोड़कर) स्त्रियाँ कोकिल कण्ठ से गीतों को गा-गा कर अपने हार्दिक उल्लास और आनन्द को प्रकट करती हैं। जहाँ इन गीतों मे प्रसन्नता और उछाह दिखायी पड़ता है, वहाँ मृत्यु-गीतों में विषाद की अमिट रेखा उपलब्ध होती है। इन्हीं संस्कार सम्बंधी गीतों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ उपस्थित किया जाता है।

१. सोहर

पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'सोहर' कहते हैं। कहीं कहीं इन्हें 'मंगल' भी कहा जाता है। गीतों में इस शब्द का प्रयोग भी हुआ है :—

"गावहु ए सखि! गावहु, गाइ के सुनावहु हो।
सब सखि मिलि जुलि गावहु, आजु 'मंगल' गीत हो॥"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचन्द्र के जन्म के अवसर पर मानस में मंगल गाने का उल्लेख किया है :—

"गावहिं मंगल मंजुल बानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी॥"

सोहर शब्द की व्युत्पत्ति 'शोभन' शब्द से ज्ञात होती है। संभवतः यही शोभन शब्द शोभिलो>सोहिलो>सोहद>सोहर के रूपों में परिवर्तित होता हुआ इस रूप में आ गया है। भोजपुरी मे 'सोहल' का अर्थ अच्छा लगना है जो संस्कृत के 'शोभन' से मिलता-जुलता है। सोहर की उत्पत्ति 'सुघर' शब्द से भी मानी जा सकती है जिसका अभिप्राय 'सुन्दर' होता है। पुत्र-जन्म के गीत सोहिलो के नाम से भी प्रसिद्ध है।

नामकरण

इस मांगलिक अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं वे 'सोहर' छन्द में होते हैं। इस छन्द में निबद्ध होने के कारण ही इन गीतों का नाम सोहर पड़ गया है। भोजपुरी गीतों में जो सोहर उपलब्ध होते हैं उनमें तुक नहीं होता और न वे पिंगलशास्त्र के नियमों के अनुसार ही लिखे गये होते हैं। ये मतवाली पहाड़ी नदी की भाँति स्वच्छन्द रीति से बहते चलते हैं। तुलसीदास जी ने 'रामलला नहछू' में जिन सोहरों की सृष्टि की है उनमें तुक के साथ ही साथ प्रत्येक पक्ति में समान मात्राएँ उपलब्ध होती हैं।

पुत्र-जन्म भारतीय ललनाओं की ललित कामनाओं की चरम परिणति है। मानी गई मनौतियों का मनोरम परिणाम है। इस अवसर पर पास-पड़ोस की स्त्रियाँ—विशेषतः लोकगीतों की पडिता वृद्धाएँ एकत्र होकर नव प्रसूता स्त्री के 'सूतिका गृह' के द्वार पर बैठ कर, मनोरजक सोहरों को सुना कर उस घर में अमृत की वर्षा करती हैं। ये गीत बारह दिनों तक गाये जाते हैं और बालक के 'बरहो' सस्कार (जो बारहवें दिन किया जाता है) के साथ ही इन गीतों की समाप्ति होती है।

परम्परा

धनी-मानी तथा समृद्ध व्यक्तियों के घरों में पुत्र के पैदा होने पर, 'पौरिया' नचाने की प्रथा है। पौरिया प्रायः मुसलमान होते हैं जो इस समय पर श्री रामचन्द्र के जन्म-ग्रहण करने की कथा को गा-गा कर नाचते हैं। 'सिरि रामचन्दर जनम लिहले चइत रामनवमी' यह उनके गीतों का प्रधान टेक है। परन्तु यह प्रथा अब धीरे-धीरे उठती चली जा रही है।

पुत्र की प्राप्ति उत्सव का प्रधान अवसर समझा जाता था और आज भी माना जाता है। अतः इस समय नाच गान की प्रथा प्राचीन काल में भी प्रचलित थी। आदि कवि, तमसा-तट के तपस्वी महर्षि वाल्मीकि ने राम-जन्म के समय गन्धर्वों द्वारा गाने और अपसराओं द्वारा नाचने का वर्णन किया है।[1]

"जगुः कलं च गन्धर्वा, ननृतुश्चाप्सरो गणाः
देवदुन्दुभयो नेदु' पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ॥

महाकवि कालिदास ने अज के शुभ जन्म के अवसर पर राजा

---

[1] वालकाण्ड, १८।१६

दिलीप के महल में वेश्याओं के द्वारा नृत्य तथा मंगल वाद्य होने का उल्लेख किया है[1] :—

"सुखश्रवा मंगलतूर्यनिस्वना
प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः
पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥

वर्ण्य विषय

पुत्र-जन्म के गीतों में आनन्द और उल्लास का विशद् वर्णन होना स्वाभाविक है। इनमें नव प्रसूता स्त्री के हृदय में गुदगुदी पैदा करने वाले गीतों की झाँकी भी देखने को मिलती है। कहीं-कहीं बन्ध्या स्त्रियों की करुण दशा का चित्र सहृदयों के हृदय में विशद् सहानुभूति की उत्पत्ति करता है।

सोहरों का प्रधान विषय संभोग शृङ्गार का वर्णन है। इनमें स्त्री-पुरुष की रतिक्रीड़ा, गर्भाधान, गर्भिणी की शरीर यष्टि, प्रसव-पीड़ा, दोहद, धाय का बुलाना और पुत्र जन्म का वर्णन पाया जाता है।

गर्भवती स्त्री जिन विभिन्न वस्तुओं को खाने की इच्छा करती है उसे 'दोहद' कहते हैं। कालिदास ने सुदक्षिणा के दोहद का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।[2] इन गीतों में दोहद का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है तथा पति उसकी पूर्ति करता हुआ पाया जाता है। पति स्त्री से पूछता है कि तुम्हें कौन सी वस्तु खाने में अच्छी लगती है। इस पर वह उत्तर देती है कि मुझे धान (चावल) का भात, अरहर की दाल, रोहू नामक मछली और तित्तिर का मांस स्वादिष्ट लगता है। इसके अतिरिक्त नीबू, केला और नारियल भी मुझे पसन्द है।[3]

जहाँ इन गीतों में पुत्र के पैदा होने पर महान् उत्सव मनाया जाता है, वहाँ पुत्री के जन्म के कारण विषाद की गहरी रेखा इनमें दिखायी पड़ती है। माता कहती है कि जैसे पुरइन का पत्ता हवा के कारण काँपता है, उसी

---

[1] रघुवंश, ३।१९

[2] न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं,
स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी ।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृत,
प्रियासखीमुत्तरकोशलेश्वर । रघुवंश ३।५

[3] भो० ग्रा० गीत, भाग १, पृ० ५१-५२

प्रकार मेरा हृदय पुत्री के जन्म से काँप रहा है। इसीलिए पुत्री पैदा होने पर ये गीत नहीं गाये जाते।

खेलवना के गीत भी सोहर के समान ही पुत्र पैदा होने के उत्सव पर गाये जाते हैं, परन्तु सोहर से इनमें कुछ भिन्नता है। सोहर में विशेषकर पुत्र जन्म की पूर्वपीठिका का वर्णन रहता है, परन्तु खेलवन के गीतों में उत्तरपीठिका का। पुत्र-प्राप्ति की लालसा रखने वाली स्त्री, गर्भ की वेदना से व्याकुल तरुणी, बधू के मगल साधन में निरत सास, धाय को दौड़ कर बुलाने वाला पति बालक के उत्पन्न होने पर धन-धान्य माँगने वाली धाय —ये सब सोहर के प्रतिपाद्य विषय हैं। परन्तु सद्यःजात शिशु का रुदन, माता का आनन्द, सास की प्रसन्नता अपने कुलांकुर के पैदा होने के हेतु सर्वस्व लुटा देने वाले पिता का हर्ष 'खेलवना' के मुख्य विषय हैं। यद्यपि सोहर और खेलवना के गीतों के बीच में कोई मध्य रेखा नहीं खींची जा सकती, परन्तु स्थूल रूप से दोनों गीतों में यही प्रार्थक्य है। इन दोनों प्रकार के गीतों का वर्ण्य विषय समान—पुत्र जन्म—होने के कारण सोहर के भीतर ही खेलवना का अन्तर्भाव माना जाता है।

मैथिली सोहरों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। इनमें भी भोजपुरी सोहरों की भाँति दोहद, प्रसव-पीड़ा, आनन्द और उछाह का वर्णन उपलब्ध होता है। परन्तु शृंगार की अपेक्षा इनमें करुण का पुट अधिक है। मैथिली सोहर तुकान्त और भिन्न तुकान्त दोनों प्रकार के पाये जाते हैं[1]। इनके वर्ण्य विषय के सम्बध में श्री राम इकबाल सिंह 'राकेश' लिखते हैं कि "सोहर में माशूक आशिकों और नायिका-नायकों की जुल्फें सँवारने के लिए बेचैन नहीं दीखती। सोहर सुखान्त होता है और इसमें आशा की निर्झरिणी टेढ़ी नागिन-सी बलखाती बिजली सी दौड़ती चली गई है।"[2]

ब्रज में इन गीतों को सोभर, सोहर या सोहिले कहा जाता है। सोभर वह घर है जिसमें नवप्रसूता स्त्री रहती है। भोजपुरी में इसे 'सउरि' कहते हैं। अतः प्रसूतिका-गृह के उपलक्ष में गाये जाने वाले गीत 'सोभर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भोजपुरी प्रदेश की ही भाँति ब्रज में भी पुत्र जन्म के समय विभिन्न अवसरों पर गाने के लिए भिन्न-भिन्न गीत प्रचलित है। इन गीतों को प्रधानतया चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) जन्ति के

---

[1] राकेश : मै० लो० गीत, पृ० ५०

[2] वही, पृ० ५०

गीत (२) छठी के गीत (३) जगमोहन लुगरा (४) तगा। जन्ति तथा छठी के गीतों के भी अनेक भेद पाये जाते है।[1]

(२) मुण्डन के गीत

बालक जब बड़ा होने लगता है तब उसका मुण्डन संस्कार किया जाता है। इसे संस्कृत में 'चूडाकर्म' कहते है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में मुण्डन संस्कार का उल्लेख किया है।[2] गोस्वामी तुलसीदास ने महर्षि वशिष्ठ के द्वारा राम के चूडाकर्म का वर्णन रामचरित मानस में किया है।[3] मुण्डन षोडश संस्कारों में एक प्रसिद्ध संस्कार है। इस संस्कार के पहिले बालक के बालों को काटना निषिद्ध है। बालक के जन्म के पहिले, तीसरे, पाँचवे या सातवें-विषम वर्ष वर्ष में ही इस कार्य को सम्पादित किया जाता है। इससे अधिक विलम्ब करना अनुचित है।

किसी पवित्र तीर्थ स्थान में, देव स्थान में अथवा नदी के किनारे यह संस्कार सम्पादित किया जाता है। अधिकांश लोग मिर्जापुर जिले में स्थित विन्ध्याचल देवी के मन्दिर पर अपने पुत्रों का मुण्डन कराते हैं। अनेक लोग मनौतियाँ मान कर वहाँ जाते है। परन्तु जो लोग अपनी क्षीण आर्थिक परिस्थिति के कारण वहाँ नहीं जा सकते वे किसी नदी के किनारे अथवा देवस्थान के पास इस कार्य को सम्पन्न करते हैं।

भोजपुरी प्रदेश मे गाँव की स्त्रियाँ झुण्ड बना कर इस अवसर पर बालक और उसकी माता के साथ गंगा के किनारे जाती है। वे नदी के इस किनारे जमीन में खूँटा गाड़कर उसमें मूँज की नयी रस्सी बाँध देती है, जिसमें आम के पत्ते स्थान स्थान बाँधे गये रहते हैं। यह रस्सी तोरण का कार्य करती है। इस रस्सी को लेकर स्त्रियाँ नाव में बैठ कर नदी के उस पार जाती हैं इस विधि को 'गंगा-ओहारना' कहते हैं। फिर नाई

---

[1] डा० सत्येन्द्र ब्र० लो० सा० अ०, पृ० १२२ २३

[2] अथास्य गोदान विधेरनन्तरं
विवाहदीक्षां निरवर्तयद् गुरु
[रघुवंश ३।३३]

[3] चूडाकर्म कीन्ह गुरु आई।
[रा० च० मा०, बालकाण्ड]

बालक के बालों को कैंची से काटता है। यज्ञोपवीत संस्कार के पहिले छुरे से बालों को काटना निषिद्ध माना जाता है।

वर्ण्य-विषय

मुण्डन के गीतों में कहीं तो कोई स्त्री इन्द्र भगवान् से जल न बरसाने की प्रार्थना कर रही है तो, कहीं बालक की फूआ अपने भानजे के मुण्डन में सम्मिलित होने के लिए चली आ रही है। कहीं भाई अपनी बहन से 'लापर परीछने' की प्रार्थना करता है तो कहीं बहन अपने पिता से 'नेग' के रूप में आभूषण माँगती है। मुण्डन और जनेऊ के अवसर बालक की फूआ (बुआ) को नेग (उपहार) की बड़ी आशा रहती है। अतः इन गीतों में इसका बारम्बार उल्लेख उपलब्ध होता है।

(३) यज्ञोपवीत के गीत

मनु ने लिखा है कि मनुष्य जन्म से शूद्र उत्पन्न होता है परन्तु संस्कारों के करने के उपरान्त ही वह 'द्विज' कहलाता है[१]। प्राचीन काल में इस संस्कार का बड़ा महत्व था। आज भी उच्च वर्ण—ब्राह्मण और क्षत्री—के लोग इसे बड़े उत्सव के साथ करते हैं।

यज्ञोपवीत को 'जनेऊ' भी कहा जाता है जो इसी शब्द का अपभ्रंश रूप है। इसे 'उपनयन' भी कहते हैं। 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है वह संस्कार जिसके द्वारा छात्र गुरु के समीप लाया जाता है।

उपनीयते गुरुसमीपं प्रापयते अनेनेति उपनयनम्।

प्राचीन भारत में यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् बालक या छात्र गुरु के पास गुरुकुल में भेज दिया जाता था। इसलिए इस संस्कार को 'उपनयन' कहते थे। यज्ञोपवीत धारण करने के समय से ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों अर्थात् नियमों का पालन करना आवश्यक होता है, इसलिए इसे 'व्रत बन्ध' भी कहते हैं जिसका अर्थ है व्रतो अर्थात् नियमों के द्वारा बाँधा गया। द्विजातियों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य—के लिए यज्ञोपवीत धारण करना नितान्त अनिवार्य है।

प्राचीन काल में जो जनेऊ पहिना जाता था वह अपने हाथ से कते हुए सूत का ही बना हुआ होता था। अनेक गीतों में सूत कात कर जनेऊ बनाने का उल्लेख पाया जाता है। ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत आठ वर्ष

---

[१] जन्मना जायते शूद्र', संस्कारात् द्विज उच्यते, मनुस्मृति।

की अवस्था होना चाहिए। क्षत्रिय बालक का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य का बारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत का विधान शास्त्र सम्मत है।[1] इस संस्कार के समय के सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण का यह मत है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म ऋतु में और वैश्य का शरद् ऋतु में करना चाहिए।[2] इसीलिए आजकल ब्राह्मणों के यहाँ जो यज्ञोपवीत होता है वह निश्चित रूप से फागुन या चैत्र के महीनों में ही होता है।

वर्ण्य विषय

जनेऊ के जो गीत पाये है उनमें उन विधि-विधानों का वर्णन पाया जाता है, जो इस संस्कार में किये जाते हैं। कहीं पर ब्रह्मचारी किसी स्त्री को माता कह कर सम्बोधित करता हुआ भिक्षा देने की प्रार्थना करता है तो कहीं वह विद्या पढ़ने के लिए काशी या काश्मीर जाने के लिए प्रस्तुत है। यज्ञोपवीत संस्कार में भिक्षा माँगना प्रधान विधि है। ब्रह्मचारी मूँज की करधनी और पलाश-दण्ड धारण करता है। वह खड़ाऊँ पहिनता है। अनेक गीतों में ब्रह्मचारी का पिता पलाश-दण्ड को खोजने के लिए व्याकुल दिखायी देता है।[3]

बुन्देलखण्डी और मैथिली के जनेऊ के गीत

जनेऊ के गीतों में माता और पिता की प्रसन्नता, बालक की फूआ का नेग माँगने के लिए आग्रह और विविध विधि-विधानों तथा नियमों का उल्लेख पाया जाता है। जनेऊ के सभी गीतों में चाहे वे बुन्देलखण्डी हों या मैथिली, चाहे राजस्थानी हो या गुजराती—एक ही भावधारा प्रवाहित है। हमीरपुर जिले में प्रचलित जनेऊ के गीतों में वही उछाह दिखायी पड़ता है जो भोजपुरी गीतों में।[4] मैथिली लोक गीतों में

---

[1] अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्, गर्भाष्टमे वा।
एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्।

[2] वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत। ग्रीष्मे राजन्यम्।
शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके।

श० प० ब्रा०

[3] उपाध्याय : भो० ग्रा० गी०, भाग १ पृ० १०८

[4] त्रिपाठी ह० ग्रा० मा०, पृ० ६२

जनेऊ के अवसर पर भी बाँस का मण्डप तैयार करने का उल्लेख पाया जाता है—जो सम्भवतः अन्यत्र प्रचलित नहीं है।[1] 'लावर परीछने' की प्रथा भोजपुरी तथा मैथिली गीतों में समान रूप से वर्णित है। इसके अतिरिक्त पलाश-दण्ड, मृगछाला और मूँज के दण्ड का वर्णन भी दोनों में अभिन्न रूप से हुआ है।

(४) विवाह के गीत

विवाह हमारा सबसे प्रसिद्ध और प्रधान संस्कार है। संसार की सभ्य, अर्धसभ्य और असभ्य सभी जातियों में यह संस्कार बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। मनुष्य के जीवन में विवाह का जितना महत्व है उतना सम्भवतः अन्य संस्कार का नहीं। यही कारण है कि इस संस्कार का विधान संसार के प्रत्येक भाग में पाया जाता है।

वेदों में लिखा है कि जो मनुष्य अविवाहित है उसका जीवन अपूर्ण है। वह किसी यज्ञ-यागादि का विधान नहीं कर सकता। अतः भारतीय समाज में विवाह हमारे धार्मिक जीवन का आवश्यक अंग है। भगवान् मनु ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है—(१) ब्राह्म (२) दैव (३) आर्ष (४) प्राजापत्य (५) आसुर (६) गान्धर्व (७) राक्षस, और (८) पैशाच। हिन्दू समाज में आजकल जो विवाह प्रचलित है उसे ब्राह्म और दैव का मिश्रण कहा जा सकता है। यो तो आजकल गान्धर्व विवाहों की कुछ कमी नहीं है, परन्तु लोकगीतों में इनका उल्लेख नहीं मिलता।

गीतों के भेद

इस देश के प्रत्येक राज्य में विवाह की प्रथाएँ भिन्न-भिन्न हैं। एक ही राज्य की भिन्न-भिन्न जातियों यह प्रथा विभिन्न रूप से पायी जाती है। स्थान तथा समय के अभाव से इन प्रथाओं का वर्णन करना सम्भव नहीं है।[2]

विवाह के गीत वर और कन्या दोनों के घर में गाये जाते हैं। जिस दिन वर का 'तिलक' चढ़ता है, उसी दिन से इन गीतों का गाना प्रारम्भ

---

[1] राकेश मैं० लो० गी० पृ० ६७

[2] भोजपुरी वैवाहिक प्रथाओं के विशेष विवरण के लिए देखिये—उपाध्याय—भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय काशी)।

हो जाता है। वर तथा कन्या दोनों के घरों में गाये जाने से इनके भेद स्वतः हो जाते हैं। जहाँ वर पक्ष के गीतों में उछाह और उत्साह की प्रचुर मात्रा दिखायी पड़ती है वहाँ कन्या पक्ष के गीतों में विषाद की गहरी रेखा पायी जाती है। विवाह के अवसर पर अनेक प्रकार के विधि-विधान किये जाते हैं, जिनमे गीतों का गाना एक आवश्यक अंग माना जाता है। इन विधि-विधानों के अनुसार इन गीतों का विभाजन निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है :—

(क) कन्या पक्ष	(ख) वर पक्ष
१. तिलक के गीत	१. तिलक के गीत
२. सम्मा के गीत	२. सगुन के गीत
३. मांड़ो के गीत	३. मतमानि के गीत
४. माटी कोड़ाई के गीत	४. माटी कोड़ाई के गीत
५. कलसा धराई के गीत	५. लावा भुँजाई के गीत
६. हरदी के गीत	६. इमली घोटाई के गीत
७ लावा भुँजाई के गीत	७. हरदी के गीत
८ मातृ-पूजा के गीत	८ मातृ पूजा के गीत
९ द्वार-पूजा के गीत	९. वस्त्र धारण के गीत
१० गुरहत्थी के गीत	१०. मउरि के गीत
११. विवाह के गीत	११ परिछावन के गीत
१२. भाँवर के गीत	१२. डोमकछ के गीत
१३. चूमने के गीत	१३. परिछावन के गीत
१४. द्वार रोकने के गीत	१४ गोड़ भराई के गीत
१५ कोहबर के गीत	१५. कोहबर के गीत
१६. परिहास के गीत	१६ ककन छुड़ाई के गीत
१७ मान के गीत	
१८ वर को उवटन लगाने के गीत	
१९. माँड़ो खोलाई के गीत	
२०. बारात की बिदाई के गीत	
२१. ककन छुड़ाई के गीत	
२२ चौधारी के गीत	

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विवाह सम्बन्धी विभिन्न विधियों के समय गाये जाने वाले कन्या पक्ष के गीतों के भेद २२ हैं और वर पक्ष के

गीत १६ प्रकार के हैं। कन्या पक्ष के गीतों के भेदों की अधिकता का कारण यह है कि बारात के आने पर समस्त वैवाहिक विधान कन्या के घर पर ही सम्पादित किये जाते हैं। कन्या पक्ष के गीत बड़े ही करुण और मर्मस्पर्शी होते हैं। पुत्री के वर खोजने तथा उसके विवाह में पिता को जितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं, उनका सकेत इनमें उपलब्ध होता है।

"दिनवा हरेलू ए बेटी भुखिया रे पिअसिया
रतिया हरेलू ऑखि निनियाँ नु हो"

इसमें कितनी वेदना भरी हुई है।

ब्रज के विवाह गीत

ब्रज मण्डल में वैवाहिक प्रथाएँ भोजपुरी प्रदेश से बिल्कुल भिन्न हैं, जो स्वाभाविक है। वहाँ प्रचलित निम्नांकित विधि-विधानों के अवसर पर गीत गाये जाते हैं जो बड़े मधुर और सुन्दर होते हैं।[1]

१. सगाई	२. पीली चिठ्ठी
३ लगुन	४. भात न्योतना
५. हरद हात	६. रतजगा
७. तेल	८. घूरा पूजना
९. अछूता	१०. माढवा गाड़ना
११. भात	१०. विवाह
१३ भाँवर	१४. रहस बधाया
१५. बढार	१६. पलकाचार
१७. वन्दनवार	१८. मुँह मड़ई
१९. विदा	२०. बहू नचाना
२१. दई-देवता सिराना	२२. माढवा सिराना
२३. कलनावरि	२४. दई देवता की पूजा

ब्रज में विवाह-सस्कार का यथार्थ आरम्भ 'लगुन' अथवा लग्न-पत्रिका से होता है, परन्तु भोजपुरी प्रदेश में 'तिलक' के समय से ही विवाह सम्बधी कृत्यों का प्रारम्भ हो जाता है।

---

[1] ब्रज की वैवाहिक प्रथाओं के विशेष विवरण के लिए देखिए—
डा० सत्येन्द्र—ब्र० लो० सा० अ० पृ० १९३-२३१ (साहित्य रत्न भण्डार आगरा)

वर्ण्य विषय

विवाह के गीतों का वर्ण्य विषय बड़ा विस्तृत है। इनमें कहीं तो पुत्री की माता अपनी सयानी लड़की के लिए योग्य वर खोजने का आग्रह करती है तो कहीं पुत्री अपने पिता से सुन्दर वर खोजने की प्रार्थना करती हुई दिखायी पड़ती है। कहीं पिता योग्य वर न मिलने की चिन्ता से व्याकुल है तो कहीं माता पुत्री-जन्म के कारण अपने भाग्य को कोस रही है। कहीं बारात के आने और बाजा बजने का उल्लेख है तो कहीं बारातियों को भोजन कराने का। इन गीतों में एक ऐसी प्रथा का उल्लेख है जो साधारणतया हिन्दू समाज मे नहीं पायी जाती। भोजपुरी में कुछ ऐसे गीत पाये जाते हैं जिनमें वर कन्या के आँगन में आकर बैठा है और वहाँ आने का कारण पूछने पर कहता है कि इस घर में एक कुमारी कन्या है, मैं उससे विवाह करने आया हूँ।[१] गीत की कुछ कड़ियाँ इस प्रकार हैं :—

"पुरुब से अइले रे जोगी, पछिम चइले जाले
कवन बाबा चौपरिया ए जोगी, बइसे आसन मारी।
हम त बिआहन अइली ए बाबा,
तोहार बिटिया कुँवारी।"

पिता अपनी पुत्री के लिए वर खोजने के लिए जगन्नाथपुरी तक की यात्रा करता है, परन्तु उसे उचित वर नहीं मिलता। कहने की आवश्यकता नहीं कि वरों की समस्या आज भी उतनी ही कठिन है जितना पहिले थी।

गीतो मे बाल-विवाह का वर्णन पाया जाता है। विवाह करने के लिए जानेवाले बालक की माता उसकी छोटी अवस्था को देख कर कहती है कि मेरा लाल व्याहने जा रहा है।[२] दूध के बिना उसके होठ कहीं सूख न जाँय। कहीं-कहीं वृद्ध विवाह की भी प्रथा प्रचलित है, परन्तु गीतों मे इनका उल्लेख विशेष नहीं पाया जाता। वर की वेशभूषा से सम्बधित अनेक गीतों मे उसके सेहरे का वर्णन प्रधान स्थान रखता है। इसे 'मउरि' भी कहा जाता है। विवाह के समय पर वर घोड़ी पर चढ कर चलता है जिसे 'घुड़चढ़ी' कहते हैं।[३]

---

[१] उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १, पृ० १२०

[२] वही, पृ० १५३

[३] सत्येन्द्र ब्र० लो० सा० अ०, पृ० २१७

विवाह के गीतों—विशेषकर 'कोहबर' में गाये जाने वाले गीतों में सभोग शृङ्गार का वर्णन अधिक होता है, जिनमें कहीं कहीं अश्लीलता का पुट भी आ गया है। फिर भी इनमें मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं किया गया है। बारात में समधी—वर का पिता—को भात खिलाते समय गाली गाने की प्रथा ब्रज तथा भोजपुरी प्रदेश में समान रूप से पायी जाती है।[१] यदि विवाह में गाली न गायी गई तो समधी महोदय के सत्कार में कमी समझी जाती है।

मैथिली तथा राजस्थानी में विवाह गीत

मैथिली में विवाह के गीतों को 'लगन गीत' कहते हैं। इस समय 'सम्मरि' नामक गीत भी गाये जाते हैं जो बड़े मधुर और मनोरम होते हैं। सम्मरि शब्द स्वयंवर का अपभ्रंश है। इन 'सम्मरि' के गीतों में सीता-स्वयंवर, रुक्मिणी-हरण और उषा-स्वयंवर आदि के गीत प्रसिद्ध हैं। परन्तु ये अन्य अवसरों पर भी गाये जाते हैं। अतः इन्हें शुद्ध वैवाहिक गीतों में अन्तर्गत नहीं ले सकते। मैथिली लगन-गीतों का विषय भी वही पुत्री-जन्म की निन्दा, सुन्दर वर खोजने के लिए पुत्री की पिता से प्रार्थना और पिता की परेशानियाँ हैं।[२]

राजस्थानी विवाह के गीतों को 'बनडे' कहते हैं जिसका अर्थ 'दूल्हा' होता है।[३] स्थानीय प्रथाओं के कारण इन-गीतों के भी अनेक भेद पाये जाते हैं, जैसे पीठी, हलदी, मँहदी, सेवरा, घोड़ी, कामण तथा ओलूँ आदि। वर के चुनाव के सम्बध में राजस्थानी लड़की अपनी भोजपुरी तथा मैथिली बहिनों से अधिक चतुर दीख पड़ती है। उसका चुनाव सस्कृत है।[४] एक अवधी गीत में दुष्टा सास के व्यवहारों से दुःखी लड़की को समझाता हुआ उसका पिता कहता है कि चार दिन का राजा का राज है। तुम्हारी सास भी थोड़ी ही दिन जीवित रहेगी। फिर घर में तुम्हारा ही राज होगा।[५]

(५) गवना के गीत

गवना शब्द सस्कृत के 'गमन' का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ 'जाना' है। कहीं-कहीं विवाह के दूसरे दिन ही लड़की की बिदाई कर दी

---

[१] वही, पृ० २१६ [२] राकेश मै० लो० गी० पृ० १३२

[३] पारीक राजस्थान के लोकगीत भाग १ (पूर्वार्ध) पृ० १६०

[४] वही पृ० १६०-६१ [५] त्रिपाठी . ह० ग्रा० सा० पृ० ६७

जाती है। परन्तु कुछ लोगों को विवाह के साथ पुत्री की विदाई नहीं सहती। अतः वे लोग विवाह के पश्चात् किसी दूसरी निश्चित तिथि को पुत्री को विदा करते हैं जिसे 'गवना' कहते हैं। गवना विवाह के प्रथम, तृतीय, पञ्चम या सप्तम—अर्थात् विषम वर्षों—में ही किया जाता है सम वर्षों में नहीं। पहिले जब छोटे-छोटे लड़के लड़कियों का विवाह होता था उस समय तीन, पाँच या सात वर्षों के पश्चात् ही गवना करना श्रेयस्कर था। परन्तु आजकल युवक और युवतियों का विवाह होने के कारण गवना एक वर्ष के भीतर ही हो जाता है।

गवना विवाह के समान ही बड़ी धूम धाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर वर का पिता अपने वधू को लिया लाने के लिए बारातियों के साथ नहीं जाता। पुत्र-वधू का रुदन इस समय सुनना उसके लिए निषिद्ध माना जाता है।

वर्ण्य-विषय

पुत्री की विदाई के अवसर पर गाये जाने के कारण इन गीतों में करुण रस की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती है। विवाह के गीतों में जहाँ आनन्द, उल्लास एव परिहास का वर्णन है, वहाँ गवना के गीतों में विषाद का दृश्य दिखायी पड़ता है। कहीं भाई अपनी ससुराल जानेवाली वहिन की पालकी के पीछे पीछे रोता हुआ जाता दिखायी पड़ता है तो कहीं वहिन अपनी माता, पिता और भाई के वियोग के दुःख से दुःखी होकर रोती, कलपती और बिलखती चली जाती है। कहीं सास अपने जमाता से प्राण प्यारी अपनी पुत्री को आदर के साथ रखने और उससे प्रेम करने का उपदेश देती है तो कहीं पुत्री के भावी वियोग-जन्य दुःख से दुःखी होकर रुदन करती हुई पायी जाती है। कहने का आशय यह है कि इस अवसर पर जिन विषयों का वर्णन किया गया है वे सभी करुण रस से ओत-प्रोत हैं। इन गीतों में करुणा का समुद्र हिलोरें मारता हुआ दिखायी पड़ता है। गवना के गीतों में इतनी हृदय-द्रावकता है कि उन्हें सुन कर पाषाण-हृदय भी द्रवित हो उठेगा।[1]

---

[1] भोजपुरी गवना के गीतों के लिए देखिये—
उपाध्याय भो० ग्रा० गी०, भाग १ पृ० २६९-१७८

मैथिली तथा राजस्थानी गवना के गीत

मिथिला में गवना के गीतों को 'समदाउनि' कहते हैं। इनके विषय में श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' लिखते हैं कि "विवाह संस्कार की समाप्ति के बाद जब दुलहन डाली में बैठ कर ससुराल जाने की तैयारी करती है उस समय मिथिला में एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है जो 'समदाऊनि' के नाम से प्रसिद्ध है। 'समदाऊनि' का सबसे बड़ा गुण है स्वाभाविकता। इसका शृङ्गार प्रेम और करुणा के मोतियों से हुआ है।"[१] इन 'समदाऊनि' के गीतों में पुत्री के प्रति माता और पिता का प्रेम उमड़ पड़ता है और पुत्री के सतत अश्रुपात से नदियों में बाढ़ तक आ जाती है। एक गीत में लोक कवि ने बेटी को जुदाई में बिसूरती हुई माँ और माँ की याद में तड़पती हुई बेटी—दोनों के हृदय को निकाल कर रख दिया है। इस गीत के प्रत्येक शब्द मे करुणा फूट कर बह पड़ी है।[२]

राजस्थानी भाषा में गवना के गीतों को 'ओलूँ' कहते हैं। "इनके भाव इतने करुण होते हैं कि सुनकर हृदय थाम कर आँसू रोकना कठिन हो जाता है। स्त्रियाँ गाती हुई जोर जोर से रोने लगती हैं। पुरुषों की आँखे भी छलछला जाती है।"[३] एक राजस्थानी गीत में पुत्री की उपमा कोयल से दी गई है। लोक कवि कहता है कि "ए कोयल! इस वन को छोड़ कर कहाँ जा रही है। तुम्हारी माता उन्मना हो रही है। छोटी बहिन अकेली रो रही है। तेरा बड़ा भाई उदास फिरता है और तेरी भावज बिलखती है।[४]

ब्रज के भी बिदाई के गीत बड़े मार्मिक होते हैं। इन गीतों में विदा होती हुई लड़की, पिता, भाई तथा माँ की हृदय-द्रावक विविध मनोवृत्तियों का चित्र चित्रित किया गया है।[५]

(६) मृत्यु गीत

भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने षोडश संस्कारों का विधान बतलाया है।

---

[१] राकेश : मै० लो० गी०, पृ० १७०

[२] वही, पृ० १७३-७४

[३] पारीक : रा० लो० गी०, भाग १ पृ० १८८

[४] पारिक रा० लो० गी०, भाग १ पृ० १९०

[५] डा० सत्येन्द्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० २२२

जन्म से मृत्यु तक अनेक संस्कार सम्पादित किये जाते हैं। मृत्यु मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है। यह संस्कार संसार के सभी सभ्य और असभ्य देशों में किसी न किसी रूप में अवश्य किया जाता है। इस देश में प्रत्येक संस्कार के अवसर पर गीत गाने की प्रथा है। मृत्यु संस्कार भी इसका अपवाद नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ अन्य अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों में प्रसन्नता तथा उछाह प्रकट होता है वहाँ इन गीतों में विषाद की गहरी रेखा दिखाई पड़ती है।

भेद

मृत्यु गीत दो प्रकार के पाये जाते हैं। एक में तो मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन होता है और दूसरे में उसकी मृत्यु से उत्पन्न कष्टों का उल्लेख। यदि कोई छोटा बच्चा अकाल में ही काल-कवलित हो गया तो उसकी सुन्दरता, भोलापन तथा सरलता का उल्लेख इन गीतों का वर्ण्य विषय होगा। यदि परिवार के किसी कमासुत (कमाने वाला) व्यक्ति का निधन हो जाता है तब उसके न रहने से परिवार की आर्थिक दुर्दशा का चित्रण मृत्यु गीत में होगा। इनमें कुछ गीतों का निर्माण तत्काल होता जाता है। किसी स्त्री के मनमें अपने पति या पुत्र की मृत्यु के कारण जो दुःख उत्पन्न होता है उनको वह स्वयं गीत के रूप में प्रकट करती जाती है और इस प्रकार इन गीतों की उत्पत्ति होती है। यह प्रक्रिया अत्यन्त स्वाभाविक है।

परम्परा[1]

मृत्यु गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूक्त मिलते हैं जिनमें मृत व्यक्ति के सम्बन्ध में शोक प्रकट किया गया है। प्रेत की आत्मा किस मार्ग से स्वर्ग को जायेगी, उसकी रक्षा के लिए कौन से लोग रक्षक के रूप में जायेंगे इसका बड़ा रोचक वर्णन इन ऋचाओं में पाया जाता है। मृत आत्मा को सम्बोधित करता हुआ वैदिक ऋषि कहता है कि—

"प्रेहि प्रेहि पथिभि पूर्व्येभि
यत्रा न पूर्वे पितर परेयु ।

---

[1] नर्मदेश्वर चतुर्वेदी भारतीय विचार परंपरा में मृत्यु भावना, साहित्यकार, नवम्बर '५६ प्रयाग।

उभा राजाना स्वधया मदन्ता
यमं पश्यासि वरुणं च देवम्।"
ऋग्वेद। १०। १४। ७

नीचे की ऋचा में राक्षसों को मृत आत्मा को अकेले छोड़ देने के लिए कहा गया है। यमराज उसके लिए सुन्दर विश्राम स्थान देते हैं।

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽ
स्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।
अहोभिरद्भिरक्तुभि व्यक्तं
यमो ददात्यवसानमस्मै॥"
ऋ. वे १०। १४। ६

रामायण तथा महाभारत में अनेक स्थलों पर विशेष व्यक्तियों की मृत्यु पर विलाप के अनेक प्रसङ्ग आये हैं, जिन्हें मृत्यु गीत की कोटि में रखा जा सकता है।

महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव में शिव के द्वारा मदन-दहन के पश्चात् रति से जो विलाप करवाया है वह वास्तव में बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। रति मदन के विभिन्न गुणों का वर्णन करती हुई अत्यधिक दु:ख के कारण संज्ञाहीन हो जाती है। होश में आने पर रति कहती है कि

"मदनेन विना कृता रति
क्षणमात्रं किल जीवतीति मे।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं,
रमण! त्वामनुयामि यद्यपि॥

वह फिर कहती है कि हे कामदेव! अब तुम्हारे बिना स्त्रियों के सभी संभोग एवं शृंगार व्यर्थ हैं।

"नयनान्यरुणानि घूर्णयन्
वचनानि स्खलयन् पदे पदे।
असति त्वयि वारुणीमदः
प्रमदानामधुना विडम्बना॥"

इसी प्रकार महाकवि ने रघुवंश में इन्दुमती के अकाल मृत्यु पर अज के द्वारा शोक की जो अभिव्यञ्जना करायी है, वह संसार के साहित्य में अपना सानी नहीं रखती। राजा अज इन्दुमती की प्रशंसा करते हुए

कहते हैं तुम मेरी गृहिणी थी, मन्त्रिणी थी और ललित कलाओं में मेरी शिष्या थी। मृत्यु ने तुम्हारा हरण कर मेरा सर्वस्व नष्ट कर दिया [1]—

"गृहिणी, सचिव, सखी मिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना,
हरता त्वां वद किन्न मे हृतम् ॥"

फिर अज आगे कहते हैं मेरे सुख के दिन अब बीत गये क्योंकि मेरे सभी सुख-सभोग की वस्तुएँ तुम्हारे ही ऊपर आश्रित थीं —

विभवेऽपि सति त्वया विना,
सुखमेतावदजस्य गण्यताम्।
अहृतस्य विलोभनान्तरै
मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रया ।

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने मृत्यु-गीत का बड़ा सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है।

महाकवि बाण ने 'हर्षचरित' में रुदितक नामक गीत का उल्लेख किया हैं जो मृत्यु के अवसर पर गाये जाते थे। हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री के पति की मृत्यु के उपरान्त इस प्रकार के गीतों के गाने का संकेत मात्र उपलब्ध होता है। भारतीयों का दृष्टि कोण मृत्यु में भी मगल की भावना की ओर ही रहता है। अतः इस प्रकार के गीत सस्कृत में बहुत ही कम है।

उर्दू साहित्य में किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् शोक-गीत लिखने की प्रथा प्रचलित है जिसे 'मर्सिया' कहते हैं। उर्दू में 'मर्सिया' काव्य का एक विशिष्ट प्रकार माना जाता है जिसे लिखने में कुछ कवियों ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है।

ब्रज में मृत्यु गीत

ब्रज लोक साहित्य में मृत्युगीत बहुत कम पाये जाते हैं। परन्तु मथुरा के चतुर्वेदियों में मृत्यु के अवसर पर जो स्त्रियों का विलाप होता है वह सगीत की गति के साथ होता है। परन्तु इसका अभिप्राय किसी वाद्य-यत्र के साथ होने का नहीं है। ब्रज के इन मृत्यु गीतों में एक लय मिलती है और इनका अर्थ भी होता है। इनमें प्राय. मृत व्यक्ति के विविध प्रिय

---

[1] रघुवंश, ८।६७

पदार्थों का नाम ले लेकर शोक प्रकट किया जाता है।[1] ब्रज का यह गीत लीजिए जिसमें मृत्यु के समय गोदान का भी उल्लेख है।

"काए के कारन जौ वए, और काहे के हरे हरे बाँस।
हरि रे किसन कैसे तिरयश्रौ। (टेक)
लाला धरम के कारन जौ वए,
मरन के काजे हरे हरे बाँस। (टेक)
वेटी न व्याही आपनी,
मढ़हे न लीयौ कन्यादान। (टेक)
साजन न मुलमे द्वार,
हरि रे क्सिन कैसे तिरयश्रौ।
काए के कारन गऊ दई,
काए के कीए गऊ दान।
पार के काजे गऊ दई,
और तरन कूँ दए गऊ दान॥
हरि रे क्सिन कैसे तिरयश्रौ।

भोजपुरी के मृत्यु गीत

भोजपुरी प्रदेश में जब कोई पुरुष मर जाता है तब घर की स्त्रियाँ विशेषकर उसकी स्त्री—अपने पति के विभिन्न गुणों का उल्लेख करती हुई लय के साथ विलाप करती हैं। इन गीतों में मृत व्यक्ति के न रहने से उत्पन्न होने वाले भावी दुखों का भी वर्णन पाया जाता है। यदि मृत व्यक्ति कमासुत (कमाने वाला) हो तो विषाद की मात्रा और अधिक बढ़ जाती है। स्त्रियाँ रोती हुई गाती भी जाती हैं। इसमें भावी दुख की विवृत्ति रहती है।—जैसे

'के मोरा नइया के पार लगइहे ए रामा।
'अब कइसे दिनवा काटवि ए रामा।
'आताना आरामवा हमरा के दिहले,
अब कवन दुरदसवा होई ए रामा।

यदि विदेश में जाकर पति मर गया हो तो उसे वहाँ न जाने देने की चर्चा भी की जाती है।

---

[1] डा० सत्येन्द्र . ब्र० लो० सा० अ०, पृ० २३२

चिल्लाकर रोने लगी कि वह मीलों तक सुनायी पड़ता था। मृत पति को दफनाने के बाद वे फिर अस्पताल पहुँची और चिल्लाने लगीं। बड़ी कठिनाई से वे वहाँ से हटायी जा सकीं।[१]

इटली

दक्षिण इटली के निवासी जो ग्रीक भाषा बोलते है शोक-गीतों के लिए एक विशेष छन्द का प्रयोग करते हैं। वहाँ मृत्यु के अवसर पर सार्वजनिक रोने वाली स्त्री (Public wailer) होती है जो किराया देकर इस कार्य के लिए बुलायी जाती है।

उसकी मृ यु के उपरान्त उसके पद को उसकी पुत्री ग्रहण करती है। यह सार्वजनिक रोदन कर्त्री शोक-गीतों के निर्माण में तथा उनको गाने में बड़ी चतुर होती है। वह इस बात को जानती है कि यह दुःख मेरा नहीं बल्कि पराया है। परन्तु श्रोताओं के सामने वह दुःख की अधिष्ठात्री देवी मालूम होती है।[२] परन्तु कुछ ऐसे भी शोक-गीत मिलते हैं जिनमें वास्तव में प्रेम तथा करुणा का समुद्र उमड़ा पड़ता है। अपनी प्यारी पुत्री की मृत्यु पर किसी किसान माता का यह कारुणिक प्रलाप सुनिये।[३]

—"Now they have buried thee, my little one,
Who will make thy little bed ?
Black Death will make it for me
For a very long night.
Who will arrange thy pillows,
So thou mayst sleep softly ?
Black Death will arrange them for me
with hard stones.

---

१ दि स्टडी ऑव् फोक सांग्स, पृ० २८१

2 The office of the public wailer is transmitted from mother to daughter — — — — — — Unrivalled in the matter of her impregnation as in the manner of their delivery, the hereditory dirge singer no doubt, like a good actress, keenly realises at the moment the sorrow not her own, of which she undertakes the interpretation in return for a trifling gratuty, and to her hearers she appears as the genius or highpriestesrs of woe. "दि स्टडी ऑव् फोक साग्स" पृ० २८८

३ वही, पृ० २८६

Who will awake thee, my daughter,
When day is up ?
Down here it is always sleep,
Always dark night.
This my daughter was fair
When I went (with her) to high mass,
The Columns shone
The way grow bright.

दक्षिण पैसिफिक द्वीप के निवासी मृत व्यक्ति के विषय में कहते हैं कि वह 'समुद्र के ऊपर से जा रहा है' एक मृत्यु गीत में दो मृत बालकों की प्रेतात्मा की यात्रा का वर्णन किया गया है जिसे उनके दुःखी पिता ने सन् १७९६ ई० में बनाया था। पिता कहता है कि—

"Thy god pet child is a bad one;
For thy body is attenuated,
This wasting sickness must end thy days.
Thy form, once so plump, now has changed !
Ah ! that god, that bad god !
Inexpressibly bad, my child !"

सी० ई० गोभर ने नीलगिरी की पहाड़ियों में निवास करने वाली बड़ागा जाति के मृत्यु गीतों का उल्लेख किया है जिसमें प्रेतात्मा के सभी दुर्गुणों का वर्णन उपलब्ध होता है। इस अवसर पर एक विशेष प्रथा प्रचलित है। रोने वालों के बीच में एक हृष्ट पुष्ट भैंस का बच्चा लाया जाता है। प्रत्येक पक्ति को गाकर वे उस बच्चे को पकड़ते हैं और कहते हैं कि 'यह पाप है।'

प्रधान दुखिया व्यक्ति भैंस के बच्चे को अपने हाथ से छूता है। इस प्रकार प्रेतात्मा का सारा दोष संक्रमित हो जाता है। नीचे के गीत में प्रेत के भिन्न-भिन्न दोषों को इस प्रकार गिनाया गया है।[1]

He killed the crawling snake
(Chorus) It is a sin
The creeping ligard slew
It is a sin

---

१ दि स्टडी अव् फोक सॉंग्स पृ० २१९

Also the hawless frog,
It is a sin
Of brothers he told lales,
It is a sin
The landmark stone he moved
It is a sin
The strangers straying on the hills
He offered aid but guided wrong
It is a sin
His sisters tender love he spurned,
And showed his teeth to her in rage,
It is a sin

इस प्रकार उसके दोषो का वर्णन कर वह अन्त मे कहता है कि—

Oh ! let us never doubt,
That all his sins are gone
That Bassava forgives

ससार के सभी सभ्य तथा असभ्य देशो मे मृत्यु गीत की परम्परा उपलब्ध होती है, परन्तु धीरे-धीरे इनका ह्रास होता जा रहा है।

(ख) ऋतु-सम्बन्धी गीत

ऋतु-सम्बन्धी गीतों में जन-मानस पूर्ण तरगित दिखायी पड़ता है। विभिन्न ऋतुओं में जन-मन के अनुरजन के लिए गीतो के गाने की प्रथा बहुत दिनों से चली आ रही है। भारत के प्रत्येक राज्य में विभिन्न ऋतुओं में गीत गायन की परम्परा प्रचलित है। यहाँ क्रम से इन गीतो का सक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

(१) कजली

सावन के मन-भावन महीने में उत्तर प्रदेश में कजली गाने की प्रथा है। इस मास में प्रकृति सर्वत्र हरी दिखायी पड़ती है। भक्त कवि सूरदास जी ने अपनी अन्द आँखों द्वारा इस छटा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

'कजली' पड़ा। भारतेन्दु के मतानुसार इस नामकरण के दो अन्य कारण भी है।[1]

(१) दादू राय के राज्य में 'कजली' नामक वन था। अतः उसके नाम पर इसका नाम कजली पड़ गया।

(२) सावन-भादों की शुक्लपक्ष की तीज—जिस दिन कजली के गीत विशेष रूप से गाये जाते हैं—का नाम ही कजली तीज है। इस कारण भी इसकी व्युत्पत्ति मानी जाती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा उल्लिखित दादू राय की कहानी में सत्य का अंश कितना है यह कहना कठिन है। परन्तु कजली तीज के दिन गाये जाने के कारण इसका नाम 'कजली' पड़ गया हो इसकी सभावना अधिक है।

सावन के महीने में, प्रत्येक गाँव में—बाग में या किसी तालाब के किनारे—झूले लगाये जाते हैं जिनमें गाँव की स्त्रियाँ और पुरुष झूला झूलते हैं। इन झूलों को लगाने के लिए बड़ी तैयारी की जाती है। सुन्दर काठ के चौकार खण्ड को रंगीन रस्सी से बाँधकर किसी पेड़ की शाखा से उसे लटका देते है। इसी सुसज्जित झूले पर बैठकर नर-नारी झूलन का आनन्द लेते हैं। एक या दो स्त्रियाँ झूल पर बैठी रहती हैं और कोई दो पुरुष उस पर खड़ होकर उसे झटका देकर जोर से हिलाते हैं जिसे 'पेंग बढ़ना' कहते हैं। इस प्रकार सावन में झूले का दृश्य बड़ा ही सुहावना होता है। यों तो इस प्रदेश में सभी जगह कजली गायी जाती है, परन्तु मिर्जापुर की कजली बड़ी प्रसिद्ध है जैसा कि निम्नांकित उक्ति से पता चलता है।

लीला राम नगर की भारी,
कजली मिर्जापुर सरदार।

काशी तथा मिर्जापुर में कजली गाने के दगल भी हुआ करते हैं जहाँ गवैया की दो पार्टियाँ रात रात भर कजली गाने की कला का प्रदर्शन करती हैं। इनमें दंगल जीतने वालों को पुरस्कार भी दिया जाता है। दोनों दलों के गवैये, बड़ी अदा से कजली गा कर सुनाते हैं जो प्राय. स्वरचित और सामयिक होती हैं।

मिथिला में प्रचलित कजली से मिलता-जुलता हुआ गीत 'मलार'

---

१ डा० ग्रियर्सन . ज० ए० सो०, ब० भाग ५३ खण्ड १ (१८८४) पृ० २३७

है। "मलार को पावस ऋतु में स्त्री-पुरुष दोनों गाते हैं। लेकिन दोनों के गाने के ढंग अलाहिदा—अलाहिदा हैं। औरतें इन्हें गाने के वक्त किसी साज-बाज की मदद नहीं लेती। हिंडोले पर बैठ कर वे सम्मिलित स्वरों में गाती हैं। पुरुष साज-बाज की मदद से गाते हैं।"[१]

राजस्थान में तीज के अवसर पर हिंडोले के जो गीत गाये जाते हैं वे इसी कोटि में आते हैं।[२] एक राजस्थानी गीत में कोई पुत्री अपनी माता से कहती है कि "ए माँ! चम्पा के बाग में झूला डाल दो, नवेली तीज आ गई है। मेरे सहेलियों के घर में हिंडोले हैं परन्तु मेरे नहीं है। मैं आज झूला झूलने गई तो मुझको किसी ने नहीं झुलाया।[३]"

वर्ण्य विषय

कजली का वर्ण्य विषय प्रेम है। ये गीत शृङ्गाररस से ओत प्रोत हैं। यद्यपि इनमें शृङ्गाररस के उभय पक्ष की झाँकी हमें देखने को मिलती है परन्तु संभोग शृङ्गार की ही प्रधानता है जो स्वाभाविक ही है। एक भोजपुरी गीत में राधा और कृष्ण के झूला झूलने का वर्णन पाया जाता है।[४] कहीं-कहीं इन गीतोंमें पति-पत्नी की प्रेम-लीला का बड़ा ही सुन्दर उल्लेख हुआ है। कहीं झूला झूलने के लिए उत्सुक भावज अपनी ननद से पूछती है कि "ए ननद! बादल उमड़े चले आ रहे हैं, मैं सावन में कजली खेलने कैसे जाऊँ! इस पर उसकी ननद कजली खेलने के लिए जाने को उसे मना करती हुई कहती है कि आजकल मस्ती का दिन है, कोई मनचला तुम्हें रास्ते में पकड़ लेगा अतः मत जावो।[५]" कोई मैथिली प्रोषितपतिका स्त्री कहती है कि "हे सखी! चारो ओर सघन काली घटाएँ उमड़ आईं। बूँदे छहर-छहर कर पलग पर गिर रही है। मेरी सुन्दर कुसुम रग की चूनरी भींग रही है। प्रियतम के बिना आज मेरा ससार सूना है, कीचड़ से राह-बाट पिच्छिल हो गये हैं और मेरे प्रियतम प्रवासी हैं।[६]" इस प्रकार इन गीतों में सयोग और वियोग दोनों पक्षों की मनोरम विवृत्ति हुई है।

---

१ राकेश मै० लो० गी० पृ० २६२
२ पारीक : रा० लो० गी० भाग १ पूर्वार्द्ध [पृ० ८४-८५]
३ वही पृ० ८६
४ उपाध्याय, भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० १७६
५ वही, पृ० १७४
६ राकेश मै० लो० गी० पृ० २८४

(२) होली

फाल्गुन मास में होली के सार्वजनिक उत्सव के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'होली' कहते हैं। फाल्गुन में गाये जाने के कारण, भोजपुरी प्रदेश में इन्हें 'फगुआ' भी कहते हैं। ये फाग के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। माघ मास की शुक्ल पञ्चमी वसंत पञ्चमी के नाम से अभिहित की जाती है। इसी दिन से बसंत का आगमन माना जाता है। आज से ही गाँवों में फगुआ का गाना प्रारम्भ हो जाता है जिसे भोजपुरी में 'ताल ठोकना' कहते हैं। गाँव के लोगों की मण्डली आज से ही किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के द्वार पर एकत्र होकर फगुआ गाना प्रारम्भ करती है। परन्तु होली गाने का चरम उत्कर्ष फागुन की पूर्णिमा को दिखायी पड़ता है। जिस दिन होली मनायी जाती है उसकी पूर्व रात्रि को होलिका जलायी जाती है जिसे भोजपुरी में 'सवत् जलाना' कहते हैं। संवत् जलाने के लिए गाँव का कोई चौराहों अथवा मुख्य स्थान चुन लिया जाता है। वहाँ पर गाँव के लड़के अनेक दिनों से लकड़ी, उपला, पत्ती, सूखी घास ला ला कर एकत्र करते रहते हैं। शुभ मुहूर्त में इस में आग लगा दी जाती है जो थोड़ी ही देर में जल कर राख की राशि बन जाती है। होली जलाने की प्रथा विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न रूप से प्रचलित है।

होली के अवसर पर गालियों के गाने की बड़ी प्रथा है जिन्हें 'कबीर' कहते हैं। जैसे :—

अररर अररर भइया, सुनलउ मोर कबीर।

इन गालियों को कबीर क्यों कहते हैं यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि कबीर भी अटपटी निर्गुण बानी तत्कालीन समाज के लिए लोक-प्रिय नहीं हो सकी। अतः कबीर के प्रति समाज की अप्रसन्नता या क्षोभ दिखलाने के लिए ही लोगों ने इन गालियों को 'कबीर' का नाम दे दिया हो।[1]

मैथिली में इन गीतों को 'फाग' कहते हैं। "होली के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों की गति, उनकी भाषा का बन्ध और स्वरों का सन्धान अत्यन्त मीठा होता है। गवैये एक-एक टेक की दर्जनों बार आवृत्ति करते

---

१ होली के विषय वर्णन के लिए देखिए—
उपाध्याय ' भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन

हैं। प्रेम की रंगीन पुलकारियाँ और वैभववती वन-वीथियों के नैसर्गिक चित्रण होली की संगीत महफिलों में ताने बाने का काम देते हैं।"[1]

वर्ण्य विषय

होली हमारा आनन्द और मस्ती का त्योहार है। अतः ऐसे मंगलमय अवसर पर गेय गीतों में उछाह और हर्ष का वर्णन स्वाभाविक है। इन गीतों में कहीं राधा और कृष्ण होली खेलते हुए दिखलायी पड़ते हैं तो कहीं शिवजी भी होली का आनन्द ले रहे हैं। कहीं राम और सीता सोने की पिचकारी में रंग भर कर एक दूसरे पर डाल रहे हैं[2], तो कहीं पवन-सुत हनुमान लंका में 'होरी मचाते हुए पाये जाये जाते हैं। फगुआ के एक गीत में राम के बालरूप का मनोरम वर्णन हुआ है।[3] राजस्थानी लोक-गीतों में भी होली के गीतों में आनन्द और मस्ती की वही धारा प्रवाहित होती है जो हमें भोजपुरी गीतों में उपलब्ध होती है। उत्तर प्रदेश में होली ढोलक और झाल को बजाकर गायी जाती है। परन्तु राजस्थान में इस गीत के साथ चंग—एक प्रकार का बाजा—अथवा डफ बजाने की प्रथा है जो बहुत पुरानी है। राजस्थान में होली के अवसर पर लड़कियाँ और स्त्रियाँ गहनों और वस्त्रों से सज धज कर, मिल-जुल कर गाती-बजाती, खेलती-कूदती और नाचती हैं। इस समय एक विशेष प्रकार का नृत्य होता है जिसे 'लूर' कहते हैं जिसमें स्त्रियाँ हाथ में हाथ पकड़कर गोलाकार रूप में नाचती हैं।[4] इसको 'लूवर' या 'धूमर' भी कहते हैं।

इन गीतों में गम्भीर और सूक्ष्म भावों अथवा कथानकों के स्थान पर खुला और सादा सार्वजनिक आल्हाद का व्यापक भाव रहता है। कल्पना के उड़ान की यहाँ आवश्यकता नहीं होती। होली आने पर लड़की अपनी माँ से कहती है कि मुझे पिताजी से कहकर चुनरी मँगवा दे। मुझे चाचाजी से कहकर चूड़ा मँगवा दे। मैं फाग खेलने जाऊँगी।[5]

मैथिली फाग के गीतो में संभोग शृङ्गार का चित्रण सुन्दर रीति से

---

१ राकेश मै० लो० गी० २७८

२ उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २१६

३ वही, पृ० २२४

४ पारीक रा० लो० गी० भाग १ पृ० ९९

५ वही, पृ० १०१

किया गया है।[1] कोई मैथिली रमणी अपनी सखी से कहती है कि वंशी-वाला मोहन पनघट पर खड़ा है। अरी सखी! जल भरने यमुना किनारे मैं कैसे जाऊँ![2] कृष्णजी का गोपियों के साथ होली खेलने और रंग भर कर अपनी पिचकारी का उन्हें निशाना बनाने का उल्लेख अनेक गीतों में हुआ है।[3]

इस प्रकार होली के ये गीत आनन्द और मस्ती के गीत हैं। होली के त्योहार में जो सार्वजनिक उत्साह और उत्सव दिखायी पड़ता है उनकी व्यजना इन गीतों में हुई है। ये आनन्द के छूटते हुए फौवारे हैं जो जनता को रस-सिक्त कर देते हैं।

(३) चैता

चैत्र के महीने में गाये जाने के कारण ही इस गीत का नाम 'चैता' पड़ गया है। भोजपुरी में इसे 'घाँटो' भी कहते हैं। लोकगीतों के जितने भी प्रकार हैं उनमें मधुरता, सरलता एव कोमलता में 'चैता' अपना सानी नहीं रखता। चैता दो प्रकार का होता है (१) झलकुटिया (२) साधारण। झलकुटिया चैता उसे कहते हैं जो झाल (एक प्रकार का बाजा जो दोनों हाथों से बजाया जाता है) कूट कर—बजा कर—समूह में गाया जाता है। साधारण चैता वह है जिसे कोई व्यक्ति विशेष गाता है। जब चैता सामूहिक रूप से गाया जाता है तब गाने वाले दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। पहिला दल प्रथम पक्ति कहता है तो दूसरा दल उसके टेक पद को उच्च स्वर से गाता है। इस प्रकार गाने का क्रम चलता रहता है।

लोकगीतों में प्रायः उनके रचयिताओं का नाम नहीं पाया जाता। परन्तु भोजपुरी चैता के गीतों के लेखक बुलाकीदास का नाम उपलब्ध होता है,[4] जैसे—

"दास बुलाकी चइत घाँटो गावे हो रामा,
गाई गाई विरहिन समुझावे हो रामा।"

परन्तु ऐसे विरहों की संख्या अधिक नहीं है।

---

१ राकेश : मै० लो० गी० पृ० २७१
२ वही, पृ० २८१
३ वही, पृ० २८२
४ उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २

वर्ण्य विषय

चैता प्रेम के गीत हैं। इनमें सम्भोग शृङ्गार की कहानी रागों में लिखी गई है। इनमें कहीं आलसी पति को सूर्योदय के बाद तक सोने से जगाने का वर्णन है तो कहीं पति और पत्नी की प्रणय-कलह की झाँकी देखने को मिलती है। कहीं ननद और भावज के पनघट पर पानी भरते समय किसी दुश्चरित्र पुरुष द्वारा छेड़खानी का उल्लेख है तो कहीं सिर पर मटका रख कर दही बेचने वाली ग्वालिनों से कृष्ण के द्वारा गोरस मागने का वर्णन है।[1]

मैथिली में चैता को 'चैतावर' कहते हैं।"इनमें बसत की मस्ती और रगीन भावनाओं का अनोखा सौंदर्य अकित किया गया है। इनके छोटे छोटे परिचित शब्दों में गजब का माधुर्य भरा है। साथ ही इनके भावों की छलकती हुई रसमयता मत्र मुग्ध बना देती हैं।"[2] कोई विरहिणी मैथिली महिला कह रही है कि जब चैत (बसंत) बीत जायेगा तब मेरा मूर्ख पति घर आकर क्या करेगा? आम्र वृक्ष की बौर में 'टिकोरे' (छोटा कच्चा आम) निकल आये, टहनी टहनी में रस का सचार हो गया परन्तु प्रिय नहीं आया।

"चैत बीति जयतइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ।
आरे अमुआ मोजर गेल,
फरि गेल टिकोरवा,
डारे-पाते भेल मतवलवा हो रामा।
चैत बीति जयतइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ"

(४) बारहमासा

पावस ऋतु में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'बारहमासा' कहते हैं। इन गीतों में विरहिणी की वेदना की अभिव्यक्ति पायी जाती है। जीविकोपार्जन के लिए पति परदेस चला गया है। बरसों से लौटकर नहीं आया है। वर्षा का दिन है। छप्पर चू रहा है। परन्तु कोई उसको छाने वाला नहीं है। ऐसी दशा में विरहिणी की वेदना पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है

---

१ उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १

२ राकेश : मै० लो० गी० पृ० २८५

और उसकी मनोव्यथा बारहमासे के रूप में प्रकट होती है। इन गीतों में पति के वियोग में कारण बारह महीनों—मासों—में जो जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनका बड़ा ही मार्मिक वर्णन होता है। अतः इन्हें 'बारहमासा' कहते हैं। जिन गीतों में बारहों महीने का विरहजन्य वर्णन होता है उन्हें 'बारह-मासा' जिनमें छह मासों का वर्णन होता है उन्हें 'छह मासा' और जिनमें केवल चार महीने—आसाढ़, सावन, भादपद, आश्विन—का वर्णन प्राप्त होता है उन्हें 'चौमासा' कहते हैं। परन्तु इनमें प्रथम ही सबसे अधिक लोकप्रिय है।

परम्परा

हिन्दी साहित्य में बारहमासा लिखने की परम्परा बड़ी प्राचीन है। सुप्रसिद्ध प्रेम मार्गी कवि जायसी ने नागमती के विरह-वर्णन में बारहमासा का प्रयोग किया है।[1] ऐसा ज्ञात होता है कि जायसी से बहुत पहिले ही लोक-गीतों के रूप में बारहमासे प्रचलित थे। जायसी ने उसी परम्परा का अनुसरण अपने काव्य में किया है। जायसी ने नागमती का वियोग वर्णन आषाढ मास से प्रारम्भ किया है और ज्येष्ठ मास में इसकी समाप्ति की है। प्रत्येक महीने मे होने वाले विरहजन्य प्रकृति का वर्णन इस कवि ने तल्लीनता के साथ किया है। जायसी के पश्चात् अनेक सत कवियों—विशेषकर भोजपुरी सन्त कवियो— ने बारहमासा लिखा है जिसमे विरहिणी के दुःखो की मार्मिक व्यञ्जना उपलब्ध होती है।

वर्ण्य विषय

बारहमासा प्रायः वर्षा ऋतु में ही गाया जाता है। ग्रामीण जनता इन गीतों को सुन कर रस-मग्न हो जाती है। 'बारहमासा' में विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन प्रधान रूप से पाया जाता है। कहीं तो इन गीतों में परदेस जाने के लिए प्रस्तुत पति को रोकने के लिए स्त्री की प्रार्थना सुनायी पड़ती है तो कहीं कोई प्रोषितपतिका अपनी सखी के विषम वियोग-जन्य दुःखों का वर्णन करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

मैथिली लोक गीतों में बारहमासा का प्रधान स्थान है। इनका मिथिला में बहुत प्रचार है। मैथिली लोकगीतों के उत्साही संग्रहकर्ता श्री राकेश जी लिखते हैं कि[2] "बारहमासा" मैथिल लोक-साहित्य की अनुभूत्यात्मक अभिव्यञ्जना है। इसके नैसर्गिक सौन्दर्य के सामने कीट्स की

---

१ पद्मावत—नागमती-वियोग खण्ड

हल्के पैर, गहरे नीलरग की बनफशा-सी आँखें, काढ़े हुए बाल, मुलायम पतले हाथ, श्वेतकठ और मलाईदार वक्ष प्रदेश वाली नायिका भी फीकी पड़ जाती है। 'बारहमासा' की भाव-धारा पुरानी शराब सी चोखी और चित्र देवदारु सा स्वच्छ है। पद मे शृङ्गार की रोचक सरसता है।"[1]

लेखक की उपर्युक्त उक्ति मैथिली बारहमासों के सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य घटती है।

बंगला मे बारहमासा—

बगला में इन गीतों को 'बारमाशी' कहते हैं जो बारहमासा का ही रूपान्तर है। बगला साहित्य में पल्लीगान में और विजयगुप्त के 'मनसा मङ्गल', में वेहुला की 'बारमाशी' का वर्णन पाया जाता है। भारतचन्द्र के 'अन्नदा मङ्गल' में भी बारहमासा उपलब्ध होता है। भोजपुरी और मैथिली बारहमासा की भाँति बगला 'बारमाशी' में भी स्त्री की विरह जन्य वेदना का चित्रण हुआ है। 'बारमाशी' की यह विशेषता है कि इसमें प्रत्येक मास में होने वाले व्रतों का भी विवेचन है। निम्नांकित बारमाशी में किसी वियोगिनी की विरह-ज्वाला की मार्मिक व्यञ्जना हुई है।[2]

यौवन ज्वाला बड़ई ज्वाला शहिते ना पारि
यौवन ज्वाला तेज्य करे, गलाय दिब दड़ि
दु ख यौवन प्रानेर बैरी
झाड़ेर बांश काट रे सादु वान्दिश्रो बाँगेला।
तुम सादु वाणिज्य गेले के खावे. कमेला॥
दुःख यौवन प्राणेर बैरी
हाटे जाश्रो, बाजारे जाश्रो गाछे पाका बेल।
तुम सादु वाणिज्य गेले, राखाले मारबे देल॥
दुख यौवन प्रानेर बैरी

(ग) व्रत-सम्बन्धी गीत

हमारा जीवन धर्ममय है। प्रत्येक मास में कोई न कोई पर्व या त्योहार आकर हमारी धार्मिक चेतना को जाग्रत करता रहता है। इन अवसरों पर स्त्रियाँ गीत गाती हैं। विभिन्न मासों में बहुरा, तीज, पीड़िया

1. राकेश: मै० लो० गी० पृ० ३६०
2. मुहम्मद मन्सूर उद्दीन : हारामणि

और गोधन का व्रत बड़े उत्साह से स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है। इन सभी पर्वों पर गीत गाने की प्रथा है। मासों के क्रम से इन पर्वों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

(१) नाग पंचमी के गीत—

श्रावण शुक्ला पचमी को 'नाग पंचमी' कहते हैं। गावों में यह 'नागपचैया' के नाम से प्रसिद्ध है। चूँकि इस दिन नाग अर्थात् सर्प की पूजा की जाती है अतः इसका उपर्युक्त नाम यथार्थ ही है। पंचमी के प्रातःकाल घर की लड़कियाँ मकान की बाहरी भित्ति पर चारों ओर से गोबर की रेखा खींचती हैं तथा घर के प्रधान द्वार पर सर्प की दो चित्रों को गोबर से अंकित करती हैं। फिर कटोरे में दूध और धान की खील—लावा—भरकर एकान्त स्थान में रख दिया जाता है। लोगों का विश्वास है कि इस दिन नाग देवता आते हैं और दूध पीते हैं। जो इस दिन नाग की पूजा करते हैं उन्हें फिर सर्प-दंश का भय नहीं रहता,

नागपूजा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। आज भी बंगाल में सर्पों की अधिष्ठातृ देवी 'मनसा' की पूजा का प्रचुर प्रचार है तथा इसकी उपासना और स्तुति में सैकड़ों ग्रन्थों की रचना हुई है।[1]

(२) बहुरा

बहुरा का व्रत भाद्रकृष्ण चतुर्थी को किया जाता है। इसे 'बहुला' भी कहते हैं। इस व्रत की कथा की नायिका बहुला है। यही इसके नामकरण का कारण है। स्त्रियाँ इस व्रत को पुत्र की प्राप्ति के लिए करती हैं। अतः बहुरा के गीतों में माता का पुत्र के प्रति अकृत्रिम स्नेह और सत्य प्रतिज्ञा की महिमा का उल्लेख हुआ है। परन्तु अधिकांश गीतों में सास और बहू का शाश्वतिक विरोध और दाम्पत्य-प्रेम का वर्णन ही विशेष रूप से पाया जाता है।

(३) गोधन

कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् को 'गोधन' का व्रत मनाया जाता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में इस दिन गोबर की मनुष्य की प्रतिमा बनायी जाती है और स्त्रियाँ उसे मूसल से कूटती हैं। इस प्रक्रिया को 'गोधन कूटना' कहते हैं। इस व्रत का विधि-विधान बड़ा विस्तृत तथा मनोरंजक है।[1]

---

१ उपाध्याय : भो० लो० सा० अ०

हल्के पैर, गहरे नीलरंग की बनफशा सी आँखें, काढे हुए बाल, मुलायम पतले हाथ, श्वेतकठ और मलाईदार वक्ष प्रदेश वाली नायिका भी फीकी पड़ जाती है। 'बारहमासा' की भाव-धारा पुरानी शराब सी चोखी और चित्र देवदारु सा स्वच्छ है। पद मे शृङ्गार की रोचक सरसता है।"[1]

लेखक की उपर्युक्त उक्ति मैथिली बारहमासों के सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य घटती है।

बंगला में बारहमासा—

बगला में इन गीतों को 'बारमाशी' कहते हैं जो बारहमासा का ही रूपान्तर है। बगला साहित्य में पल्लीगान में और विजयगुप्त के 'मनसा मङ्गल', में बेहुला की 'बारमाशी' का वर्णन पाया जाता है। भारतचन्द्र के 'अन्नदा मङ्गल' में भी बारहमासा उपलब्ध होता है। भोजपुरी और मैथिली बारहमासा की भाँति बगला 'बारमाशी' में भी स्त्री की विरह जन्य वेदना का चित्रण हुआ है। 'बारमाशी' की यह विशेषता है कि इसमें प्रत्येक मास में होने वाले व्रतों का भी विवेचन है। निम्नाकित बारमाशी में किसी वियोगिनी की विरह-ज्वाला की मार्मिक व्यञ्जना हुई है।[1]

यौवन ज्वाला बड़ई ज्वाला शहिते ना पारि
यौवन ज्वाला तेज्य करे, गलाय दिव दड़ि
दु ख यौवन प्रानेर बैरी
झाड़ेर बांश काट रे सादु वान्दिश्रो बाँगेला।
तुम सादु वाणिज्य गेले के खावे. कमेला॥
दुःख यौवन प्राणेर बैरी
हाटे जाश्रो, बाजारे जाश्रो गाछे पाका बेल।
तुम सादु वाणिज्य गेले, राखाले मारवे ढेल॥
दुख यौवन प्रानेर बैरी

(ग) व्रत-सम्बन्धी गीत

हमारा जीवन धर्ममय है। प्रत्येक मास में कोई न कोई पर्व या त्योहार आकर हमारी धार्मिक चेतना को जागृत करता रहता है। इन अवसरों पर स्त्रियाँ गीत गाती हैं। विभिन्न मासों मे बहुरा, तीज, पीड़िया

---

१. राकेश · मै० लो० गी० पृ० ३६०

२. मुहम्मद मन्सूर उद्दीन : हारामणि

और गोधन का व्रत बड़े उत्साह से स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है। इन सभी पर्वों पर गीत गाने की प्रथा है। मासों के क्रम से इन पर्वों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

(१) नाग पंचमी के गीत—

श्रावण शुक्ला पचमी को 'नाग पंचमी' कहते हैं। गावों में यह 'नागपचैया' के नाम से प्रसिद्ध है। चूँकि इस दिन नाग अर्थात् सर्प की पूजा की जाती है अतः इसका उपर्युक्त नाम यथार्थ ही है। पंचमी के प्रातःकाल घर की लड़कियाँ मकान की बाहरी भित्ति पर चारों ओर से गोबर की रेखा खींचती हैं तथा घर के प्रधान द्वार पर सर्प की दो चित्रों को गोबर से अंकित करती हैं। फिर कटोरे में दूध और धान की खील—लावा—भरकर एकान्त स्थान में रख दिया जाता है। लोगों का विश्वास है कि इस दिन नाग देवता आते हैं और दूध पीते हैं। जो इस दिन नाग की पूजा करते हैं उन्हें फिर सर्प-दंश का भय नहीं रहता,

नागपूजा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। आज भी बंगाल में सर्पों की अधिष्ठातृ देवी 'मनसा' की पूजा का प्रचुर प्रचार है तथा इसकी उपासना और स्तुति में सैकड़ों ग्रन्थों की रचना हुई है।[1]

(२) बहुरा

बहुरा का व्रत भाद्रकृष्ण चतुर्थी को किया जाता है। इसे 'बहुला' भी कहते हैं। इस व्रत की कथा की नायिका बहुला है। यही इसके नामकरण का कारण है। स्त्रियाँ इस व्रत को पुत्र की प्राप्ति के लिए करती हैं। अतः बहुरा के गीतों में माता का पुत्र के प्रति अकृत्रिम स्नेह और सत्य प्रतिज्ञा की महिमा का उल्लेख हुआ है। परन्तु अधिकांश गीतों में सास और बहू का शाश्वतिक विरोध और दाम्पत्य-प्रेम का वर्णन ही विशेष रूप से पाया जाता है।

(३) गोधन

कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् को 'गोधन' का व्रत मनाया जाता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में इस दिन गोबर की मनुष्य की प्रतिमा बनायी जाती है और स्त्रियाँ उसे मूसल से कूटती हैं। इस प्रक्रिया को 'गोधन कूटना' कहते हैं। इस व्रत का विधि-विधान बड़ा विस्तृत तथा मनोरंजक है।[1]

---

१ उपाध्याय : भो० लो० सा० अ०

गोधन शब्द गोवर्धन का अपभ्रंश रूप है। प्राचीन काल में गोवर्धन की पूजा का उल्लेख पाया जाता है। यही गोवर्धन पूजा 'गोधन' के रूप में आज भी वर्तमान है। गोबर की बनी हुई मनुष्य की प्रतिमा वास्तव में इन्द्र की प्रतिकृति है। भगवान् कृष्ण ने इन्द्र के गर्व को चूर्ण किया था। अतः 'गोधन कूटने' की यह प्रथा इन्द्र के मद-चूर्ण करने का प्रतीक स्वरूप है। इस व्रत का प्रधान उद्देश्य भाई और बहिन में प्रेम-भावना की वृद्धि है। इसी का वर्णन इन गीतों में किया गया है।

(४) पिड़िया

पिड़िया का व्रत कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् से प्रारम्भ होकर अगहन शुक्ल प्रतिपद्—पूरे एक मास—तक रहता है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् के दिन जो गोधन की गोबर की मूर्ति बनाकर पूजा की जाती है उसी गोबर का थोड़ा सा अंश लेकर कुँवारी लड़कियाँ पिड़िया लगाती है। घर की दीवाल पर गोबर की छोटी-छोटी सैकड़ों मनुष्य की आकृतियाँ बनायी जाती हैं। इसके साथ ही उस पर आटा तथा रंग से चित्र-कर्म भी किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया को 'पिड़िया लगाना' कहते हैं। पिड़िया शब्द 'पिण्ड' से बना है जिसमें लघु अर्थ में 'इया' प्रत्यय लगाकर पिड़िया की निष्पत्ति की गई है। अतः पिड़िया का अर्थ हुआ गोबर का बना हुआ छोटा पिण्ड या गोला।[1] इन गीतों में भी भाई-बहन के स्वाभाविक प्रेम का वर्णन उपलब्ध होता है जो दिव्य और अलौकिक है।

(५) छठी माता के गीत

छठी माता का व्रत कार्तिक शुक्ल षष्ठी को किया जाता है। इस व्रत को केवल स्त्रियाँ ही करती हैं परन्तु मिथिला में इसे स्त्री और पुरुष दोनों करते हैं। इसे 'षष्ठी व्रत' भी कहते हैं। 'छठी' शब्द इसी षष्ठी का अपभ्रंश रूप है। इसे 'डाला छठ' के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि इस दिन पूजा की समस्त सामग्री को एक डाल—बाँस की बनी हुई बड़ी छबड़ी—में रखकर नदी के किनारे ले जाते हैं और इस डाल की सामग्री को सूर्य देवता के लिए अर्पित करते हैं।

इस व्रत का प्रधान उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति और उसका दीर्घायु होना

---

१ पिड़िया प्रथा के विशेष विवरण के लिए देखिए
डा० उदयनारायण तिवारी : मैन इन इण्डिया

है। वास्तव में छठी का व्रत भगवान् सूर्य का व्रत है, क्योंकि इन्हीं की पूजा के पश्चात् स्त्रियाँ अन्न ग्रहण करती हैं। छठी माता के इन गीतों में वन्ध्या स्त्री की पुत्र-प्राप्ति के लिए सूर्य से प्रार्थना बड़ी मर्मस्पर्शिनी है। सूर्य की पूजा के लिए व्याकुल वन्ध्या भगवान् आदित्य से शीघ्र उदय लेने के लिए प्रार्थना करती है। पुत्रहीन स्त्री को जो यातना सहनी पड़ती है उसका उल्लेख भी इन गीतों में हुआ है।

मिथिला में ये 'छठ के गीत' के रूप में प्रसिद्ध हैं। धार्मिक मनोभाव, धर्म के नाम पर प्रचलित वहम, पारिवारिक विचार और मान्यताएँ, घरेलू निष्ठा और आत्मसंयम—ये छठ के गीतों के प्रिय विषय हैं।[1] भोजपुरी और मैथिली दोनों गीतों में पुत्र-प्राप्ति की कामना समान रूप से पायी जाती है।

ख] जाति सम्बन्धी गीत

कुछ लोक गीतों को विशिष्ट जाति के लोग ही गाते हैं। ऐसे गीतों में बिरहा का विशिष्ट स्थान है। यह अहीर लोगों का जातीय गान है। उमंग से भरा हुआ नौजवान अहीर ललकारते हुए जब बिरहा गाता है तब श्रोताओं के हृदय में एक विचित्र उत्साह पैदा हो जाता है। अहीरों में विवाह के अवसर पर बिरहा गाने की प्रतियोगिता होती है और जो अधिक संख्या में बिरहा गा सकता है उसी की जीत मानी जाती है।

१. अहीरों के गीत

बिरहा की उत्पत्ति 'विरह' शब्द से हुई है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में इन गीतों का वर्ण्य विषय 'विरह' रहा होगा परन्तु आजकल इन गीतों का प्रतिपाद्य विषय कोई भी वस्तु हो सकती है।

डा० ग्रियर्सन के अनुसार इन बिरहों का विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं है। परन्तु जनता के मनोभावों और आकांक्षाओं के प्रतीक होने के कारण इनका महत्त्व अधिक है। जिस प्रकार हिन्दी में बरवै और दोहा छन्द अल्पकाय होने पर भी अपनी चुस्त बन्दिश और सरस भाव धारा से श्रोताओं को रस से आप्लावित कर देते हैं उसी प्रकार बिरहा लोक-गीतों में सम्भवतः सबसे छोटा छन्द है, परन्तु अपनी सुगठित पदावली और चुभती शैली के कारण सहृदयों के हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहता।

ये बिरहे बिहारी के दोहों के समान हृदय पर सीधे चोट करते हैं।

---

१ राकेश : मै० लो० गी० पृ० २१६

विरहा दो प्रकार का होता है (१) छोटा (२) बड़ा। छोटा विरहा 'चरकड़िया' के नाम से प्रसिद्ध है अर्थात् जिसमें केवल चार चरण या पद हो उसे 'चारकड़िया' विरहा कहते हैं। यही अधिक लोक प्रिय है। लम्बा विरहा गाथा के रूप में होता है जिसमें रामायण या महाभारत की कथा गायी गई रहती है।

२. दुःसाधों के गीत

दुःसाध (एक अस्पृश्य या परिगणित जाति) लोग 'पचरा' नामक गीत गाते हैं। जब दुःसाधों में कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है अथवा भूत-दूत की बाधा से पीड़ित होता है तब उस जाति का बूढ़ा (वृद्ध वशिष्ठ) बुलाया जाता है और रोगी को नीरोग करने की उससे प्रार्थना की जाती है। वह अपनी देवी का आवाहन करके 'पचरा' गाना प्रारम्भ करता है। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहता है और अन्त में भक्त की प्रार्थना सुन कर देवी रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करती हैं।

पचरा के गीतों में देवी का अपने वाहन पर चढ़कर आना, उनकी विधिवत् पूजा करना तथा रोगी का रोग निवारण करने का वर्णन पाया जाता है।

गड़ेरिया लोगों के भी निजी गीत होते हैं। इनके एक मुख्य गीत का नाम 'सिउरिया' और दूसरे का 'पड़ोकीमार' है।[1] ये लोग किसानों के खेतों में अपनी भेड़ों को 'हिरा' कर मस्ती के साथ गीत गाते रहते हैं।

३. गोड़ों के गीत

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में गोंड नामक जाति के लोग निवास करते हैं जिनका काम प्रधानतया सेवा-वृत्ति है। ये लोग विवाह आदि मागलिक अवसर एक विशेष प्रकार का नृत्य करते हैं जिसे 'गोड़ऊ नाच' कहते हैं। इस समय 'हुड़ुका' (एक विशेष प्रकार का बाजा) नामक बाजा बजाते हुए ये लोग जो अभिनय करते हैं वह 'हर बोलाई' के नाम से प्रसिद्ध है। नृत्य के साथ ये गीत भी गाते जाते हैं जिनमें कहीं कहीं अश्लीलता का भी पुट पाया जाता है।

---

१ त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा० पृ० १३८—३६

४. तेलियों के गीत

तेलियों के गीतों में—जिन्हें कोल्हू के गीत भी कहते हैं—शृङ्गाररस की मात्रा प्रचुर परिमाण में पायी जाती है। इन गीतों मे तैलिक जीवन का सुन्दर चित्रण हुआ है।[1] धोबी लोग गोंड़ो की भाँति हुड़ुक बजाते हुए सामूहिक रूप में गीत गाते हैं। इन गीतों मे इनके पेशे का उल्लेख होता है। चमारों के जातीय गीत बड़े मनोरंजक होते हैं। विवाह के अवसर पर ये अपने 'यजमानो' के यहाँ जाकर नृत्य का प्रदर्शन करते हैं। इनका प्रधान बाजा 'डफरा' और 'पिपिहरी' है। इनके गीतों में सामाजिक बुराइयों के सम्बन्ध में चुभता हुआ व्यङ्ग पाया जाता है। इस प्रकार इन विभिन्न जातियों में विशेष प्रकार के गीत प्रचलित हैं जिन्हें प्रधानतया ये ही लोग गाते हैं।

(ङ) क्रिया-गीत (Action Songs)

क्रिया गीत वे गाने हैं जो किसी काम को करते समय गाये जाते हैं। ऐसा देखा जाता है, मजदूर लोग अपनी शारीरिक थकावट को दूर करने के लिए काम करते समय गाना भी गाते जाते हैं। इससे काम करने में मन लगा रहता है और परिश्रम का पता नहीं चलता। इस प्रकार के गीतों में जतसार, रोपनी, सोहनी आदि के गीत प्रधान हैं।

(१) जाँत के गीत

चक्की पीसते समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'जँतसार' या 'जाँत के गीत' कहा जाता है। यह शब्द 'यन्त्र-शाला' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है वह शाला या घर जिसमें आटा पीसने का यन्त्र रखा गया हो।

जाँत के गीतों में करुण रस का सागर हिलोरे मारता हुआ दिखायी पड़ता है। इन गीतों में कहीं तो दुःखिनी विधवा का करुण क्रंदन सुनने को मिलता है तो कहीं वन्ध्या स्त्री की मनोवेदना अभिव्यजित होती है। कहीं विरहिणी स्त्री की व्याकुलता का वर्णन है तो कहीं सास के द्वारा वधू की नारकीय यन्त्रणा का चित्रण। करुण रस के जितने भी मार्मिक प्रसंग हो सकते हैं प्रायः इन सभी की अवतारणा इन गीतों में हुई है। पुत्रहीन

---

१ त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ४५७

विधवा की मनोव्यथा का कारुणिक वर्णन अनेक गीतों में उपलब्ध होता है जो पाषाण हृदय को भी पिघला देता है।[1]

(२) रोपनी के गीत

धान को खेत में रोपते समय जो गीत गाये जाये जाते हैं वे रोपनी के नाम से प्रसिद्ध हैं। धान रोपने का काम प्रायः मुसहर, चमार आदि की स्त्रियाँ किया करती हैं। गार्हस्थ्य जीवन का चित्रण इन गीतों में विशेष रूप से पाया जाता है। कोई स्त्री ससुराल के कष्टों का निवेदन करती हुई अपने पति से कहती है कि जब से मैं यहाँ आयी तब से काम करते करते मेरे शरीर का चाम सूख गया और सुख सपना हो गया।[2] स्त्रियों का अटूट एव विशुद्ध पति प्रेम तो बहुत देखने को मिलता है परन्तु पति का स्त्री-प्रेम प्रायः दुर्लभ पदार्थ है। परन्तु रोपनी के गीतों में इस विशुद्ध स्त्री-प्रेम की झाँकी भी हमें देखने को मिलती है।[3]

(३) सोहनी के गीत

खेत में व्यर्थ की घास और पौधे जो पैदा हो जाते हैं उन्हें काटकर अलग कर देने को 'निराना' या 'सोहना' कहते हैं। इस कार्य को करते समय जो गीत गाये जाते हैं वे 'निरौनी' या 'सोहनी' कहलाते हैं। इन्हें 'निरवाही के गीत' भी कहते हैं। इन गीतों का भी वर्ण्य विषय वही है जो रोपनी के गीतों का है। कहीं बहू का सास द्वारा सताये जाने का विवरण पाया जाता है तो कहीं पति का अपनी पत्नी के आचरण पर सन्देह करके उसकी अग्नि-परीक्षा करने का उल्लेख उपलब्ध होता है।

(च) देवी-देवताओं के गीत

देवी देवताओं के सम्बन्ध में अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। भोजपुरी प्रदेश में शीतला माता, गगाजी, तुलसी जी के गीत प्रसिद्ध हैं। भजनों में भगवान् की महिमा का वर्णन किया गया है। शीतला माता के गीतों में चेचक के रोग से पीड़ित बालक को आरोग्य प्रदान करने की प्रार्थना इन से की गई है। राजस्थान में विवाहादि मांगलिक अवसरों पर गृहस्थ स्त्रियाँ

---

१ उपाध्याय : भो० ग्रा० गी०, भाग २ पृ० ११५–१६

२ वही, पृ० २०१

३ वही, पृ० २६५

गणपति (गणेश) की स्तुति में गीत गाती हैं।[1] इन गीतों में गणपति को विनायक के नाम से स्मरण किया गया है। इसके अतिरिक्त हनुमानजी, भैरूँजी, जल देवता, सील, सती और पितराणी आदि के गीत प्रसिद्ध हैं।[2] इन गीतों में अपनी मनोवाञ्छित कामना की पूर्ति के लिए भक्तों की विभिन्न देवताओं से प्रार्थना बड़ी मर्म स्पर्शी है। कोई राजस्थानी वन्ध्या स्त्री भैरवजी से विनती करती हुई कहती है कि देवरानी-जेठानी ने मुझे ताना मारा है। उनके पालने में पुत्र झूल रहे हैं परन्तु कुल भर में मैं ही ऐसी अभागिनी हूँ जिसे पुत्र नहीं है। अतएव हे देव! मेरे ऊपर दया करो।[3] इसी प्रकार इन गीतो में भक्तों की अभिलाषाओं का वर्णन पाया जाता है।

(छ) विविध गीत

अनेक ऐसे भी गीत उपलब्ध होते हैं जिनका अन्तर्भाव उपर्युक्त वर्गीकरण में नहीं होता। इन गीतों में झूमर, अलचारी, पूरबी और निर्गुन आदि मुख्य हैं। पालने के गीतों को भी इसी कोटि में रखा जा सकता है। मांगलिक अवसरो पर समवेत स्वर से जिन गीतों को स्त्रियाँ झूम झूमकर गाती हैं उन्हें झूमर कहते हैं। ये गीत शृङ्गार रस से लबालब भरे होते हैं जिनमें दाम्पत्य प्रेम का वर्णन विशेष रूप मे होता है। मैथिली झूमरों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। अलचारी शब्द लाचारी से निकला हुआ है जिसका अर्थ है विवशता। जब किसी स्त्री का पति उसका कहना नहीं मानता अथवा वह परदेश चला जाता है तो लाचारी अवस्था में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'अलचारी' कहते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में—विशेषकर बलिया, गाजीपुर—में तथा बिहार राज्य के छपरा जिले में एक विशेष प्रकार के राग (Tune) में जो गीत गाये जाते हैं वे पूर्वी के नाम से अभिहित किये जाते हैं। ये गीत बड़े मधुर, सरस और मन मोहक होते हैं। छपरा निवासी महेन्द्र मिश्र इन गीतों के रचयिता थे जिनका नाम इनमें पाया जाता है। निर्गुन के गीत भक्ति रस के गाने हैं जिनमें ईश्वर की स्तुति उपलब्ध होती है। कबीरदास जी का नाम निर्गुन गीतों के साथ संलग्न है, परन्तु महात्मा कबीर के द्वारा इनके रचित होने की बात संदिग्ध है।

---

१ पारीक : राजस्थानी लोक गीत पृ० ३२

२ वही भाग १

३ वही, पृ० ३४

परन्तु कई कारणों से इन गीतों को कबीर के द्वारा रचा गया नहीं माना जा सकता। राबर्ट ग्रेम्स ने लिखा है कि वर्तमान सामाजिक संगठन में किसी लेखक का अज्ञातनामा होना इस बात को सिद्ध करता है कि उसे अपनी कृति से लज्जा लगती है अथवा उसे अपने नाम को प्रकट करने में भय लगता है। परन्तु आदिम समाज में यह बात लेखक के नाम की असावधानी के कारण होती थी।[1]

अन्य कविताओं की भाँति इन गाथाओं का भी कोई न कोई रचयिता अवश्य होगा जिसने अपने साथियों के साथ आनन्द में मस्त होकर इनकी रचना का प्रारम्भ किया होगा। परन्तु जातीय रचना (Communal Composition) की विशेषता यह होती है कि इसका रचयिता उस दल के मुखिया का काम करता है और जब गाथा की रचना समाप्त हो जाती है तब उसके लेखक होने का वह अहंकार नहीं करता। इस प्रकार की रचनाओं में गाथा की प्रधानता होती है, दल का भी महत्त्व होता है परन्तु किसी व्यक्ति विशेष की महत्ता नहीं रहती। ऐसा देखा जाता है कि छोटे-छोटे बच्चे छोटे-छोटे गीतों को बनाते, गुनगुनाते और गाते जाते हैं परन्तु इनमें से कोई भी गीत के रचयिता होने का दावा नहीं करता। यह किसी को याद भी नहीं रहता कि किस बालक ने इस गीत में किस कड़ी या पंक्ति को जोड़ा है।[2] जातीय रचना में एक व्यक्ति का नहीं बल्कि अनेक व्यक्तियों का हाथ रहता है। सभी के सहयोग से उसकी रचना होती है; अतः किसने इसका निर्माण किया यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव है।

---

1 Anonymity in the present structure of society usually implies that the author is ashamed of his authorship or afraid of the consequences if he reveals himself, but in a primitive society is due just to carelessness of the author's name

दि इंग्लिश बैलेड इन्ट्रोडक्शन, पृ० १२

2 The ballad is important, the group is important, but the individual counts for little Rudimentary balladry is common among group of small children and it will be noticed that no child will claim authorship of the sing-song ; no one remembers who added which phrases to the common store.

राबर्ट ग्रेम्स—वही, पृ० १२

(२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव

लोक-गाथाओं का कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं होता। चूँकि गाथा समुदाय की सम्मिलित रचना होता है अतः उसके मूल पाठ (Original Text) का पता लगाना बड़ा कठिन है। रचयिता गाथा की रचना कर उससे पृथक् हो जाता है। अब यह गाथा समस्त समाज, समुदाय या जाति की रचना हो जाती है और प्रत्येक मनुष्य उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझता है। प्रत्येक गवैया अपनी इच्छा के अनुसार इसमें नयी पंक्तियाँ जोड़ता जाता है। विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित होने के कारण स्थानीय निवासी उसमें अपनी भाषा की शब्दावली जोड़ते जाते हैं। इस प्रकार आकार में वृद्धि होने के साथ ही साथ उसकी भाषा में भी परिवर्तन होता जाता है।

हडसन ने अपनी पुस्तक में काव्य को दो भागों मे विभक्त किया है [1] :—

(१) अलंकृत काव्य (Poetry of art)
(२) सवर्धित काव्य (Poetry of growth)

अलकृत काव्य से उनका अभिप्राय उस कविता से है जो किसी एक कवि की रचना है और जिसमें रस, अलकार, गुण आदि की योजना की गई है। सवर्धित काव्य से उनका अभिप्राय उस काव्य से है जिसकी वृद्धि युग-युग में विभिन्न कवियों ने की हो। कालिदास का रघुवंश प्रथम का तथा व्यास लिखित महाभारत द्वितीय का उदाहरण है।

सवर्धित काव्य की ही भाँति लोक-गाथाओं में समय-समय पर लोक-कवियों द्वारा परिवर्तन और सवर्धन होता रहता है। इस प्रकार इनके मूल कलेवर में वृद्धि होती रहती है। जैसे-जैसे यह एक गवैये से दूसरे गवैये के पास जाता है वैसे ही वैसे यह लगातार बदलता जाता है। उसमें से पुराने पद निकाल दिये जाते हैं और नये जोडे जाते हैं। इनके लय भी बदल दिये जाते हैं। पात्रों के नामों में भी भिन्नता आ जाती है। दूसरी लोक-गाथाओं के पद इसमें सम्मिलित हो जाते हैं। इस विधि से यह परम्परा यदि दो-तीन सौ वर्षों तक चलती रही तो गाथाओं में भाषा सम्बन्धी इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि कदाचित् मूल लेखक भी

---

१ इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑव् लिटरेचर

उसे गाया जाता हुआ सुनकर पहिचान न सके।[1] गाथाओं की यह मौखिक परम्परा शताब्दियों तक प्रवहमान रहती है और इस बीच में अनेक लोक-कवियों द्वारा इसमें इतना परिवर्तन तथा परिवर्धन किया जाता है कि मूल गाथा का पता ही नहीं चलता। कुछ विद्वानों ने लोक गाथा की उपमा विशाल नदी से दी है। जिस प्रकार कोई नदी अपने स्रोत से अत्यन्त पतली धारा के रूप में निकलती है, बाद में उसमें अनेक छोटी-मोटी नदियाँ, तथा नाले मिलते जाते हैं और अन्त में उसका आकार इतना विस्तृत हो जाता है कि उसके स्वरूप को पहिचानना कठिन हो जाता है। उसी प्रकार लोक-गाथाओं के मूल रूप में जन-कवियों द्वारा इतना परिवर्तन कर दिया जाता है कि उसके मौलिक रूप का पता नहीं चलता।

इसीलिए किसी लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित या अंतिम स्वरूप नहीं होता। कोई प्रामाणिक पाठ (Version) नहीं होता। इसके अनेक पाठ होते हैं कोई एक ही पाठ नहीं होता। मान लीजिए कि किसी गाथा में क, ख, ग तीन विभिन्न पाठ हैं और क पाठ मूल गाथा के अधिक समीप है परन्तु ख और ग पाठ का महत्त्व कुछ कम नहीं हो सकता।[2] इन पाठों का उतना ही मूल्य है जितना क पाठ का। कीट्रीज ने लिखा है कि प्रोफेसर चाइल्ड के द्वारा सम्पादित कई बैलेड्स के एक से लेकर इक्कीस पाठ तक उपलब्ध होते हैं जिनका संग्रह उन्होंने किया है।[3] परन्तु इनमें से किसी एक पाठ का मूल्य दूसरे पाठ से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

राबर्ट ग्रेम्स ने लिखा है कि किसी विशिष्ट गाथा का कोई वास्तविक एवं शुद्ध पाठ नहीं होता। गवैये अपने इच्छानुसार उसमें परिवर्तन करते रहते हैं। अतएव किसी एक पाठ को ही विशुद्ध नहीं माना जा

---

१. कीट्रिज द्वारा सम्पादित—इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स-इन्ट्रोडक्शन, पृ० xvii

2 It follows that a genuinely popular ballad can have no fixed and final form, no sole authentic version There are texts, but there is no text. Version A may be near the original than versions B and C but that does not effect the pretensions of B and C to exist and hold up their heads among their fellows.

कीट्रीज : इन्ट्रोडक्शन, पृ० १७-१८

३. वही,

सकता ।[1] पं० रामनरेश त्रिपाठी ने "भगवती देवी" शीर्षक लोक-गाथा के तीन-चार पाठ सङ्कलित किया है परन्तु कौन-सा पाठ मूल तथा शुद्ध है यह कहना कठिन है ।[2]

आल्हा का मूल लेखक जगनिक था जिसने हिन्दी की बुन्देलखण्डी बोली में अपनी अमर कृति की रचना की थी। इसमें आल्हा ऊदल के पराक्रम का वर्णन था। जगनिक की यह कृति आकार में बहुत बड़ी न रही होगी। परन्तु आजकल जो 'आल्हा' उपलब्ध होता है उसका आकार मूल ग्रंथ से कई गुना अधिक है। उसमें ऐसी अनेक घटनायें पीछे से जोड़ दी गई हैं जिनका मूल 'आल्ह खंड' में वर्णन नहीं रहा होगा। जगनिक ने अपना मूल ग्रंथ बुन्देल खण्डी बोली में लिखा था परन्तु उत्तरी भारत में आल्हा के सर्वत्र प्रचार के कारण इसके अनेक पाठ उपलब्ध होते हैं जिसमें कन्नौजी, बुन्देलखंडी और भोजपुरी पाठ प्रसिद्ध हैं। कन्नौजी और भोजपुरी पाठ तो प्रकाशित भी हो गये हैं। खोज करने पर इसके ब्रज तथा अवधी पाठों का भी पता चल सकता है। गोपीचन्द की गाथा के भी कई पाठ उपलब्ध होते हैं। बंगला भाषा में प्रचलित इनकी गाथा भोजपुरी से भिन्न है। डा० ग्रियर्सन ने गोपीचन्द के दो पाठों (Versions) का सङ्कलन तथा सम्पादन किया है जिसमें बंगला और मगही पाठों की तुलना की गई है ।[3] पंजाब में प्रचलित राजा रसालू की कथा के भिन्न-भिन्न पाठ पाये जाते हैं। स्विनर्टन तथा डा० एलविन ने इन विभिन्न पाठों का संग्रह तथा सम्पादन योग्यता से किया है। ढोला-मारू की गाथा राजस्थान से लेकर भोजपुरी प्रदेश तक अनेक रूपों में उपलब्ध होती है परन्तु सब में भिन्नता है। विद्वानों से यह बात छिपी नहीं है कि बाला लखन्धर तथा बिहुला की भोजपुरी गाथा बङ्गाल में भी प्रचलित है।

कहने का सारांश यह है कि लोकगाथाओं का कोई मूल, प्रामाणिक तथा विशुद्ध पाठ नहीं होता।

---

1 That is why there is never any actual correct text of a ballad proper, singers are allowed to alter it to their liking X X X No single version must be regarded as the 'right one' in an absolute sense.

दि इंगलिश बैलेड—भूमिका, पृ० १२

२ कविता-कौमुदी, भाग ५ (ग्राम गीत)

३. ज० ए० सो० बं० (भाग LIV), सन् १८८५ भाग १ पृ० ३५

(३) संगीत तथा नृत्य का अभिन्न साहचर्य

संगीत और गाथा का अभिन्न साहचर्य है। सच तो यह है कि संगीत के बिना गाथा को सुनने में आनन्द ही नहीं आता। यह पहिले लिखा जा चुका है कि अंगरेजी बैलेड शब्द की उत्पत्ति लैटिन 'वेलारे'से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना होता है । अतः बैलेड का मूल अभिप्राय उस गीत से था जो नाच कर गाया जाता था। इसे जन समुदाय कोरस—समवेत स्वर —से गान करता था। उत्तजेना-जनक तथा पुनरावृत्ति मूलक संगीत के बिना गाथा अधूरी ही है[1] क्योंकि यही इसका प्राण है, इसकी आत्मा है।

यूरोपीय देशों में चारणों के द्वारा—जिन्हें 'मिन्स्ट्रल्स' कहते थे—ढोल अथवा सितार बजा कर लोक-गाथाओं को गाने का उल्लेख मिलता है।[2] डा० चाइल्ड और विशाप पर्सी ने ऐसे चारणों का विशेष रूप से वर्णन किया है। चाइल्ड ने तो इन चारणों के द्वारा गाये जाने से ही कुछ गाथाओं को 'मिन्स्ट्रल्स' 'बैलेड' के नाम से अभिहित किया है । विशाप पर्सी ने लिखा है कि इन चारणों का अनेक शताब्दियों तक एक पृथक् सम्प्रदाय था जो धनी-मानी व्यक्तियों के यहाँ गीतों को गा-गा कर अपनी जीविका का उपार्जन करते थे।[3]

गूमर का मत है कि कुछ विशिष्ट प्रकार के गीत बड़े प्रेम से बहुत देर तक गाये जाते थे। मध्यकाल में मृत्यु के अवसर पर नृत्य प्रचलित था जो स्वभावतः धीरे-धीरे होता था ।[4]

भारतवर्ष में भी गाथा और संगीत का अभिन्न सम्बन्ध दिखायी पड़ता है। वर्षा के दिनों में 'आल्हा' गाने की बड़ी प्रथा है। अल्हैत गाते

---

1 The ballad is incomplete without an exciting and repetitive music

राबर्ट ग्रेव्स दि इङ्गलिस बैलेड, पृ० १७

२ चाइल्ड : इ० स्का० पा० बै०, भूमिका

3 But the minstrels continued a distinct order of men for many ages after the Norman conquest and got their livelihood by singing verses to the harp at the houses of the great

रेलिक्स ऑव् एन्शेयट इङ्गलिश पोइट्री—भाग १ भूमिका, पृ० २४

4 True, certain of the Border songs were sung lustily enough and at prodigious length XXX Dances were common at Medieval funerals, naturally to a slow measure

एफ. बी. गूमर ' दि पापुलर बैलेड, पृ० २४६

समय अपने गले में ढोल बाँध लेता है और उसे पीट-पीट कर अपने भावावेश की सूचना श्रोताओं को देता है। 'आल्हा' के गाने की गति ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती है ढोल बजाने की गति में भी वैसा ही परिवर्तन होता जाता है। गोरख पन्थी साधू—जो जोगी के नाम प्रसिद्ध हैं—गोपीचन्द तथा भरथरी के गीत सारंगी बजाकर गाते फिरते हैं। सारंगी उनके गायन का अनन्य सहायक है। सम्भवतः इसके बिना उनकी स्वर लहरी में कम्पन ही न उत्पन्न हो सके।[1]

जो बात लोक-गाथाओं पर लागू है वही लोक-गीतों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। होली का गाना भोजपुरी प्रदेश में बड़ा प्रसिद्ध है। इसे गायक लोग ढोल और 'झाल' बजा बजा कर बड़े प्रेम से गाते हैं। चैता के गीत भी झाल " बजाकर गाये जाते हैं। अतः इनका नाम ही "झलकुटिया चैता" पड़ गया है। भिक्षुक भजन तथा 'निर्गुन' को गाते समय कठताल का प्रयोग करते हैं। गोंड़ जाति के लोग अपने गीतों को गाते हुए एक विशेष प्रकार का बाजा बजाते हैं जिसे 'हुड़ुका' कहते हैं। सन्थाली लोग नगाडे की आकृति का बाजा बजाते हुए गीत गाते हैं।

गीत और संगीत का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि देहातों में जहाँ कोई भी वाद्य यंत्र उपलब्ध नहीं होता वहाँ स्त्रियाँ काठ के कठौते को उलटा करके लाठी के हूरे से उसकी पीठ को रगड़ती हैं। इससे एक विचित्र प्रकार की संगीतमयी ध्वनि उत्पन्न होती है। इस संगीत के साथ वे गीत गाती जाती हैं। जहाँ यह भी उपलब्ध नहीं है वहाँ वे ताली बजाकर ही संगीत के अभाव की पूर्ति करती हैं। झूमर के गीत प्रायः ताली बजाकर ही गाये जाते हैं। लोकगीत सामूहिक रूप से गाये जाने पर विशेष आनन्द देते हैं। यह बात भी उनकी संगीतात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। इस प्रकार लोक गीतों और गाथाओं का संगीत से अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

४. स्थानीयता का प्रचुर पुट

लोक गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। इनमें भले ही राजा, महाराजा, रईस और उमरावों का वर्णन हो फिर भी स्थानीय रंग इनमें गहरा होता है। यही कारण है कि जिस देश या प्रान्त में जो गीत प्रचलित है उसमें वहाँ के लोगों की रहन-सहन, रीति-रिवाज,

१. उपाध्याय ' भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन.

खानपान और आचार-व्यवहार का सजीव चित्रण रहता है। कहीं-कहीं स्थानीय ऐतिहासिक घटनाओं का भी उल्लेख पाया जाता है। एक भोजपुरी झूमर में 'पनिया ना पिये हरदिया का राजा का बार बार उल्लेख पाया जाता है। विहार राज्य में प्रचलित अनेक गीतों में बाबू कुँवर सिंह का वर्णन हुआ है। मारवाड़ में यातायात का साधन ऊँट है। ढोला मारूरा दूहा में मारवणी ऊँट की सवारी करती हुई दिखायी पड़ती है। उत्तर प्रदेश के पर्वतीय जिलों में सर्दी अधिक पड़ती है। अतः वहाँ के लोगों के लिए थोड़ी भी गर्मी असह्य होती है। कोई पवतीय बाला अपने पिता से प्रार्थना करती है आप मेरा विवाह छाना बिलौरी नामक स्थान में जहाँ गर्मी अधिक पड़ती है मत कीजिएगा क्योंकि पसीने के मारे मैं परेशान हो जाऊँगी। इसी प्रकार मैथिली लोक-गीतो में वहाँ की स्थानीय प्रथाओं की झाँकी मिलती है।

(५) मौखिक प्रवृत्ति

लोक-गाथाएँ चिरकाल से मौखिक परम्परा के रूप में चली आ रही हैं। प्राचीन काल में वेदों की परम्परा भी मौखिक थी गुरु अपने शिष्य को वेद की शिक्षा मौखिक रूप से देता था और शिष्य अपने शिष्य को इसी विधि से वेद पढ़ाता था। लोक गाथाएँ इसी रूप में आज भी सुरक्षित हैं। लोक-कवि भिखारी का सुप्रसिद्ध 'बिदेसिया' नामक गीत उसके शिष्यों द्वारा प्रचलित किया गया है। बुलाकीदास के द्वारा रचित चैता के अनेक गीतों को उनके भक्तों ने गा-गाकर काल-कवलित होने से बचा रखा है। लोक-गाथा तभी तक सुरक्षित रहती है जब तक उसकी परम्परा मौखिक होती है। लिपिबद्ध करते ही उसकी गति और प्रगति रुक जाती है। उसकी बाढ़ मारी जाती है। इस विषय में सिजविक का कथन नितान्त सत्य है कि यदि किसी गाथा को आपने लिख लिया तो निश्चय समझिये कि आपने उसकी हत्या करने में योग-प्रदान किया है। जब तक यह मौखिक है तभी तक इसमें जीवन है, अन्यथा नहीं।[1] गूमर

---

1 "In the act of writing each one (ballad) down you must remember that you are helping to kill that ballad Virum volitare per ora" is the life of a ballad, it lives only while it remains what the french with a charming cunfusion of ideas, call "oral literature"

सिजविक : दि बैलेड, पृ० ३६

ने लिखा है कि मौखिक परम्परा किसी गाथा की प्रधान उपलब्ध कसौटी है।[1]

जब किसी गाथा को लिपि के शिकञ्जों में बाँध लिया जाता है तब उसकी वृद्धि रुक जाती है। उसका पाठ निश्चित हो जाने के कारण उसमें अन्य गायकों द्वारा परिवर्तन तथा संवर्धन की गुञ्जाइश ही नहीं रहती है। परन्तु मौखिक रूप में रहने पर जिस प्रदेश में इनका प्रचार होता है वहाँ के गायक उसमें दो-चार अपनी कड़ियाँ जोड़ देते हैं। इस प्रकार इनके विभिन्न पाठ हो जाते हैं। 'आल्हा' के भिन्न-भिन्न पाठों का यही रहस्य है।

(६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव

लोक-गाथाओं में उपादेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव पाया जाता है। जिस प्रकार संस्कृत में 'नीतिशतक' और हिन्दी नीति के में दोहे मिलते हैं उसी प्रकार नीति के वचन गाथाओं में उपलब्ध नहीं होते। इन गाथाओं की प्रवृत्ति कथानक को गति प्रदान करने की है न कि उपदेश-कथन की। राबर्ट ग्रेभ्स ने ठीक ही कहा है कि गाथा नीति या सदाचार की शिक्षा नहीं देती और न पृथकत्व की भावना का प्रचार करती है। यदि गाथा में यह बात पायी जाय तो यह समझना चाहिए कि चारण अपने को समुदाय से बाहर समझता है।[2]

लोरकी, विजयमल, सोरठी और आल्हा आदि में देशभक्ति, माता की आज्ञा का पालन, साहस, शौर्य और प्रेम के अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनसे उपदेश या शिक्षा ली जा सकती है। कुसुमा देवी और भगवती-देवी के गीतों से उनके अलौकिक सतीत्व तथा आदर्श आचरण की शिक्षा मिलती है, परन्तु उनमें उपदेश देने की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती।

---

1 These are the cardinal virtues of the ballad, with respect to its conditions, critics unite in regarding oral transmission as its chief available test

ओल्ड इंगलिश बैलेड्स, भूमिका पृ० २६

2 The ballad proper does not moralize or preach or express any strong parti san bias XXX XXX Moralizing or preaching in a balladl is a sign that the bard is definitely outside the gronp and is in touch with culture A partisar bias is incompatible with group action

दि इंगलिश बैलेट, पृ० ८१

(७) अलंकृत शैली की अविद्यमानता तथा स्वाभाविक प्रवाह

'लोक-गाथा कलात्मक या अलंकृत काव्य से सर्वथा भिन्न है। अलंकृत कविता किसी कलाकार द्वारा लिखी जाती है जो अपनी रचना को सुन्दरतम बनाने के लिए विभिन्न अलकार, छन्द, रस, रीति और गुणों की अवतारण—करता है। वह अपनी कृति में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की योजना कर, उसे किसी विशिष्ट छन्द के साँचे में ढालने के लिए उसमें काट-छाँट भी करता है। वह विभाव, अनुभाव और सचारी का विधान कर विभिन्न रसों को अपने काव्य में स्थान देने का प्रयास करता है। ऐसे काव्य को अलकृत काव्य (Poetry of art) कहा जाता है। इसकी रचना कलाकार प्रयास पूर्वक करता है। परन्तु लोक-गाथाएँ जो जनता की कविता (Poetry of the folk) कही जाती है इससे बिल्कुल पृथक् हैं। इनमें अलकार विधान, गुण—योजना आदि का प्राय:अभाव होता है। यदि कहीं अलकारों की स्थिति दीख पड़ती है तो वे अनायास उपस्थित होते हैं, प्रयासपूर्वक नहीं।'

लोक गाथाएँ 'टेक्नीक' की दृष्टि से बहुत समृद्ध नहीं होती। 'टेक्नीक' का अर्थ कठिन छन्द-विधान, अलकारों का प्रयोग और काव्यमय विचारों का प्रस्तुतीकरण समझना चाहिए।[1]

पिंगल शास्त्र के नियमानुसार इनको नाप तौलकर रखने की भी आवश्यकता नहीं। यही कारण है कि लोक-गाथाओं में छन्द शास्त्र के नियमों की बड़ी शिथिलता के साथ पालन किया गया है। कहीं-कहीं तो इसका नितान्त अभाव ही है। प० रामनरेश त्रिपाठी ने लोक गीतो का अलकृत कविता से पार्थक्य बतलाते हुए लिखा है कि :—

"ग्राम गीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्राम-गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्राम गीत में रस है, महाकाव्य में अलकार। रस स्वाभाविक है और अलकार मनुष्य निमित।"[2]

---

1 It has been noted that the ballad proper is not highly advanced in technique By 'advanced technique' is meant complicated verse forms, the ingenious use of metaphor and allegory, and a presentation of ideas which is poetical before it is poetic, 'artistics' before it is imagenative, 'musical' before it is intended for singing.

रावर्ट ग्रेम्स ' दि इंगलिस बैलेड, भूमिका पृ० २०

२ कविता कौमुदी, भाग ५ (ग्राम गीतों का परिचय) प० ६

एक दूसरे स्थान पर वे कहते हैं :—"ग्राम-गीत प्रकृति के उद्गार है। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है; छन्द नहीं, केवल लय है; लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।[1]

(८) रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव

अलकृत कविता में लेखक का व्यक्तित्व प्रतिविम्बित रहता है। ऐसा कहा जाता है कि शैली ही व्यक्ति है। अतः कलात्मक रचना पर उसके रचयिता के व्यक्तित्व की छाप होना सुतरां आवश्यक है। एक कवि का व्यक्तित्व उसे दूसरों की कृतियों से पृथक् करता है। परन्तु लोक-गाथाओं में लेखक के व्यक्तित्व का अभाव होता है। इन गाथाओं का कोई एक रचयिता नहीं होता ऐसी परिस्थिति में उनके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना सभव नहीं। गाथाओं के कवियों का कोई महत्त्व नहीं होता, न तो वे वर्तमान में उपस्थित रहते हैं और भूत काल में उनकी सत्ता थी या नहीं इसमें भी हम सन्देह की दोला पर दोलायमान होते हैं।[2]

जहाँ तक श्रोताओं पर प्रभाव उत्पन्न करने का प्रश्न है गाथाओं का रचयिता केवल अदृश्य ही नहीं बल्कि उसका अस्तित्व ही नहीं होता। कथा के कहने वाला का कथा मे कुछ भाग ही नहीं होता। अन्य गीतों की भाँति गायक के भावनाओं तथा विचारों की इनमें झाँकी नहीं दिखायी पड़ती। इनमें उत्तम पुरुष का प्रयोग नहीं होता। गाथाओं का गायक (रचयिता) न तो कोई विचार प्रकट करता है और न किसी वस्तु की आलोचना ही करता है। नाटक के पात्रों में वह किसी के पक्ष या विपक्ष को नहीं ग्रहण करता। यदि किसी ऐसी कथा की कल्पना की जा सकती जो वक्ता के बिना स्वतः अपनी कथा कहे तो ऐसी कथा लोक-गाथा ही हो सकती है।[3]

---

१ क० कौ०, भाग २ पृ० १

2 In the balled it is not so There the author is of no account He is not even present We donot feel sure that he ever existed

कीट्रिज इ० स्का० पा० बै० भूमिका, पृ० ११

3 Not only is the author of a ballad invisible but practically non-existant The teller of the tale has no role in it unlike other songs, it does not purport to give utterence to the feeling or the mood of the singer. The first person does not occur at all — — There are no Comments or reflections by

सिजविक ने लिखा है कि किसी भी भाषा की लोक-गाथा का सर्व प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ गुण या लक्षण उसकी व्यक्तित्व-हीनता है। परन्तु हमको झट से इस नतीजे पर नहीं पहुँचना चाहिए कि लेखक कोई व्यक्ति था ही नहीं। ऐसा सभव है कि अनेक कलात्मक रचनाएँ मौखिक परम्परा की प्रक्रिया में व्यक्तित्व को खो बैठे।[1] कीट्रिज ने बैलेड की परिभाषा बतलाते हुए 'व्यक्तित्वहीनता' उसकी प्रधान विशेषता बतलायी है।

गूमर ने बैलेड की विशेषताओं की चर्चा करते हुए लिखा है कि परम्परा, विषय-प्रधानता तथा व्यक्तित्वहीनता से युक्त इन गाथाओं में कथानक भी होता है[2] अर्थात् इनमें मौखिक परम्परा के साथ ही विषय या वस्तु वर्णन की प्रधानता होती है जिसमें लेखक के व्यक्तित्व का पता नहीं चलता।

हिन्दी, मराठी, गुजराती, पजाबी तथा राजस्थानी में जितनी गाथाएँ प्रचलित है उनके अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि उनमें उनके रचयिताओं का छाप नहीं है। गाथा में कथा की प्रधानता होती है। इस कथा-प्रवाह में लेखक का व्यक्तित्व वह जाता है।

(६) लम्बा कथानक

लोक-गाथाओं की अन्य विशेषता है उनकी कथा-वस्तु की दीर्घता। गाथाओं का आख्यान बड़ा लम्बा होता है। कोई कोई तो काव्योत्कर्ष में न सही—लम्बाई में ही महाकाव्यों की स्पर्धा करते हैं।

---

the narrator He does not take sides for or against any of the dramatist personal — — The story exists for its own sake If it were possible to conceive a tale as telling itself, without the instrumentality of a conscious speaker, the ballad would be such a tale

कीट्रिज : वही० भूमिका, पृ० १०

1 The first and the foremost quality of the ballad in any language, is not its personality, but its impersonality There can be disagreement about that But we need not atonce jump no the conclusion that the author was no-person It is conceivable that an artistic composition might acquire, in the process of oral tradition, a similar impersonality.

सिजविक : दि बैलेड, पृ० ११

2 Traditional, objective, impersonal, as they are, ballads must also tell a definite tale,

दि पापुलर बैलेड, पृ० ६६

भोजपुरी आल्हा बड़े साइज के ६२० पृष्ठों में छपकर प्रकाशित हुआ है जिसके प्रत्येक पृष्ठ में २८ पंक्तियाँ हैं। ढोला मारू की कथा भी कुछ कम बड़ी नहीं है। 'ढोला-मारूरा दूहा' नामक पुस्तक की आकृति ही इसका प्रमाण है।[1] विजयमल, लोरकी, सोरठी, गोपीचंद तथा भरथरी के गीत भी छोटे नहीं हैं। डा० ग्रियर्सन ने लगभग ८०० पंक्तियों में विजयमल की अपूर्ण कथा को प्रकाशित किया है।[2] कुँवर विजयी सैकड़ों पृष्ठों में छपकर भोजपुरी में प्रकाशित हुई है।

अंग्रेजी में छोटे-बड़े दोनों प्रकार के बैलेड पाये जाते हैं। परन्तु राबिन हुड सम्बन्धी बेलेड्स बहुत लम्बे हैं। A Gest of Robin Hood नामक गाथा सात सर्ग तथा ४५६ पद्यों में लिखी गई है। प्रत्येक पद में चार पंक्तियाँ हैं। इसी प्रकार से Robin Hood and Ten Monk की गाथा ९० पद्यों में तथा Robin Hood's Death की कथा ७० पद्यों में गायी गई है।[3]

६ टेक पदों की पुनरावृत्ति

लोक गाथाओं की सर्व प्रधान विशेषता टेक पदों की पुनरावृत्ति है। गीतों को जितनी बार दुहराया जाय उतना ही उनमें आनन्द आता है। गीत तथा संगीत के अभिन्न साहचर्य का उल्लेख पहिले किया जा चुका है। इन टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक हो जाते हैं और श्रोताओं को आनन्द प्रदान करते हैं। सिजविक के मतानुसार टेक पद गाथाओं की एक दूसरी विशेषता है जिससे पता चलता है कि ये गीत सामूहिक रूप से पहिले गाये जाते थे। गवैया जब गीत की एक कड़ी गाता है तब समुदाय के लोग मिलकर टेक पदों की आवृत्ति करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान काल में समवेत स्वर से गाने की प्रवृत्ति इसी आदत को सूचित करती है।[4]

---

१ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित

२. ज० ए० सो० बं० भाग LIII (१८८४ ई०) भाग ३, पृ० ९४

३ गूमर—ओल्ड इङ्गलिश बैलेड्स, पृ० १-९३

4 The refrain is another peculiarity of the popular ballad that establishes its derivation from the choral song "The rest shall bear this burden". The singers monotone is regularly relieved by the audience joining in with a repeated phrase.

दि बैलड, पृ० २७

गूमर ने लिखा है कि टेक पद लोक-गाथाओं का सबसे महत्त्व पूर्ण तत्त्व है।[1] फर्डिनेण्ड उल्फ के विचार से टेक पद उतना ही प्राचीन है जितना कि जनता की कविता। पूजा, भोज, नृत्य खेल तथा अन्य आदिम संस्कारों के अवसर पर समस्त जनता के द्वारा गाये जाते हुए गीतों से इनकी उत्पत्ति हुई है। श्रेष्ठ कवियों ने अपने काव्यों में इन पदों का अनुकरण किया है।[2] कीट्रिज ने भी इन्हें लोक गीतों तथा गाथाओं की प्रधान विशेषता स्वीकार की है।[3]

महत्त्व

इन टेक पदों का प्रधान उद्देश्य गीतों में जीवन प्रदान कर श्रोताओं के ऊपर प्रभाव उत्पन्न करना है। इन पदों की आवृत्ति का बड़ा महत्त्व है। लोक-गाथाएँ सामूहिक रूप (कोरस) से गाने की वस्तु हैं। प्राचीन काल में इन गीतों को दल का नेता—गायक—पहिले गाता था और बाद में साधारण जनता उसका अनुगमन करती थी। प्रारम्भ में नेता एक पद को कहता था और जनता गीत के टेक पद या पदों को दुहराती थी। इससे गवैया की नीरसता दूर हो जाती थी क्योंकि श्रोताओं के द्वारा दुहराये जाने से उस गाथा में नवीन जीवन का सञ्चार बारम्बार होता था।[4]

आज कल भी होली और चैता के गीतों को गाते समय गवैयों के दो दल हो जाते हैं। पहिला दल किसी गीत की एक पंक्ति को गाता है तो दूसरा दल उसके टेक पद की आवृत्ति करता है जैसे होली के गीत में एक दल गायेगा

"बन बोलेला मोर हरि हो
का संग होली खेलों री।" टेक

---

१. ओल्ड इंग्लिश बैलेड्स पृ० LXXXIII

२. गूमर : ओल्ड इंगलिश बैलेड्स भूमिका, पृ० LXXXIII

3, What is meant is rather that there is abundant evidence for regarding the refrain in general as a characteristic feature of ballad poetry

इ० स्का० पा० बै० भूमिका, पृ० २१

४. सिजविक : दि बैलेड, पृ० २७

तो दूसरा दल कहेगा—

आम के डाढ़ कोइलिया, बन बोलेला मोर

फिर पहिला दल कहेगा—

का संग होली खेलों री।

इस प्रकार यह गाने की प्रक्रिया गीत के अन्त तक चलती रहती है। इससे गीत की एकरसता भंग या नष्ट हो जाती है और दूसरा लाभ यह होता है कि गवैया को थोड़ा अवकाश मिल जाता है। इस आवृत्ति का तीसरा उपयोग श्रोताओं के ऊपर प्रभाव उत्पन्न करना भी है। यदि कोई गीत एक ही बार में सीधे सादे ढंग से गाया जाय तो उसका जनता के हृदय पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु उसी गीत की जब बार बार आवृत्ति होती है तो उसका प्रभाव अत्यधिक मात्रा में पड़ता है और वह स्थायी होता है। यही कारण है कि मधुर तथा सुन्दर कविता को लोग बार बार सुनना चाहते हैं। लोक गाथाओं को जितनी ही अधिक बार पढ़ा या गाया जाय उतनी ही अधिक उनकी मनोरमता बढ़ती जाती है। फुटबाल के मैच में जब दर्शक गण प्रसन्न होकर 'हुर्रे' 'हुर्रे' कहते हैं तब उनका अभिप्राय खेल में अधिक प्रभाव उत्पन्न करना ही होता है।[1] रस्साकशी और कबड्डी के खेल में 'ले लिया' 'ले लिया' और 'शाबाश' 'शाबाश' जोर से चिल्लाने वाली जनता खेल में जोश और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ही ऐसा करती है।

बर्डन, रिफ्रेन और कोरस में अन्तर

लोक-गाथाओं में टेक पदों की आवृत्ति कई प्रकार से की जाती है। अंगरेजी बैलेड्स में आवृत्यात्मक पदावली तीन प्रकार की उपलब्ध होती है जिसे बर्डन, (Burden), रिफ्रेन (Refrain) और कोरस (chorus) कहते हैं। हिन्दी भाषा में इनके लिये उपयुक्त शब्दों के अभाव में उपर्युक्त

---

1 A moments' reflection should suffice to convince any person of the real popularity of repetition as a means of securing effectiveness. The local wit in the village taproom, finds that the oftener he says it, the more it is appreciated. The spectator of the football match who said 'hooray' "hooray" was using incremental repetion for the sake of effect.

सिजविक : दि बैलेड, पृ० ६०

पदों का ही प्रयोग वर्तमान लेखक ने किया है। बर्डन और रिफ्रेन में बहुत थोड़ा अन्तर है। कोरस इन दोनों से भिन्न है। गाथाओं में 'बर्डन' इस मूलभूत अश या चरण को कहते हैं जो गाथा की प्रत्येक पक्ति के बाद गाया जाता है। यह गाथा के केवल अन्त में ही नहीं गाया जाता।[1] इस प्रकार बर्डन समस्त गीत में ओतप्रोत रहता है। डा० मरे आक्सफोर्ड से प्रकाशित न्यू इङ्गलिश डिक्शनरी में बर्डन का अर्थ बतलाते हुए इसे किसी गीत का टेक पद या समवेत स्वर से गेय पद (कोरस) कहा है। यह वह शब्द समूह या पदावली है जो प्रत्येक पद्य (verse) के बाद गाया जाता है।[2] गेस्ट के मतानुसार गीत की प्रत्येक पक्ति के पश्चात् एक ही प्रकार के शब्दों का बार-बार आना या दुहराया जाना 'बर्डन' कहा गया है।[3]

लोक गाथाओं में कुछ पदों की आवृत्ति 'बर्डन' की भाँति प्रत्येक पक्ति के पश्चात् नहीं होती बल्कि थोड़े-थोडे समय के पश्चात् निश्चित रूप से कुछ पद्यों के बाद होती है। इसे 'रिफ्रेन' कहते हैं। गूमर ने इसकी परिभाषा बतलाते हुए लिखा है कि निश्चित पदावली की निश्चित समय या स्थान के पश्चात् पुनरावृत्ति को 'रिफ्रेन' कहते हैं। इससे प्रत्येक पद्य को अलग-अलग समझने में सहायता मिलती है।[4] गाथाओं में 'रिफ्रेन' नि:सन्देह बारबार आनेवाला वह पद्य (verse) है जिसे जन-समुदाय बडे

---

1 Burden it sometimes used in its stricter sense, as defined by Chaphel, "The bruden of a song, in the old acceptation of the word, was the foot base or under-song It was Sing through out, and not merely at the end of the verse

गूमर : ओ० इ० बै० भूमिका, पृ० L X X X IV
पाद टिप्पणी, नं० ५

2 "The refrain or chorus of a song, a set of word recurring at the end of each verse" न्यू० इ० डि०

3 Guest defines burden as the return of the same words at the close of each stave" English Rhythms II 290.

4 "The refrain is the repetition of a certain passage at regular intervals, and is thus of service in marking of a stanza"

गूमर : ओ० इ० बै० भूमिका, पृ० L X X X V
पाद-टिप्पणी

प्रेम से गाता है। मूल गीत को गाने का कार्य तो समुदाय का नेता या गायक करता है। परन्तु साधारण जनता इन्हीं आवृत्तिमूलक पद्यों को गाती है। 'बर्डन' और 'रिफ्रेन' के सम्बन्ध को निश्चित रूप मे बतलाना साधारण कार्य नहीं है। बहुत सम्भव है कि 'रिफ्रेन' भी 'बर्डन' की ही भाँति रहे हों और वे जनता द्वारा गीत के साथ लगातार गाये जाते रहे हों। रिफ्रेन में एक ही पद या पदावली की बार-बार आवृत्ति होती है। इसको गूमर ने 'वृद्धि-परक आवृत्ति' (Incremental Repetition) का नाम दिया है। रिफ्रेन की उत्पत्ति के विषय में गूमर का विचार है कि नृत्य, खेल और काम करते समय जनसाधारण के गान से इनका प्रादुर्भाव हुआ है। यह सभी प्रकार की कविता—चाहे वह अलंकृत काव्य हो अथवा जनकाव्य—का आवश्यक मूलभूत तत्त्व है। लोक-साहित्य की मौखिक परम्परा में इसकी स्थिति आवश्यक है[१] कोरस उस पूर्ण पद्य (Whole stanza) को कहते हैं जो लोक-गाथा के प्रत्येक नये पद्य के बाद गाया जाता है।[२]

इन तीनों में उदाहरण

'बर्डन' वह टेक पद है जो किसी गीत की प्रत्येक पंक्ति के बाद में आता है। अवधी में ऐसी अनेक लोक गाथाएँ पायी जाती हैं जिनमें यह विशेषता उपलब्ध होती है। नीचे का यह गीत—

' बिरना झीनी झीनी पतिया अमिलि भइ
बिरना डोभई परियवा क पूत।
बलैया लेउँ बीरन '

बहुत लम्बा है। इसकी प्रत्येक पंक्ति के बाद 'बलैया लेउँ बीरन'

1, The refrain is in contestably sprung from singing of the people at dance, play, work going back to that choral repetition which seems to have been the protoplasm of all poetry Refrains, of course, hold fast in oral tradition

2. The chorus was a whole stanza sung after each new stanza of the ballad

श्रो० इ०बै० पृ० L X X X V भूमिका, पाद-टिप्पणी

३ त्रिपाठी ग्रामगीत

४ उपाध्याय ' भो० लो० गी०, भाग २, पृ० ८१

की आवृत्ति हुई है। भोजपुरी के एक झूमर मे पूरी पंक्ति की आवृत्ति प्रत्येक वार हुई है; जैसे—

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमके,
धनि बारी उमिरिया नइहर तरसे ॥१॥ मोरी०
सोने के थारी में जेवना परोसलों,
मोर जेवनवाला विदेस तरसे ॥२॥ मोरी०
झझरे गेडुववा गंगाजल पानी,
मोर घूंटनवाला विदेस तरसे ॥३॥ मोरी०
लॅवग इलायची के बीड़ा लगवली
मोर कूंचनवाला विदेस तरसे ॥४॥ मोरी०
कलिया चुनि चुनि सेजिया डसवली
मोर सूतनवाला विदेस तरसे ॥५॥ मोरी०

कहीं-कहीं ये टेक पद गीत की प्रत्येक पक्ति के साथ ही जुड़े रहते है। ये गीत के अगभूत हो जाते हैं। जैसे अवधी के इस गीत की—

"कथिनि सिकिश्रा क मोरी सींक सिकोलिश्रा हो ना।
सिकिश्रा मउनिया केन मउरा हो ना।
खाऊँ न बहुअरि तोर भइया भतीजवा हो ना।
काहे क गरिआइउ सासु भइया भतीजवा हो ना।"

प्रत्येक पक्ति में 'होना' की आवृत्ति हुई है। भोजपुरी चैता की प्रत्येक पक्ति के प्रारम्भ में 'रामा' या 'आहो रामा' और अन्त में 'हो रामा' बार-बार गाया जाता है, जैसे—

"रामा ननदी भउजिया दुनो पनिहारिन हो रामा
मिलि जुलि सागर पानी भरे चलली हो रामा ॥१॥
रामा भरि घरि पनिया धरिलवो ना डूबे हो रामा
कवन रसिकवा घरिला जुठअवले हो रामा ॥२॥

निर्गुन के गीतों में 'किया हो मोरे रामा' की आवृत्ति प्रत्येक पंक्ति में पायी जाती है।

मैथिली लोक कवि भी 'चैतावर' के गीतों में 'रामा' को नहीं भूलता।

---

१ उपाध्याय अवधी लोक गीत (अप्रकाशित)

२ वही, पृ० ४२५

कोई तिरहुतिया विरहणी कहती है कि जब चैत बीत जायेगा तब प्रियतम आकर क्या करेगा ?

"चैत बीति जयतइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ ?
डारे पाते भेल मतवलवा हो रामा
चैत बीति जयतइ हो रामा ॥"

अंग्रेजी साहित्य से उदाहरण

कुछ गाथाओं मे निश्चित समय पर एक ही पदावली को बार-बार गाया जाता है। अंग्रेजी में निर्दयी भाई (Cruel Brother) नामक बैलेड में 'वृद्धिपरक आवृत्ति' Inrcemental Repetition) उपलब्ध होती है। किसी निर्दयी भाई ने अपने बहन को किसी कारण छूरा मार दिया। मरते समय बहन विभिन्न व्यक्तियों का भिन्न-भिन्न वस्तु वसीयत के रूप में देती या छोड़ जाती है। गाथा की कुछ आवश्यक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं[२] :—

"O what will you leave to your father dear !
'The silver shod steed that brought me here.
" What will you leave to your mother dear?
My velvet pall and my silken gear.
"What will you leave to your sister Anne !
My silken scarf and my golden fan.
"What will you leave to your sister Grace !
My bloodly cloths to wash and dress.
" What will you leave to your brother John !
The gallows-tree to hang him on.
"What will you leave to your brother John's wife !
The wilderness to end her life"

इस बैलेड में प्रथम पंक्ति थोड़े परिवर्तन के साथ बार-बार दुहरायी गई है। एक दूसरे बैलेड—The Maid Freed from the Gallows—में प्रत्येक पद्य (stanza) में कभी पहली और कभी प्रथम दो पंक्तियों की आवृत्ति हुई है। कोई स्त्री किसी कारण से फांसी के तख्ते से लटकायी जाने वाली है। वह अपने पिता, भाई-बहन, सब से शासन के अधिकारियों

---

१ राकेश : मै० लो० गी० पृ० २८४

२ सिजविक : दि बैलेड, पृ० ३०

को धन दे कर मुक्ति की प्रार्थना करती है परन्तु सब अस्वीकार कर देते हैं। अन्त में उसका प्रियतम उसे मुक्त करता है। इस पर दुःखी तथा क्रुद्ध हो कर वह अपने सम्बन्धियों से घर लौट जाने को कहती है।[1]

"O the briary bush, the bush
That pricked my heart so sore !
But now I am out of this briary bush,
Oh ! I shall go in no more.
"Gae hame, gae hame, my father" she says
Gae hame and saw your seed,
And I wish not a pickle of it may grow
But the thistle and the weed.
"Gae hame, gae hame, gae hame, mother!
Gae hame and brew yer yill;
And I wish the girds may loup off,
And the Deil it a' may spill.
"Gae hame, gae hame, gae hame brother
Gae hame and kiss your wife;
And I wish that the first news I may hear
Is that she has tane your life.
"Gae hame, gae hame, my sister" she says
Gae hame and sew yer seam
I wish that the needle point may break
And the craws pyke out yer eer"

इस बैलेड के प्रत्येक पद्य (stanza) में प्रथम पक्ति बार-बार आती है।

गुजराती उदाहरण

झवेरचन्द मेघाणी ने 'वृद्धिपरक आवृत्ति' के विषय में लिखा है कि इसके द्वारा एक कड़ी में थोड़ा हेर-फेर करके वार्ता आगे बढ़ती है। उदाहरण रूप में इस गीत को उन्होंने उद्धृत किया है।[2]

---

१ रावर्ट ग्रेम्स : दि इङ्गलिश बैलेड, पृ० ४०

२ मेघाणी लोक साहित्य भाग १, पृ० ६७

"आदो आव्यो रे सोनल दादा नो देश जो
सोनले जाएयुं जे दादो छोड़ावशे।
× × ×
आदो आव्यो रे सोनल दादानो देश जो
सोनले जाएयुं जे काको छोड़ावशे
(रढ़ियाली रात भाग 1)

टेक पद (बर्डन) के विषय में उनका मत है कि यह बार-बार समुदाय के बीच गाने जाने वाली वह पद या पदावली है जो प्रत्येक पंक्ति में आती है।[1]

"आवशे रे काई चोमासा ना दा डा
रे मेहुला तमने भीजवे रे लोल।
साथे लेशुं मीणी धाने कांई मापा
रे मेहुला अपने शुं करे रे लोल।
आवशे रे काई शियालाना दा डा
रे टाढलियुं तमने लागशे रे लोल
आवशे रे कांई उनालाना दाडा
रे उनालो तमने बालशे रे लोल।
रढ़ियाली रात भाग 3, पृ० 24

इस गीत में 'आवशे रे काई' और 'रे लोल' की आवृत्ति बार-बार हुई है।

भोजपुरी के झूमर के गीतों मे निश्चित समय तथा स्थान पर पद या पदों की आवृत्ति पायी जाती है, नीचे लिखे गीत में प्रत्येक दो पंक्तियों के पश्चात् टेक पदों की आवृत्ति हुई है।[2]

आजु के गइल भँवरा कहिया ले लवटब...कतेक दिनवाँ
हम जोहबि तोहरी बटिया, कतेक दिनवाँ ॥टेक॥
गनत गनत मोर अँगुरी भइल खियानी चितवते दिनवा
नैना से ढरे लोरवा, चितवते दिनवा ॥1॥
आजु के गइल भवरा कहियाले लवटब कतेक दिनवा।

---

1 मेघाणी : लोक-साहित्य भाग 1, पृ० 60
2 उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग 2 पृ० 88

हम जोहबि तोहरी बटिया, कतेक दिनवाँ ॥ टेक
एक बने गइलीं दूसरे बन गइलीं तीसरे बनवा ।
मिलल गोरू चरवहवा तीसरे बनवाँ ॥२॥
आज के गइल भवरों कहिया ले लवटब कतेक दिनवां
हम जोहबि तोहरी बटिया, कतेक दिनवाँ ॥ टेक
गोरू चरवहवा तुहीं मोर भइया कतहूँ देखलऽऽना ।
मोर भँवर परदेसिया कतहूँ देखल ना ॥३॥
आजु के गइल भवँरा कहिया ले लवटब, कतेक दिनवा ।
हम जोहबि तोहरी बटिया कतेक दिनवाँ ॥टेक॥

मैथिली 'जट-जटिन' के गीतों में पाँच-पाँच पक्तियों के पश्चात् थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ एक ही पदावली बार-बार दोहरायी गई है ।[1]

राजस्थानी 'कूवो' नामक गीतों में प्रत्येक तीन पक्तियों के पश्चात् 'म्हा रो मानो कह्यो' और 'मेहड़ो हुवण है' की आवृत्ति नियमित रूप से हुई है जिससे गीत बड़ा सरस तथा प्रभाव उत्पन्न करने बन गया हैं ।[2]

कोरस

कोरस में प्रत्येक नये पद्य (Stanza) के बाद एक पूरे पद्य की आवृत्ति होती है । अंग्रेजी में सामूहिक गान सम्बन्धी बैलेड्स बहुत पाये जाते हैं । दो जादूगर (The Two magicians) इसका अच्छा उदाहरण है[3] :—

" Then she became a turtle dow,
To fly up in the air
And she became another dow,
And they flew pair and pair.
O bide, lady, bide,
And aye he bade her bide,
The rusty smith your lemon shall be,
For a' your muckle pride.

---

१ राकेश : मै० लो० गी०, पृ० ३२५
२ पारीक : रा०लो० गी० भाग १ उत्तरार्ध, पृ० ५०२-५
३ कीट्रीज : इ० स्का० पा० बै०, पृ० ७८

She turned herself into a hare,
To run upon a hill,
And he became a good grey hound,
And boldly he did feel.
O bide, lady, bide,
And aye he bade her bide
The rusty smith your lemoan shall be
For a' your muckle pride,

इसी प्रकार प्रत्येक पद्य के बाद O bide, lady, bide से प्रारम्भ होने वाली चार पंक्तियों (पूरे पद्य) को बार बार गाया जाता है।

राजस्थानी में ब्रालूँ (लड़की की पीहर से बिदाई) के गीतों में यह लक्षण पाया जाता है। लड़की विदा होते समय अपनी भावज से कहती है कि भाभी! यह अपना घर लो। अब मैं प्रियतम के देश को जा रही हूँ।[1]

आला गीला बावल बोस कटाया
तोरण थँभ रोपाया।
श्रो ल्यो भावज घर श्रापणो
मैं तो जावूँ पियाजी रे देस ॥१॥
पग पग बवाल कूँराँ खुदायो
दीनी होवद दात।
श्रो ल्यो भावज घर श्रापणूँ
मैं तो जावूँ पियाजी रे देस ॥२॥
म्हारी जान जिमायी मेरे बावल
जिद्वो रा भात रँधाय।
श्रो ल्यो भावज घर श्रापणूं
मैं तो जावूँ पियाजी रे देस ॥३॥

टेक पदों का वर्गीकरण

टेक पदों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है (१) सार्थक और (२) निरर्थक। सार्थक टेप पद वे है जिनका कुछ अर्थ होता है। जैसे 'मोरी धानी चुनरिया इतर गमके' या 'श्रुति बताये जोग पवन विधि रहयों राम'।

[1] पारीक रा० लो० गी० भाग १, (पूर्वार्द्ध) पृ० ११६

निरर्थक पद वे हैं जिनका कुछ शाब्दिक अर्थ नहीं होता, परन्तु गवैये गाने की सुविधा के लिए उनका प्रयोग करते हैं। इन निरर्थक टेकपदों के सम्बन्ध में मदरवेल (Motherwell) नामक विद्वान् का मत है कि यद्यपि हमारे लिए इनका कुछ अभिप्राय नहीं है, परन्तु प्राचीन लोगों के लिए ये बड़े ही महत्वपूर्ण थे।[1]

भोजपुरी चैता में 'हो रामा', 'आहो रामा', 'हे राम', विरहा में 'बाजर बोंई' और निर्गुन में 'किया हो मोरे रामा' ऐसे ही पद हैं जिनका कोई अभिप्राय नहीं है। अंग्रेजी में विस्मयादि बोधक अव्यय O और Oh या A का प्रयोग बहुधा पाया जाता है।[2]

The king he sits in Dumferling
Drinking the blue red wine : O
O where will I get a good sailor
That' I sail the ship O mine ? O

'सर पेट्रिक स्पेन्स' नामक उपर्युक्त बैलेडे के 'जी' पाठ ('G' version) में O और A दोनों का व्यवहार हुआ है। अर्ल ब्रैण्ड नामक बैलेड में सार्थक तथा निरर्थक दोनों प्रकार के टेक पदों की आवृत्ति हुई है। परन्तु निम्नांकित टेक पदों का कुछ भी अर्थ नहीं है।

Ay lilly o lilly lally
All i the night sae early.

अथवा

Gennifer gentle and rose maree
As the dew flies over the mulberry tree.

हिन्दी में पालने के गीतों में बहुत सी ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है जो इसी कोटि में आती है। उनका अभिप्राय गीत में केवल सुस्वरता उत्पन्न करना है अन्यथा उनका कुछ भी महत्त्व नहीं है।[3]

---

1 Of most of these refrains, Motherwell remarks that they have meanings lost to our ears, but significant enough to men of older times

२ कीट्रीज इ० स्का० पा० बै० पृ० १०४

३ इसके विशेष वर्णन के लिए देखिए
गूमर ओ० इ० बै० भूमिका, पृ० LXXXIII—XCIV

लोक-गाथाओं की उत्पत्ति

विभिन्न मत

लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मत-भेद है। विभिन्न यूरोपीय विद्वान् इस सम्बन्ध में अपना विभिन्न मत रखते हैं। कोई कहता है कि इनकी उत्पत्ति एक समुदाय के द्वारा साथ-साथ गाये जाने से हुई है, कोई इन्हें व्यक्ति-विशेष की रचना मानता है। दूसरे लोगों का मत यह है कि चूँकि ये गीत प्राचीन काल मे चारणों के द्वारा गाये जाते थे। अतः इनकी रचना करने वाले यही लोग हैं। लोक-साहित्य के कुछ मर्मज्ञ जाति-विशेष को ही इसका कर्त्ता स्वीकार करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि इस विषय में विद्वानो में मतैक्य नहीं है।

• लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध जो प्रधान सिद्धान्त इस समय प्रचलित हैं वे निम्नांकित हैं :—

१—ग्रिम का सिद्धान्त : समुदायवाद
२—श्लेगल का सिद्धान्त : व्यक्तिवाद
३—स्टेन्थल का सिद्धान्त : जातिवाद
४—बिशाप पर्सी का सिद्धान्त : चारणवाद
५—चाइल्ड का सिद्धान्त : व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद •

इन सभी सिद्धान्तों की विवेचना इनके गुण तथा दोषों के वर्णन के साथ अगले पृष्ठों मे प्रस्तुत की जायेगी।

(१) ग्रिम का सिद्धान्त—समुदायवाद

जर्मनी के जेकब ग्रिम का नाम बहुत प्रसिद्ध है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र मे इनके द्वारा प्रतिपादित 'ग्रिम-नियम' (Grimm's Law) महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इन्होंने जर्मन लोक-कहानियों का भी संग्रह किया है जो 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' के नाम प्रकाशित हुई हैं। लोक गाथाओं के सम्बन्ध में इनका अनुसन्धान अत्यन्त मौलिक है। इन गाथाओं की उत्पत्ति के विषय में इनका एक विशिष्ट सिद्धान्त है जिसे 'समुदायवाद' के नाम से अभिहित किया जा सकता है। ग्रिम का यह मत है कि लोक-काव्य का निर्माण आप से आप होता है। इनके निर्माण के पीछे किसी विशिष्ट व्यक्ति का

रचयिता का हाथ नहीं होता, समस्त जनता के द्वारा इनकी उत्पत्ति होती है।[1] इनका निष्पादन स्वतः सभूत है।[2] ग्रिम का कहना है कि किसी लोक-काव्य की रचना के विषय में सोचना असङ्गत है क्योंकि इनका निर्माण स्वतः होता है। ये किसी कवि के द्वारा नहीं लिखे जाते।[3]

ग्रिम ने इस सिद्धान्त को बड़ा महत्त्व प्रदान किया है कि लोक-गाथाओं की उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष की काव्य-प्रतिभा से नहीं हुई है, बल्कि इसके निर्माण का श्रेय एक समुदाय (Community) को है। जैसे किसी व्यक्ति विशेष के हृदय में हर्ष-विषाद, सुख-दुःख आदि की भावना जाग्रत होती है उसी प्रकार किसी विशेष समुदाय के लोग भी विशेष अवसरों पर इन्हीं भावनाओं का अनुभव करते हैं। किसी उत्सव के समय, किसी मेला के अवसर पर अथवा किसी धार्मिक पर्व पर लोगों का समुदाय एकत्र होता है। हर्ष और प्रसन्नता के जोश में इन्हीं समुदाय के लोगों ने एक साथ मिलकर इन गाथाओं की रचना की होगी। ग्रिम के सिद्धान्त का सक्षेप में आशय यह है कि मान लीजिए कि किसी सामाजिक अवसर पर कुछ व्यक्ति एकत्र हैं। सभी आनन्द मग्न हैं। उनमें से किसी एक ने गीत की कोई कड़ी बनाकर गाया। दूसरे ने उसमें दूसरी कड़ी जोड़ दी और तीसरे व्यक्ति ने तीसरी कड़ी का निर्माण किया। इस प्रकार कुछ देर के पश्चात् सामूहिक रूप से एक गीत तैयार हो गया। यद्यपि इस गाथा के निर्माण में सभी व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त है, परन्तु इसे किसी व्यक्ति विशेष की रचना नहीं कह सकते। यह समुदाय की कृति मानी जायेगी न कि किसी विशेष कवि या गवैया की।

आजकल भी हम देखते हैं कि कजली गाने वाले लोग दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। प्रत्येक दल में आठ-दस आदमी होते हैं। पहिले एक

---

1 "He maintained the poetry of the people "sings itself", has no individual poet behind it and is the product of the whole folk"

गूमर : ओ० इ० बै० भूमिका, पृ० ४६-५०

2 Spontaneous generation of the ballad

3, "It is inconsistent" he says "to think of composing an epoc, for every epoc must compose itself, must make itself, and can be written by no poet"

गूमर : वही भूमिका, पृ० ५०

दल का एक व्यक्ति कजली की किसी कड़ी को तत्काल बनाकर सुनाता है। फिर दूसरे दल का व्यक्ति उसके उत्तर में एक नयी कड़ी बनाकर तुरन्त तैयार कर गाता है। फिर प्रथम दल का व्यक्ति तीसरी कड़ी बनाता है। पुनः दूसरे दल का कोई गवैया चौथी कड़ी जोड़ देता है। इस प्रकार यह सामूहिक गान का क्रम घंटों—और कभी-कभी रात रात भर—चलता रहता है। इस प्रकार कजली के अनेक गीत बनकर तैयार हो जाते हैं। परन्तु अमुक कजली को अमुक व्यक्ति ने बनाया यह कहना असङ्गत होगा, क्योंकि इसका निर्माण समस्त समुदाय के सहयोग से हुआ है।[1]

ग्रिम के मतानुसार जिस प्रकार इतिहास का निर्माण नहीं किया जा सकता उसी प्रकार महाकाव्य का भी निर्माण नहीं हो सकता। सर्व-साधारण जनता ही प्राचीन घटनाओं पर काव्य की धारा प्रवाहित करती है और इस प्रकार काव्य की निष्पत्ति होती है। ग्रिम ने बार-बार अपने इसी मत का प्रतिपादन अनेक स्थानों पर किया है।[2] एक दूसरे स्थान पर वह लिखता है कि महाकाव्य किसी विशिष्ट व्यक्ति या प्रसिद्ध कवि के द्वारा नहीं बनाया जाता बल्कि इसका प्रादुर्भाव स्वतः होता है और जनता में इसका प्रचार आप से आप होता जाता है।[3] ग्रिम के मत का सिद्धान्त

---

१. नैनीताल तथा अलमोड़े जिले में नन्दाष्टमी के अवसर पर नन्दा देवी के मन्दिर के पास जो मेला जुटता है, उसमें पहाड़ी गीतों के गवैये दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। पहिला गीत बनाकर प्रश्न पूछता है और दूसरे दल का व्यक्ति गीत में ही इसका उत्तर देता है। यह क्रम सारा दिन चलता रहता है। यह सामुदायिक लोकगाथा निर्माण का उदाहरण है। कजली के गीतों के दंगल सावन के महीने में काशी और मिर्जापुर में देखे जा सकते है, जहाँ श्रोताओं की बड़ी भीड़ जमा होती है। वहाँ भी कजली का निर्माण इसी सामुदायिक पद्धति से होता है।

2 "Epic poetry" he declares " can no more be made than history can be made. It is the folk which pours its own flood of poetry over faroff events and so bring about the epos"

गूमर वही भूमिका, पृ० २१

3 "Epic poetry" he says "is not produced by particular and recognized poets but rather springs up and spreads a long time among the people themselves, in the mouth of the people

गूमर वही भूमिका पृ० २१

गाथाओं की रचना में समुदाय (Community) का भी योग होता है। अनेक गीत ऐसे पाये जाते हैं जिनका प्रचार किसी जाति विशेष के लोगों में विशेष रूप से उपलब्ध होता है, जैसे अहीर जाति के लोग विरहा गाते हैं और दुःसाध (एक अस्पृश्य जाति) लोग पचरा। अहीरों की बारात में विरहा गाने की प्रथा है। इस अवसर पर अच्छे-अच्छे गवैये जुटते हैं। दो दलों के बीच विरहा गाने की प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जाती है। एक दल का व्यक्ति तत्काल विरहा बनाकर गाता और प्रश्न करता है। दूसरे दल वाले इसी प्रकार से विरहा की तत्काल रचना कर उत्तर देते हैं। इस प्रकार जिन विरहों की रचना होती है उनका रचयिता अहीरों का समुदाय होता है न कि कोई व्यक्ति विशेष। झूमर के गीतों को स्त्रियों का समुदाय बनाता जाता है और साथ ही उसे गाता जाता है। 'गोंड़ऊ' गीतों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

आदिम जातियों (Primtive Races) में यह प्रथा थी कि उस जाति के सभी व्यक्ति एक स्थान पर एकत्र होकर अपना मनोरंजन किया करते थे। कोई गीत की एक कड़ी बनाता था तो कोई दूसरी कड़ी। तीसरा व्यक्ति तीसरी कड़ी जोड़ता था और इस प्रकार एक पूरा गीत तैयार हो जाता था। इस विधि से निर्मित गीतों में किसी विशेष कवि या गायक का हाथ न होकर पूरी जाति का सहयोग होता था। ये गीत समस्त जाति की सम्पत्ति होते थे।

चारणों द्वारा भी अनेक गीतों या गाथाओं की रचना हुई है। जगनिक और चन्दबरदायी की कृतियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। राजस्थान में तो चारणों के द्वारा गीत या काव्य रचने की परम्परा ही चल पड़ी थी। अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में गीतों की रचना करना इन चारणों का प्रधान कार्य था। इङ्गलैण्ड में भी राजा, अमीर, उमरा के दरबार में चारणों की भीड़ लगी रहती थी जो अपनी पेट-पूजा के लिए ही अपने स्वामी का गुणगान करते थे।

अधिकांश लोक-गाथाओं के रचयिता अज्ञातनामा हैं। अतः उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व का अभाव स्वाभाविक ही है।

अतः लोक गीतों तथा गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूर्वोक्त सभी (पाँचों) सिद्धान्तों का समन्वय अपेक्षित है। सभी पाँचों सिद्धान्त मिल कर इन गाथाओं की उत्पत्ति के कारण हैं न कि पृथक् पृथक्। अतः लोक-गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उपाध्याय का सिद्धान्त : समन्वय वाद—ही अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

लोक-गाथाओं के प्रकार

लोक-गाथाओं के अनेक भेद पाये जाते हैं। इनका वर्गीकरण दो दृष्टियों से किया जा सकता है। (१) आकार की दृष्टि से (२) विषय की दृष्टि से। आकार की दृष्टि से विचार करने से गाथाएँ दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं (१) लघु और (२) वृहत्। लघु गाथाएँ वे हैं जिनका आकार छोटा है, जैसे भगवती देवी और कुसुमा देवी की गाथाएँ। वृहत् गाथाएँ प्रबन्धात्मक काव्य के समान हैं जिनको लिपिबद्ध करने में सैकड़ों पृष्ठ काले किये जा सकते हैं। हीर राँझा, ढोला मारू राजा-रसालू और आल्हा-ऊदल की गाथा बड़ी विस्तृत है जिनकी तुलना किसी भी प्रबन्ध काव्य से की जा सकती है।

१. उपाध्याय का वर्गीकरण

परन्तु लोक-गाथाओं का वास्तविक वर्गीकरण विषय की दृष्टि से ही किया जा सकता है। इन गाथाओं में जिन विषयों का वर्णन किया गया है उन्हीं के आधार पर इनका विभाजन समुचित है। इस दृष्टि से लोक गाथाओं का विभाजन उपाध्याय के मत के अनुसार प्रधानतया तीन भागों में किया जा सकता है:—

(१) प्रेम-कथात्मक गाथा—(Love ballads)
(२) वीर-कथात्मक गाथा—(Heroic ballads)
(३) रोमांच-कथात्मक गाथा—(Supernatural ballads)

प्रेम मानव जीवन का प्राण है। अतः इन गाथाओं में प्रेम का वर्णन होना अथवा प्रेम सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख होना स्वाभाविक है। यह प्रेम साधारण परिस्थिति में उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत विषम वातावरण में पैदा होता है तथा उसी में पलता है। फल-स्वरूप इसमें संघर्ष भी उत्पन्न होता है। भोजपुरी की कुसुमा देवी, भगवती देवी और लचिया की गाथाएँ ऐसी ही हैं जिनमें प्रेम एक ही ओर पलता है और उसका परिणाम बड़ा विषम होता है। बिहुला की कथा प्रेम का प्रबन्ध काव्य है। इस गाथा में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि बिहुला के अप्रतिम रूप को जो भी देखता था वह उसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर मूर्छित हो जाता था। उसके अलौकिक लावण्य पर मोहित

होकर अनेक युवकों ने उसके पाणि-ग्रहण के लिए हाथ फैलाया परन्तु वे सफलीभूत नहीं हो सके। अन्त में एक चतुर मनुष्य—जिसका नाम बाला लखन्दर था—ने विहुला के प्रेम को जीतने में सफलता प्राप्त की। 'शोभा नयकवा बनजारा' भी एक दूसरा प्रणय-आख्यान है जिसमें पति-पत्नी का प्रेम, सयोग एव वियोग का वर्णन बड़ी ही रोचक तथा मर्मस्पर्शी भाषा में किया गया है। 'भरथरी चरित' में राजा भरथरी का अपने गुरु के उपदेश से घर छोड़कर जगल में चले जाने का वर्णन है। उनके विरह में उनकी वियोग-विधुरा पत्नी का जो चित्र खींचा गया है वह बड़ा ही हृदय-स्पर्शी है (राजस्थान में प्रचलित ढोला-मारू की गाथा प्रेम का वह अनस्र स्रोत है जिसमें अवगाहन कर पाठकों को अत्यन्त आनन्द आता है। मार-वणी का प्रेम अनन्य एव अलौकिक है। पजाब में प्रसिद्ध हीर-राँझा की प्रेम-गाथा किस सरस व्यक्ति के हृदय को रस-मग्न नहीं कर देती ? . की गुजराती गाथा शुद्ध प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण है जिसमें प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही प्रेम की धधकती आग में अपने प्राणों की आहुति कर देते हैं। कहने का आशय यह है कि अधिकाश गाथाओं का वर्ण्य विषय प्रेम हैं जिसका चित्रण बड़ी सुन्दर रीति से किया है।[1])

अंग्रेजी साहित्य में भी प्रेम-गाथाओं की प्रचुरता पायी जाती है जिससे वहाँ की सामाजिक परिस्थिति का पता चलता हैं। निर्दयी भाई (क्रूयल ब्रदर) नामक एक ऐसी ही गाथा है जिसमें कोई बहन अपने प्रेमी से, भाई की बिना आज्ञा के, विवाह कर लेती है। फल स्वरूप उसका भाई उसे जान से मार डालता है।

दूसरी प्रकार की गाथाएँ वीर-कथात्मक हैं जिनमें किसी वीर के साहस-पूर्ण और शौर्य-सम्पन्न कार्य का वर्णन होता है। इन कथानकों में यह वीर पुरुष आपदग्रस्त किसी अबला का उद्धार करता हुआ दिखायी पड़ता है अथवा वीरता से अपने शत्रुओं का सामना कर, न्याय पक्ष की विजय के लिए लड़ाई में जूझता हुआ हमारे सामने उपस्थित होता है। अलौकिक वीरता का वर्णन करना ही इन गाथाओं का चरम लक्ष्य है। कहीं पर किसी युवती का पाणिग्रहण करने के लिए भीषण सग्राम का वर्णन उपलब्ध होता है तो कहीं मातृभूमि के उद्धार के लिए शत्रुओं से लड़ने का विवरण पाया जाता है। वीर गाथाओं में 'आल्हा' का स्थान

---

१ परशुराम चतुर्वेदी . भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

सर्वश्रेष्ठ है। इन दोनों वीर भाइयों—आल्हा और ऊदल—ने किस प्रकार अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए महाप्रतापी पृथ्वीराज से भीषण युद्ध किया, यह बात इतिहास के पाठकों से छिपी नहीं है। 'लोरिकायन' नामक गाथा में लोरकी की जीवन-कथा, उसका विवाह और वीरता का मनोरम चित्रण उपस्थित किया गया है। कुँवर विजयी—जिसको विजयमल भी कहते हैं—की गाथा भोजपुरी प्रदेश में प्रसिद्ध है। यह अपने समय का वीर-बाकुड़ा था जिसके सामने शत्रुगण रण-क्षेत्र में कभी टिक नहीं पाते थे। इसके साहस-पूर्ण कार्यों की गाथा भोजपुरी प्रदेश में बड़े चाव से गायी और सुनी जाती है।

तीसरे प्रकार की गाथाएँ वे हैं जिनमें रोमाञ्च या रोमान्स पाया जाता है। इसके अन्तर्गत सोरठी की सुप्रसिद्ध गाथा आती है। सोरठी एक साधारण घर की लड़की थी जो विवाह के पहिले पैदा हो जाने के कारण लोक-लाज के हेतु माता-पिता द्वारा परित्यक्त कर दी गई। उसकी माता ने उसे पालने में सुलाकर नदी में प्रवाहित कर दिया। परन्तु "जाको राखै साइयाँ मारि न सकिहैं कोय।" सोरठी पालने पर पड़ी हुई नदी में बहती हुई चली जा रही थी। एक मल्लाह ने उसे वेगवती नदी में बहती हुई देखा। नदी की धार में से निकाल कर, उसे घर लाकर पालने-पोसने लगा। धीरे-धीरे सोरठी बड़ी हुई और उसका विवाह हो गया। सोरठी की कथा इतनी अलौकिक और रोचक है कि पढ़ते समय यही मालूम पड़ता है कि 'रोमान्स' पढ़ रहे हैं। अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार की अनेक गाथाएँ हैं जिनमें रोमान्स का अत्यधिक पुट है।)

२—प्रो० कीट्रीज का वर्गीकरण

प्रोफेसर कीट्रीज ने गाथाओं को दो भागों में विभक्त किया है :—

(१) चारण गाथाएँ (Minstrel ballads)

(२) परम्परागत गाथाएँ (Traditional ballads)

मध्यकालीन यूरोप में चारण लोग राजदरबारों में जाकर गाथाओं को गाया करते थे और इस प्रकार अपनी जीविका चलाते थे। इन चारणों के द्वारा बनाये तथा गाये जाने के कारण ही इनका नाम 'चारण-गाथाएँ' पड़ गया है। बिशप पर्सी ने अपने ग्रन्थ में चारणों के द्वारा लोक-गाथाओं की उत्पत्ति की विवेचना बड़े विस्तार के साथ की है।[1] परम्परागत गाथाओं

१—रेलिक्स ऑफ एन्शेन्ट इंग्लिश पोइट्री—भूमिका

से प्रोफेसर कीट्रीज का अभिप्राय उन गाथाओं से हैं जो चिर काल से चली आती है, जिनका प्रचार और प्रभाव आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है। १७वीं शताब्दी में प्रकाशित हुई गाथाओं की बड़ी माँग थी। अनेक व्यवसायी लोग इन गाथाओं को एकत्र कर तत्कालीन एक पृष्ठ के पत्रों में प्रकाशित करवाते थे।[१] ये ही गाथाएँ कालान्तर में परम्परागत गाथाओं के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

३ प्रो० गूमर का वर्गीकरण

फ्रान्सिस गूमर ने लोक-गाथाओं का वर्गीकरण निम्नांकित प्रधान छह श्रेणियों में किया है[२] :—

(१) प्राचीनतम गाथाएँ (Oldest ballads)

(२) कौटुम्बिक गाथाएँ (Ballads of Kinship)

(३) अलौकिक गाथाएँ (Coronach and ballads of the Supernatural)

(४) पौराणिक गाथाएँ (Legendary ballads)

(५) सीमान्त गाथाएँ (Border ballads)

(६) आरण्यक गाथाएँ (Greenwood ballads)

प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत अनेक प्रकार की गाथाएँ पायी जाती हैं जिनका वर्णन उपर्युक्त क्रम से उपस्थित किया जाता है।

(१) प्राचीनतम गाथाओं में समस्यामूलक गाथाओं (Riddle ballads) का स्थान सर्व प्रथम है। ये अनन्त काल से चली आ रही हैं। इनका उत्पत्ति सम्भवतः ग्रीस देश मानी जाती है। ये गाथाएँ आकाश, पृथ्वी और ऋतुओं से सम्बद्ध रहती हैं। प्राचीन काल में ये समस्या-मूलक गाथाएँ सामूहिक रूप से गायी जाती थी और इनका उत्तर भी गीतों में ही दिया जाता था। कोई अपरिचित व्यक्ति किसी विधवा स्त्री की तीसरी लड़की से जो सबसे अधिक सुन्दर थी यह पहेली पूछता है :—

"What is heigher nor the tree
And what is deeper nor the see?"

दूसरे प्रकार के गीत घरेलू जीवन से सम्बद्ध हैं जिनमें किसी

---

१ इ० स्का० पा० बै०, पृ० २७ (भूमिका भा०)

२ दि पापुलर बैलेड, पृ० १३९-२८७

प्रेयसी का हरण महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इनमें रोमान्स का प्रचुर पुट होता है। 'गिल मेन्टन' की गाथा इसका उदाहरण है। स्काटलेण्ड में ऐसे बहुत से गीत उपलब्ध होते हैं। लोकिनवार (Lochinvar) की गाथा इस सम्बन्ध में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन गीतों में शुद्ध दाम्पत्य प्रेम की प्रचुर अभिव्यक्ति हुई है। परन्तु कुछ ऐसे भी गीत पाये जाते हैं जहाँ प्रेमी या प्रेमिका विश्वास के पात्र सिद्ध नहीं होते। गे गोशवाक (Gay Goshawk) में कोई पक्षी किसी स्काटलेण्ड निवासी प्रेमी का पत्र उसकी अंग्रेजी प्रियतमा के पास पहुँचाता है जिसमें यह लिखा है कि वह अपनी प्रेयसी के प्रेम की प्रतीक्षा अब अधिक देर तक नहीं कर सकता। इस पर उसकी प्रेमिका उत्तर देती है कि :—[1]

"Bid him bake his bridal bread
And brew his bridal ale"

अवध में कुसुमादेवी और भगवती देवी के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं जिनमें उन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा में बड़ा साहसिक प्रयास किया है। अत्याचारी मुगलों के द्वारा वे पकड़ ली जाती हैं, परन्तु वे अपने प्राणों की आहुति देकर अपने सतीत्व में आँच नहीं लगने देतीं।

(२) कौटुम्बिक गाथाएँ—इनमें परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार का चित्रण किया गया है। बहन और भाई, सास और बहू, ननद और भावज के सम्बन्ध की सुन्दर झाँकी इनमें देखने को मिलती है। यूरोपीय गीतों में भाई और बहन का प्रेम बहुत उच्च कोटि का नहीं है। 'निर्दयी भाई' वाली गाथा में—जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है—क्रूर कर्मा भाई अपनी बहन के पेट में छुरा भोंक देता है। इस प्रकार उसके बहन की मृत्यु हो जाती है। परन्तु भारतीय गाथाओं में इन दोनों का प्रेम बड़ा पवित्र, शुद्ध और सात्विक दिखलाया गया है। अवध प्रान्त का भाई अपने बहन के कष्ट को सुनकर व्याकुल हो उठता है।

सास और बहू का सम्बन्ध गीतों में अवाञ्छनीय रूप में चित्रित है। इसी प्रकार ननद और भावज में पारस्परिक प्रेम का नितान्त अभाव पाया जाता है। ननद सदा भावज की शिकायत करने पर तुली दिखायी पड़ती है।

सास और बहू के विषम संबंध का चित्रण 'चपरौ' नामक लोक

---

1. गूमर : दि पापुलर बैलेड

गाथा में पाया जाता है। यह गाथा राजस्थानी है[1]। पुत्र कमाने के लिए परदेस गया हुआ है। इसी बीच उसकी माता अपनी पुत्र-वधू की हत्या कर देती है। पुत्र परदेस से आकर अपनी स्त्री के बारे में जब माता से पूछता है तब उसकी माता टाल-मटोल करने लगती है। प्रियतमा की खून से सनी साड़ी को देखकर पुत्र सारी बातें समझ जाता है और अन्त में बड़ा दुःखी होता है। गुजराती में ऐसी ही गाथा 'नो दीठी' के नाम से संगृहीत है।[2]

अंग्रेजी में ऐसी बहुत सी गाथाएँ उपलब्ध होती हैं जिनमें पर-पुरुष के द्वारा बलात्कार करने या व्यभिचार का वर्णन उपलब्ध है। विशप पर्सी के संकलन में ऐसे अनेक गीत उपलब्ध हैं। परन्तु हिन्दी में ऐसी कोई गाथा नहीं मिलती। वस्ती सिंह अवश्य ही अपने बड़े भाई को मारकर अपनी भावज से विवाह करना चाहता है परन्तु वह सती हो जाती है और इस प्रकार अपने सतीत्व को बचा लेती है।[3]

कुछ गीतों में स्त्री के सतीत्व की जाँच के लिए अनेक प्रकार के दिव्यों का विधान पाया जाता है। यह प्रथा अन्य देशों में भी प्रचलित थी।

(३) अलौकिक गाथाएँ—

इसके अन्तर्गत मृत्यु गीत, जादू के द्वारा शरीर का बदल जाना और अन्ध विश्वास पर आश्रित अनेक गीत आते हैं। मृत्यु-गीतों की चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। यहाँ पर एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। 'बोनी जेम्स केम्पबेल' नामक गाथा में मृत पुरुष की विधवा पत्नी बड़े ही करुण शब्दों में विलाप करती है जिसका एक पद्य इस प्रकार है[4] :—

"My meadow lies green
And my corn is unshorn.
My barn is to build
And my babe is unborn"

अंग्रेजी के कुछ गीतों में परियों से प्रेम की कथा भी पायी जाती है। टामस राइमर (Thomas Rymer) नामक गाथा में कोई व्यक्ति परियों

---

१ पारीक ' राजस्थानी लोक गीत पृ० ८१ ८४
२, मेघाणी रढ़ियाली रात भाग १ (गीत-१८) पृ० २७
३. त्रिपाठी : कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत)
४. क्रीटीज इ० स्का० पा० बै०

के प्रेम-जाल में फँस जाता है और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह 'परीस्तान' की यात्रा भी करता है। एक गीत में कोई माता स्वर्ग से लौटे हुये अपने तीन पुत्रों का विधिवत् स्वागत करती है।

परन्तु अलौकिकता की यह भावना, परियों और अप्सराओं से प्रेम की कथा शुद्ध भारतीय गाथाओं में प्रायः नहीं पायी जाती। इसी प्रकार से भूत-दूत या प्रेत से आविष्ट होने की चर्चा भी नहीं के बराबर है।

(४) पौराणिक गाथाएँ —

इनसे अभिप्राय उन गाथाओं से है जो किसी प्राचीन पौराणिक कथा या किम्वदन्ती को लेकर जनता में प्रचलित हैं। शेटलेण्ड में 'ओर-फिन्स' की कहानी गीतों में प्रचलित है जो चिरकाल से मौखिक रूप में चली आती है। एक गीत में किसी किसान का उल्लेख पाया जाता है जो अपना खेत बो रहा है। उसी रास्ते से जोसेफ, मेरी और क्राइस्ट के जाने का वर्णन भी गीत में किया गया है। भोजपुरी में राजा ढोलन की गाथा प्रचलित है। ऐसा कहा जाता है कि ढोलन नल और दमयन्ती के पुत्र थे। इनकी कथा ही इस गाथा का प्रतिपाद्य विषय है। नल और दमयन्ती की कहानी महाभारत तथा पुराणों में पायी जाती है।

कुछ गाथाओं में हास्य रस का पुट अधिक पाया जाता है। अंग्रेजी में 'हमारा अच्छा आदमी' (Our good man) तथा 'प्रसन्न भिखमङ्गा' (Jolley begger) ऐसे गीत हैं जिनमें हास्य की मात्रा प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती है। 'धनि धनि रे पुरुष तोर भागि करकसा नारि मिलो' शीर्षक अवधी गीत हास्य रस का उत्कृष्ट उदाहरण है।[1]

(५) सीमान्त गाथाएँ—

इङ्गलैंड तथा स्काटलैण्ड के सीमान्त भागों में प्रचलित होने के कारण उपर्युक्त गीतों का नामकरण हुआ है। इन गाथाओं में सीमान्त पर होने वाले युद्धों का वर्णन हुआ है। परन्तु यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि इन गाथाओं में महान् युद्धों की अपेक्षा छोटी छोटी लड़ाइयों की चर्चा ही विशेष रूप से पायी जाती है।

इनमें कुछ ऐसी भी गाथाएँ हैं जो स्थानीय इतिहास से सम्बद्ध हैं। सन् १८५७ ई० के भारतीय-स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने वाले वीर कुंवर सिंह

---

१. त्रिपाठी कविता कौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत)

वृहत्कथा-श्लोक-संग्रह के रचयिता बुधस्वामी है। ये नैपाल के रहने वाले थे। इनका समय आठवीं या नवीं शताब्दी माना जाता है। बुधस्वामी की यह कृति सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं होती। परन्तु जितना ग्रन्थ प्राप्त हो सका है उसमे २८ सर्ग हैं और ४५३९ श्लोक पाये जाते हैं।[1]

वृहत्कथा मंजरी—इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य क्षेमेन्द्र हैं जो सस्कृत साहित्य में अपनी प्रभूत रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। ये कश्मीर के राजा अनन्त के आश्रित कवि थे। इनका समय ११वीं शताब्दी है। इस ग्रन्थ में समस्त श्लोकों की सख्या ७५०० है।

कथा-सरित सागर—इसके रचयिता सोमदेव है जो कश्मीर के राजा अनन्त और महाकवि क्षेमेन्द्र के समकालीन थे। वृहत् कथा का यह सबसे प्रसिद्ध अनुवाद है जिसमें कुल श्लोकों की सख्या २४,००० है। इस ग्रन्थ की रचना सन् १०६३ ई० से लेकर सन् १०८१ ई० के बीच में हुई थी। इस ग्रन्थ का अग्रजी भाषा में अनुवाद कर पेञ्जर ने कई भागों में 'ओशन ऑव् स्टोरी' के नाम से प्रकाशित किया है।

पंचतंत्र—सस्कृत कथा-साहित्य में पचतत्र का स्थान अद्वितीय है। इसका अनुवाद यूरोप की अनेक भाषाओं में हो चुका है तथा इसकी कहानियों ने यूरोपीय कथा-साहित्य को प्रचुर रूपेण प्रभावित किया है। पचतत्र भारतीय कहानियों का सबसे मौलिक और प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। इसमें पाँच भाग या तत्र हैं अतः इसका नाम पंचतत्र है। इस ग्रन्थ के लेखक विष्णु शर्मा हैं जिन्होने राजकुमारों को नीति-शास्त्र का उपदेश करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की थी। भिन्न-भिन्न शताब्दियों में तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तों में पचतत्र के अनेक अनुवाद प्रकाशित हुए। इनमें सबसे प्राचीन 'तन्त्राख्यायिका' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

हितोपदेश—नीति सम्बन्धी कथाओं में पचतत्र के बाद 'हितोपदेश' का स्थान है। इसके लेखक नारायण पण्डित थे जो बगाल के राजा धवलचन्द्र के आश्रय में रहते थे। इस ग्रन्थ की रचना १४ वीं शताब्दी के आस पास हुई। ग्रन्थकार ने स्वय लिखा है कि इसका मूल आधार पचतत्र ही है। हितोपदेश की अधिकांश कथाएँ पचतत्र से ही ली गई हैं। यह बड़ा ही लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसे संस्कृत साहित्य में प्रवेश प्राप्त करने के इच्छुक छात्र बडे प्रेम से पढ़ते हैं।

---

१ बलदेव उपाध्याय संस्कृत साहित्य का इतिहास

वैताल पंचविंशतिका—इस ग्रन्थ की रचना शिवदास नामक किसी विद्वान् ने की है। इस ग्रन्थ में राजा विक्रम से सम्बद्ध पच्चीस रोचक कहानियाँ सरल संस्कृत में कही गई हैं। प्रत्येक कथा में राजा की व्यावहारिक बुद्धि का पर्याप्त परिचय मिलता है। ये कहानियाँ बहुत प्राचीन हैं क्योंकि बृहत्कथा-मंजरी तथा कथासरित्सागर में इनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। 'बैताल पचीसी' के नाम से इस ग्रन्थ का हिन्दी भाषा में अनुवाद हो चुका है।

सिंहासन द्वात्रिंशिका—इसका अनुवाद हिन्दी में 'सिंहासन बत्तीसी' के नाम से हुआ है। इसकी कहानियाँ मनोरंजन की दृष्टि से नितान्त उपादेय हैं।

शुकसप्तति—इसमें ७० कहानियों का संग्रह किया गया है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि का अनुमान केवल इसी बात से किया जा सकता है कि ईसा की १४ वीं शताब्दी में इसका अनुवाद 'तूतिनामा' नाम से किया गया था। भट्ट विद्याधर के शिष्य आनन्द ने 'माधवानल कथा' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें श्लोकों की रचना संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में की गई है। शिवदास का 'कथार्णव' केवल ३५ कहानियों का संग्रह मात्र जिसमें मूर्खों और चोरों की कथा कही गई है। मैथिल कोकिल विद्याप ने 'पुरुष परीक्षा' नामक ग्रन्थ में ४४ कथाओं की रचना की है। प्रकार संस्कृत साहित्य में कथाओं का अक्षय भाण्डार उपलब्ध होता है

जातक—जातकों की चर्चा के बिना संभवतः यह अध्याय अ ही रह जायेगा। जातकों में उन कहानियों का संग्रह किया गया है जि सम्बन्ध बुद्ध के पूर्व जन्मों से है। जातकों की कुल संख्या ५५० है। भाषा पाली है। इतनी अधिक कथाओं का एकत्र संकलन बड़े म वस्तु है। भाषा-शास्त्र, समाज-शास्त्र और पुराण-शास्त्र की दृष्टि जातकों का बड़ा महत्त्व है। अनेक बौद्ध पण्डितों ने जातकों को को संस्कृत भाषा में लिखा है। 'दिव्यावदान' और 'अवदान श की रचनाएँ हैं। आर्यशूर द्वारा रचित 'जातकमाला' में ये कथा में निबद्ध हैं।

(ख) लोक-कथाओं का वर्गीकरण

जन-मन के अनुरंजन में लोक कथाओं का प्रधान

हैं। पिछले अध्याय में कहानियों की प्राचीनता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है और यह दिखलाया गया है कि वैदिक काल से लेकर आज तक इनकी धारा अक्षुण्ण रीति से प्रवाहित होती आरही है।

प्राचीन वर्गीकरण

प्राचीन आचार्यों ने कथा को दो भागों में विभक्त किया है (१) कथा और (२) आख्यायिका। कथा उस कहानी को कहते हैं जो कवि कल्पना से प्रसूत होती है जैसे बाणभट्ट की कादम्बरी और दण्डी का दशकुमार-चरित। परन्तु आख्यायिका का आधार ऐतिहासिक इतिवृत्त होता है। यह किसी इतिहास सम्बन्धी सत्य घटना को लेकर लिखी जाती है। जहाँ बाण की कादम्बरी कथा का उदाहरण है वहाँ उनके द्वारा लिखित 'हर्षचरित' आख्यायिका का आदर्श है। आनन्दवर्धनाचार्य ने कथा के तीन भेदों का उल्लेख किया है (१) परि कथा (२) सकल कथा और (६) खण्ड कथा। परिकथा वह कथा है जिसमें केवल इतिवृत्त मात्र हो, रस परिपाक के लिए उसमें विशेष स्थान न हो। अभिनव गुप्त ने परिकथा में ऐसे वृत्तान्तों का समावेश आवश्यक माना है जिसमें वर्णन की विचित्रता पायी जाती है। सकल कथा में बीज (प्रारम्भ) से फल पर्यन्त समस्त कथा का सन्निवेश उपलब्ध होता है। हेमचन्द्र ने इस कथा को चरित का नाम दिया है और उदाहरण के रूप में 'समरादित्य कथा' का उल्लेख किया है। खण्ड कथा एक देश प्रधान होती है।

हरिभद्राचार्य ने कथाओं का एक नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जिसमें मौलिकता पायी जाती है। इनके अनुसार कथाओं के निम्नांकित चार भेद हैं। :—

(१) अर्थ कथा

(२) काम कथा

(३) धर्म कथा

(४) सकीर्ण कथा।

अर्थ कथा का विषय अर्थ की प्राप्ति है। काम-कथा में प्रेम का वर्णन अपनी प्रधानता रखता है। इस प्रकार की कथाओं की सख्या अत्यधिक है। धर्म कथा धार्मिक आख्यानों से सम्बन्ध रखती है। इस कथा की अभिलाषा करने वाले श्रेष्ठ तथा धार्मिक मनुष्य बतलाये गये हैं।

"मोक्षकाङ्क्षैकतानेन चेतसाभिलषन्ति ये ।
शुद्धां धर्मकथामेव सात्त्विकास्ते नरोत्तमाः ॥"

परन्तु दोनों लोकों की इच्छा रखने वाले संकीर्ण कथा के प्रेमी मध्यम कहे गये हैं।

"ये लोकद्वयसापेक्षाः किञ्चित्सत्वयुताः नराः ।
कथामिच्छन्ति संकीर्णां ज्ञेयास्ते नरमध्यमाः ॥"

डा० उपाध्याय का वर्गीकरण

लोक-कथाओं के वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इनका विभाजन कृष्णदेव उपाध्याय ने निम्नांकित छह वर्गों में किया है।

(१) उपदेश—कथा
(२) व्रत—कथा
(३) प्रेम—कथा
(४) मनोरंजन—कथा
(५) सामाजिक—कथा
(६) पौराणिक—कथा

लोक-साहित्य में जो कथाएँ उपलब्ध होती हैं उनमें अधिकांश प्रथम वर्ग से ही सम्बन्ध रखती हैं। लोक-कथाओं का प्रधान उद्देश्य उपदेशात्मक होता है। इस उपदेश की प्रवृत्ति को इन कथाओं की आत्मा समझनी चाहिए। पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश की समस्त कथाएँ इसी कोटि के अन्तर्गत आती हैं। 'हितोपदेश' नाम से ही यह ज्ञात होता है इन कहानियों में कल्याणकारी उपदेश भरा पड़ा है। सम्भवतः इस ग्रन्थ की रचना भी इसी लक्ष्य को सामने रखकर की गई थी। "कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते" इस पंक्ति को लिख कर लेखक ने ग्रन्थ-रचना के अभिप्राय को स्पष्ट भी कर दिया है। पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश में जानवरों तथा पक्षियों के मुख से कहानियाँ कहलवायी गई हैं। उन सब में नीति का उपदेश अन्तर्निहित है। लोक कहानियों के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। 'तिरिया चरित्तर' नामक कथा—जो भोजपुरी प्रदेश में बहुत प्रसिद्ध है—इसी कोटि के अन्तर्गत आती है। जिस प्रकार मायावी स्त्रियाँ [illegible] पतियों का अपमान करती हैं और उन्हें चक्कर में डाल देती हैं, यही इस कथा का प्रधान उद्देश्य है। इस कहानी के द्वारा लोक-कथाकार

ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि ऐसी दुष्टा स्त्रियों से पुरुषों को सावधान रहना चाहिए।

धर्म हमारे जीवन का अंग है। धार्मिक कृत्यों एवं विधि-विधानों से हमारा जीवन ओत-प्रोत है। अतः हमारे धार्मिक क्रिया-कलापों में व्रतों का महत्त्वपूर्ण स्थान होना स्वाभाविक है। इन व्रतों के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। व्रज मण्डल में सत्यनारायण तथा गणेश जी की कथा का बड़ा प्रचार है। इसी प्रकार भोजपुरी प्रदेश में सत्यनारायण तथा त्रिलोकी नाथ की कथा का घर घर में प्रसार पाया जाता है। भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को 'अनन्त चतुर्दशी' कहते हैं। इस दिन अनन्त भगवान् की कथा कही जाती है। स्त्रियों के व्रतों में पिड़िया प्रसिद्ध है। भोजपुरी लड़कियाँ पिड़िया का व्रत करते समय सबेरे और शाम नित्य प्रति इस कथा को सुनती हैं। इसी प्रकार 'बहुरा' व्रत की कथा भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त जीवित्पुत्रिका, करवा चौथ, अहोई आठें, गन गौर आदि व्रतों के अवसर पर भी कथाएँ कही जाती हैं।

तीसरी प्रकार की कथाएँ प्रेमात्मक हैं। इन कहानियों में प्रेम की कथा बड़ी सुन्दर रीति से कही गई हैं। माता का पुत्र के प्रति प्रेम कितना वात्सल्य पूर्ण होता है, पत्नी का पति-प्रेम कितना दृढ और स्वाभाविक होता हैं। बहिन का भाई के प्रति प्रेम कितना अकृत्रिम होता है इसकी झाँकी इन कथाओं में देखने को मिलती हैं। स्त्रियों के पति प्रेम का जो उत्कृष्ट एवं अलौकिक आदर्श यहाँ पाया जाता है, उसके दर्शन अन्यत्र कहाँ? यह बतला देना आवश्यक है कि लोक-कथाओं में जो दाम्पत्य-प्रेम उपलब्ध होता है वह नितान्त पवित्र और शुद्ध है, काम-वासना की उसमें गंध भी नहीं पायी जाती।

कुछ कथाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन मात्र है। ऐसी कथाओं को बालक गण बड़े चाव से सुनते हैं। ढेला-पत्ती की कहानी ऐसी ही है जो बालकों के मनोरंजन को लक्ष्य में रखकर लिखी जान पड़ती है। इस कथा का अन्त इस प्रकार से किया है कि मिट्टी का ढ़ेला गल गया, पत्ती हवा में उड़ गई और इस प्रकार कथा समाप्त हो गई। :—

"ढेला गइले मिहिलाई
पतई गइले उधियाई
अवरू कथा गइले ओराई।"

सामाजिक कथाएँ वे हैं जिनमें समाज का वर्णन पाया जाता है।

बहुत सी ऐसी कहानियाँ उपलब्ध होती हैं जिसमें राजा के न्याय की कथा, अर्थाभाव के कारण जनता का कष्ट, बहु विवाह तथा बाल विवाह का उल्लेख पाया जाता है। इन कथाओं को सामाजिक कहानियों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

लोक-साहित्य में पौराणिक कथाओं का भी अभाव नहीं है। शिवि, दधीचि, सत्य हरिश्चन्द्र तथा नल-दमयन्ती की कथा लोग बड़े चाव से सुनते हैं। गोपीचन्द, राजा भरथरी तथा सरवन (श्रवण कुमार) की कथा भी कुछ कम प्रसिद्ध नहीं है। सारंगा-सदावृज की कहानी लोगों में बड़ी लोक-प्रिय है। जहाँ पहली (शिवि आदि) कहानियाँ पौराणिक हैं वहाँ दूसरी कथाएँ (गोपीचन्द, भरथरी) पौराणिक न होते हुए भी पौराणिकता के पुट से युक्त हैं। इस प्रकार से लोक-कथाओं को प्रधानतया इन्हीं उपर्युक्त छह श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। अन्य प्रकार की कहानियों का भी इन्हीं श्रेणियों में अन्तर्भाव हो सकता है।

ब्रज की लोक कथाओं के भेद

डा० सत्येन्द्र ने ब्रज की लोक-कथाओं को निम्नांकित आठ श्रेणियों में विभाजित किया है[1]—(१) गाथाएँ (२) पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएँ (३) परी की कथाएँ (४) विक्रम की कहानियाँ (५) बुझौवल सम्बन्धी कहानियाँ (६) निरीक्षण गर्भित कहानियाँ (७) साधु पीरों की कहानियाँ (८) कारण निर्देशक कहानियाँ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन श्रेणियों का अन्तर्भाव पूर्वोक्त वर्गीकरण में ही हो जाता है।

डा० सेन का वर्गीकरण

डा० दिनेशचन्द्र सेन ने बंगाल की लोक कहानियों को चार भागों में विभक्त किया है।[2]

(१) रूप कथा—(Supernatural tales)
(२) हास्य कथा—(Humurous tales)
(३) व्रत कथा (Religious tales)
(४) गीत कथा (Nursery tales)

डा० सेन के मतानुसार रूप कथाएँ वे हैं जिनमें किसी अमानवीय एवं अप्राकृतिक, अद्भुत वस्तु का वर्णन हो। इसके अन्तर्गत भूत-दूत,

---

1 डा० सत्येन्द्र : ब्र० लो० सा० अ० पृ० ८
2 डा० सेन : फोक लिटरेचर ऑफ बंगाल

प्रेत, देवता तथा दानव आदि की कहानियाँ आती हैं। कहानियों में अलौकिकता का पुट एक आवश्यक अग माना जाता है। इस प्रकार की अमानवीय कहानियाँ प्राय. सभी प्रान्तों में पायी जाती हैं। दूसरी प्रकार की वे कथाएँ हैं जिनको सुनकर श्रोताओं के हृदय में हास्य रस की उत्पत्ति होती है। ऐसी कथाओं को बालक बहुत पसन्द करते हैं। व्रत कथा किसी विशेष पर्व या त्यौहार के दिन कही जाती है। अन्तिम श्रेणी की कथाएँ वे हैं जिन्हें बच्चों को पालने में झुलाते समय कहा जाता है। इन्हें अंगरेजी में क्रेडेल टेल्स (Cradle tales) या नरसरी टेल्स (Nursery tales) कहते हैं। गाँव की बूढ़ी स्त्रियाँ अपने बच्चों को पालने अथवा गोद में ले कर अनेक कहानियाँ सुनाती हैं। डा० सेन की इन गीत-कथाओं का अन्तर्भाव उपदेशात्मक या मनोरंजनात्मक कथाओं के भीतर मानना चाहिए।

(ग) लोक-कथाओं की विशेषताएँ

लोक-कथाओं का सम्यक् अनुसन्धान करने पर उनकी अनेक विशेषताओं का पता चलता है। इन विशिष्टताओं को निम्नांकित आठ भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) प्रेम का अभिन्न पुट।
(२) अश्लील शृङ्गार का अभाव।
(३) मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य।
(४) मङ्गल-कामना की भावना।
(५) सयोग में कथाओं का अन्त।
(६) रहस्य रोमाञ्च एव अलौकिकता की प्रधानता।
(७) उत्सुकता की भावना।
(८) वर्णन की स्वाभाविकता।

१—प्रेम का अभिन्न पुट

अधिकांश लोक-कथाओं में प्रेम का अभिन्न पुट पाया जाता है। मानव जीवन से सम्बन्ध रखनी वाली इन कहानियों में प्रेम का वर्णन होना नितान्त स्वाभाविक है। इनमें कहीं तो भाई और बहन का विशुद्ध प्रेम पाया जाता है तो कहीं माता का अपनी पुत्री के प्रति अकृत्रिम वात्सल्य प्रेम। किस प्रकार माँ अपने प्यारे पुत्र को प्राणों से अधिक प्यार करती है, गरीबी में अपने दिनों को काटते हुए भी अपने लाड़ले को कष्ट नहीं होने देती और उसे कभी भी अपनी आँखो से ओझल नहीं करती इत्यादि

अनेक प्रकार के चित्र इन कहानियों में देखने को मिलते हैं। पत्नी का अपने पति के प्रति जिस पवित्र और दिव्य प्रेम का वर्णन कथाओं में मिलता है वह सचमुच ही अलौकिक और आदर्श है। हिन्दी के प्रेम-मार्गी कवियों ने जिन आख्यानों को लेकर अपने काव्यों की रचना की है वे सभी प्रेम की आधार-शिला पर निर्मित हैं।

२—अश्लीलता का अभाव

लोक-कथाओं में प्रेम का पुट प्रचुर परिमाण में होने पर भी इनमें अश्लीलता का अभाव पाया जाता है। कुत्सित प्रेम—जो आधुनिक कहानियों का प्रधान वर्ण्य विषय बन गया है—इनमें कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। काम-वासना या सौन्दर्य-लोभ से जनित प्रेम विशुद्ध कहलाने का अधिकारी नहीं है। यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि ग्रामीणों द्वारा गढ़ी गई इन कहानियों में कहीं अश्लीलता नहीं आने पायी है। प्रेम का भद्दा प्रदर्शन आधुनिक कहानियों की विशेषता भले ही हो परन्तु लोक-कथाओं की नहीं है।

३—मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य

इन कथाओं में मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य स्थापित किया गया है। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से हमारा अभिप्राय उन वस्तुओं से है जो मानव के जीवन में अन्वय-व्यतिरेक से अनुस्यूत हैं। सुख-दुःख, आशा-निराशा, काम, क्रोध, मद, लोभ, एषणा आदि ऐसी ही प्रवृत्तियाँ हैं जो सदा से बनी रही हैं और बनी रहेंगी। इन्हीं मूल प्रवृत्तियों का वर्णन इन कहानियों में उपलब्ध होता है। आज कल की अनेक कहानियाँ किसी क्षणिक घटना को लक्षित कर लिखी जाती हैं। अतएव उनका स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु प्रायः लोक कहानियाँ किसी विशेष घटना या पात्र को लेकर नहीं लिखी गई होती हैं। इनकी रचना जीवन की मूलभूत प्रवृत्तियों को लेकर की जाती है। इनमें जिन घटनाओं का वर्णन होता है वे शाश्वतिक सत्य की प्रतीक होती हैं। 'भाग्य चक्र' की कथा ऐसी ही है जिसमें भाग्य परिवर्तन के चक्र को बड़ी ही सुन्दर रीति से दर्शाया गया है।

४—मङ्गल-कामना की भावना

मङ्गल-कामना की भावना इन कहानियों की प्रधान विशेषता है। ग्रामीण कथाकार संसार का कल्याण चाहता है। विश्व के मङ्गल की

इच्छा करता है। उसकी यही उत्कट अभिलाषा रहती है कि ससार में सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो। लोक-कथाओं में—

"सर्वेऽत्र सुखिन' सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दु खभाग् भवेत्॥"

की भावना सर्वत्र व्याप्त दिखायी देती है। कहानीकार यह चाहता है ससार में सब की भलाई हो और कोई भी व्यक्ति दुःखी न रहे।

५—सुख और संयोग में कथाओं का अन्त

लोक-कथाओं का पर्यवसान दुःख में नहीं प्रत्युत सुख में होता है, वियोग में नहीं बल्कि सयोग मे होता है। जन-जीवन सम्बन्धी कहानियों में दु ख, निराशा, हानि और आपत्तियों के प्रसग न आये हों ऐसी बात नहीं है। ये प्रसग आये हैं और अधिक सख्या में ऐसी कहानियाँ पायी भी जाती हैं। परन्तु कहानी के अन्त में दुःख सुख के रूप में परिणत हो जाता है, निराशा आशा में बदल जाती है और हानि के स्थान पर लाभ दीखने लगता है। कथा के नायक के मार्ग से आपदाएँ आप से आप हटती दिखायी पड़ती है और अन्त में उसका पथ प्रशस्त बन जाता है। भारतीय मन दु.ख में जीवन के पर्यवसान की कल्पना नहीं कर सकता। इसलिए भारतीय नाटकों को भाँति भारतीय लोक-कहानियाँ भी सुखान्त हैं, दुःखान्त नहीं। इनके अन्त में 'भरत-वाक्य' के रूप में यह वाक्य सदा उपलब्ध होता है कि :—

"भगवान् ने जैसे अमुक व्यक्ति के सुख के दिनों को लौटाया उसी प्रकार सभी लोगों के सुख के दिन लौटें।"

६—अलौकिकता की प्रधानता

कुछ कहानियों में अलौकिकता का अश भी उपलब्ध होता है। रहस्य-रोमांच, भूत-प्रेत, पिशाच, दानव, परी आदि से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का वर्णन भी कहानियों का वर्ण्य विषय होता है। इनमें अद्भुत रस की प्रधानता रहती है। इनको सुनने में श्रोताओं की रोचकता बनी रहती है। राजाओं और वीरों के अलौकिक पराक्रम की कहानियाँ भी इसके अन्तर्गत आती हैं। राजा चन्द्रभानु की कथा इसका सुन्दर उदाहरण है जिनके सात लड़कों ने विभिन्न देशों में जाकर वीरता तथा पराक्रम के अद्भुत कार्यों को कर दिखाया था। साधारण जन ऐसी कथाओं को बड़े चाव से सुनते हैं।

७—उत्सुकता की भावना

कहानी का सबसे बड़ा गुण उत्सुकता की भावना को बनाये रखना है। जिस कहानी को सुनने के लिए श्रोतागण उत्सुक न दिखायी पड़े तो यह समझ लेना चाहिए उस कथा में कुछ आकर्षण नहीं है। इस कसौटी पर कसने पर लोक-कथाएँ खरी उतरती हैं। इनको सुनते समय कथानक के आगे वाले अंश को सुनने की लालसा बनी रहती है। यह बात विशेष कर रूप-कथाओं के विषय में पायी जाती हैं। श्रोताओं को ऐसी कथाओं को सुनने की उत्कण्ठा इतनी अधिक होती है कि बार-बार वे यही पूछते रहते हैं कि "इसके बाद क्या हुआ ?"

८—वर्णन की स्वाभाविकता

वर्णन की स्वाभाविकता कहानी-कला की एक प्रधान विशेषता है जो ग्रामीण कथाओं में अधिक पायी जाती है। जो घटना जैसी है उसका उसी रूप में वर्णन लोक कथाओं का प्रधान लक्षण है। इनमें अतिशयोक्ति का पुट प्रायः नहीं उपलब्ध होता। इसीलिये इनमें भारतीय संस्कृति का सच्चा चित्रण सुरक्षित है। आधुनिक कहानियों में अतिरंजना की जो प्रवृत्ति लक्षित होती है उनका इन कथाओं में प्रायः अभाव है। 'तिरिया चरित्तर' शीर्षक कहानी में स्वाभाविकता कूट-कूटकर भरी हुई है।

शैली

लोक-कथाओं की शैली बड़ी सरल तथा सीधी सादी है। इनमें जिन वाक्यों का प्रयोग किया जाता है वे बड़े छोटे होते हैं। साधारण वाक्य को छोड़कर संयुक्त या मिश्र वाक्यों का इनमें अभाव होता है। जैसे "एक था राजा। उसके सात लड़के थे। सातो बड़े वीर थे।" इत्यादि। लोक-कथाओं की भाषा में शब्दाडम्बर नहीं पाया जाता। कथाकार के सम्मुख अनायास जो शब्द उपस्थित हो जाते हैं उन्हीं से वह उनकी रचना करता है। अन-मेल, बेजोड़ या भोड़े शब्दों की योजना इनमें नहीं मिलती। इन कथाओं की कथावस्तु जितनी स्वाभाविक है इनकी भाषा भी उतनी ही अकृत्रिम है। ये कथाएँ अबाध गति से प्रवहमान सरिताओं की भाँति है जिनमें अवगाहन कर जन का मानस आनन्द लेता है। जिनका जल निर्मल तथा शीतल होने के कारण पान करने वालों को संजीवनी शक्ति प्रदान करता है।

लोक-कथाएँ प्रधानतया गद्य में ही पायी जाती हैं। परन्तु बीच-बीच इनमें पद्यों का भी प्रयोग किया गया है। चम्पू काव्य की परिभाषा बतलाते

हुए संस्कृत के आचार्यों ने इसे गद्य-पद्य मय काव्य कहा है। इस प्रकार इन कथाओं में चम्पू शैली का प्रयोग उपलब्ध होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि श्रोताओं पर स्थायी प्रभाव जमाने के लिए कथा के बीच-बीच में पद्य की अवतारणा की गई है। कुछ कहानियों में तो पद्यों की संख्या बहुत अधिक है। 'मानिकचन्द्र' तथा 'लछटकही' की भोजपुरी कथाओं में हृदय के मार्मिक उद्गार पद्य के रूप में प्रकट हुए हैं। गद्य-पद्य की इस गांगी-जमुनी ने कथाओं के महत्व तथा उनकी प्रभावोत्पादकता को बहुत अधिक बढ़ा दिया है।

वेदों में पुरुरवा और उर्वशी, विश्वामित्र और नदियाँ तथा यम-यमी के प्राचीन उपाख्यान पाये जाते हैं जिन्हें हम लोक कहानियों का पूर्व रूप कह सकते हैं। ये उपाख्यान भी कथोपकथन की शैली में लिखे गये हैं तथा इनकी रचना में गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग किया गया है। लोक-कथाओं के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। इस प्रकार इन कथाओं की शैली का बीज वैदिक उपाख्यानों मे उपलब्ध होता है।

लोक-कथाओं और आधुनिक कहानियों में अन्तर

प्राचीन लोक कथाओं और आधुनिक कहानियों में बड़ा अन्तर है, जिसे (१) रूपगत और (२) विषयगत इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। कोई कोई आधुनिक कहानी बड़ी लम्बी पायी जाती है जैसे प्रेमचन्द की 'पिसनहारी का कुँआ' शीर्षक कहानी। परन्तु लोक-कथाओं की कथा-वस्तु प्रायः छोटी होती है। वास्तविक बात तो यह है कि लोक-कहानी जितनी छोटी होगी वह उतनी ही सुन्दर और मनोरंजक होगी।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की कथाओं के विषयगत भेद पर ध्यान देते ही यह स्पष्ट दिखायी पड़ता है कि आजकल की कहानियों में सामाजिक वैषम्य, राजनीतिक कोलाहल, और आर्थिक शोषण का चित्रण है। प्रेम का अश्लील और भद्दा प्रदर्शन भी कुछ कहानियों मे पाया जाता है। परन्तु लोक-कथाओं में न तो सामाजिक वैषम्य का वर्णन है और न आर्थिक शोषण का। राजनीतिक चहल-पहल भी इन कथाओं में नहीं मिलती। इन प्राचीन लोक-कहानियो में जिस समाज का वर्णन है वह सुखी है। इसमें न तो रोटी के लिए संघर्ष की आवाज सुनायी पड़ती है और न मजदूर की वाणी। इस प्रकार लोक-कथाओं और आधुनिक कहानियों का अन्तर स्पष्टतया प्रतीत होता है।

प्रकीर्ण साहित्य

ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में अनेक लोकोक्तियों, मुहावरों, सूक्तियों आदि का प्रयोग करती है। इससे उनकी वचन-चातुरी का पता चलता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से किसी उक्ति या कथन में शक्ति आ जाती है और श्रोताओं पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। मुहावरों के द्वारा भाषा में चुस्ती आती है और उसका स्वरूप सुन्दर बन जाता है। मन बहलाव के लिए पहेलियों का व्यवहार किया जाता है। बालक गण समुदाय में बैठ कर एक दूसरे से पहेलियों को पूछ कर बुद्धि की परीक्षा लिया करते हैं। संस्कृत में अनेक प्रकार की पहेलियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें बुद्धि का व्यायाम पाया जाता है।

बच्चा जब छोटा होता है तब उसकी माता या धाय उसे पालने में सुला कर लोरियाँ गाती है। इन लोरियों का उद्देश्य मनोहर संगीत पैदाकर बालक को निद्रा देवी की गोद में देना है। बड़े होने पर बालक अनेक प्रकार के खेलों को खेलते समय विभिन्न गीत गाते हैं। जनता के जीवन में ये लोकक्तियाँ, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, मुहावरे, पालने और खेल के गीत बिखरे पड़े हैं। अतः इनको 'प्रकीर्ण साहित्य' का नाम दिया गया है।

लोकोक्तियाँ

लोक साहित्य में लोकोक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा किसी कथन में तीव्रता और प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इससे भाषा में बल आ जाता है और वह श्रोताओं के हृदय पर अपना प्रभाव डालती है।

लोकोक्तियाँ अनुभव सिद्ध ज्ञान की निधि हैं। मानव ने युग-युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है। ये चिर कालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। समास रूप में चिर सचित अनुभूत ज्ञानराशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य है।

शताब्दियों से किसी जाति की विचारधारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इसका दिग्दर्शन करना हो तो उस जाति की लोकोक्तियों का अध्ययन आवश्यक है।

परम्परा

लोकोक्तियों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। अनुसन्धान करने से पता चलता है कि वेदों में भी इनकी सत्ता उपलब्ध है। उपनिषदों में भी लोकोक्तियों की कमी नहीं हैं। सस्कृत साहित्य में तो ये प्रचुर परिमाण में पायी जाती हैं। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में लोकोक्तियों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है जिससे उनकी भाषा बड़ी प्रभावोत्पादक हो गई है। 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' को लिखने वाला कवि यह अच्छी तरह से जानता था कि 'रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय'। भारवि, माघ और श्रीहर्ष के ग्रन्थों में भी इनका प्रयोग उपलब्ध होता है। नैषधीय चरित के रचयिता ने "ह्रदे गभीरे हृदि चावगाढे शसन्ति कार्यावतर हि सन्तः" लिखकर बड़े ही अनुभव की बात कही है। महाकवि राजशेखर ने प्राकृत भाषा में लिखे गये 'कर्पूर मजरी' नामक सट्टक में 'हत्थककण किं दप्पणेण पेक्खी' आदि का उल्लेख किया है जो हिन्दी में 'कर कंगन को आरसी क्या' इस सुन्दर तथा चुस्त रूप में जीवित है। पालिग्रन्थों में भी ऐसी लोकोक्तियाँ मिलती हैं जिनसे अनुभूति की व्यञ्जना होती है।

पचतत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों में नीति सम्बन्धी उक्तियों का प्रयोग किया गया है। 'आयसै. आयस छेद्यम्' अथवा 'कण्टकैन कण्टकम्' या 'शठे-शाठ्य समाचरेत्' ऐसी ही उक्तियाँ है जिनमें नीति या उपदेश भरा पड़ा है। 'क्षीणा नरा· निष्करुणाः भवन्ति' को लिखकर सस्कृत कवि ने बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्‌घाटन किया है।

सस्कृत में लोकोक्ति को सुभाषित या सूक्ति कहते हैं जिसका अर्थ है सुन्दर रीति से कहा गया कथन (सुष्ठु भाषित सुभाषितम्)। इस शब्द का प्रयोग नीचे के सस्कृत श्लोक में इस प्रकार किया गया है।

"सुभाषितेन, गीतेन, युवतीनां च लीलया।
मनो न रमते यस्य स योगी अथवा पशु.॥

सुन्दर रीति से कही गई उक्ति को ही सूक्ति कहते हैं। इसी उक्ति को यदि लोक अर्थात् साधारण मनुष्य प्रयोग में लाने लगते हैं तब उसका नाम लोकोक्ति पड़ जाता है

यह पहिले कहा जा चुका है कि लोकोक्तियों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। बहुत सी ऐसी संस्कृत की लोकोक्तियाँ है जो हिन्दी में उसी अर्थ में आज भी व्यवहृत होती है। 'वरमद्य कपोतो श्वो मयूरात्' अर्थात् कल के मोर से आज का कबूतर अच्छा। यह लोकोक्ति हिन्दी में आज 'नौ नक्द न तेरह उधार' के रूप में विद्यमान है।

लोकोक्तियों के संग्रह—

सस्कृत साहित्य लोकोक्तियों का अक्षय भाण्डार है। परन्तु इनका विस्तृत संग्रह प्रकाश की प्रतीक्षा कर रहा है। गत शताब्दी में कर्नल जैकब ने 'लौकिक न्यायाञ्जलि' नाम से सस्कृत साहित्य मे उपलब्ध न्यायों का अपूर्व सग्रह तीन भागों में प्रस्तुत किया था। काकतालीय न्याय घुणाक्षरन्याय, अन्धदर्पण न्याय आदि न्यायों को लेकर जैकब ने इनकी व्याख्या करते हुए इन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसके पश्चात् उन्होंने जहाँ इन न्यायों का प्रयोग हुआ है उसके उद्धरण भी दिये हैं। जैकब का यह कार्य वास्तव में स्पृहणीय है। दक्षिणी भारत के किसी विद्वान् ने सस्कृत के प्रसिद्ध कवियों द्वारा व्यवहृत सुभाषितों तथा लोकोक्तियों का सग्रह कर प्रकाशित किया है। 'सुभाषितरत्न भाण्डागारम्' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ में अनेक लोकोक्तियाँ पायी जाती हैं।

हिन्दी भाषा में लोकोक्तियों के सग्रह की ओर अभी विद्वानों का ध्यान बहुत कम आकृष्ट हुआ है। सन् १८८६ ई० में फेलन ने हिन्दी कहावतों के सम्बन्ध में अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'डिक्शनरी आफ हिन्दुस्तानी प्रोवर्स' लिखा जिसमें मारवाड़ी, पंजाबी, भोजपुरी और मैथिली कहावतों का सकलन किया गया है। फिर भी इस ग्रंथ में पूर्वी हिन्दी (भोजपुरी) की लोकोक्तियाँ ही अधिक है। काश्मीरी लोकोक्तियों पर जे० एच० नोवल्स का काम उल्लेखनीय है। ओझा अभिनन्द ग्रंथ में श्रीमती सुमित्रादेवी शास्त्रिणी द्वारा लिखित "देरेवाली कहावतें" इस दिशा मे स्तुत्य प्रयास है। श्री शालिग्राम वैष्णव ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका (संवत् १९९४ वि०) में "गढ़वाली भाषा में पखाणा" लिखकर गढ़वाली लोकोक्तियों पर प्रचुर प्रकाश डाला है। सन १८९२ ई० में श्री उपरेती ने "प्रोवर्स एण्ड फोकलोर ऑव् कुमाऊँ एण्ड गढवाल" नामक ग्रथ लिखा था जिसमें गढ़वाल और कुँमाऊँ की लोकोक्तियों का बड़ा विस्तृत संग्रह उपलब्ध है। विद्वान् लेखक ने विषयों के क्रम से लोकोक्तियों का सग्रह प्रस्तुत

पच्छिम बहै नीक कर जानो पड़ै तुसार तेज डर मानो।
उत्तर उपजै बहु धन धाना, खेत बात सुख करै किसाना।
कोन इसान दुन्दुभी बाजै, दही भात भोजन सब गाजै।
जो कहु हवा अकासे जाय, परै न बूंद काल परि जाय।
दक्खिन पच्छिम आधो समयो, सहदेव जोसी ऐसे भनयो॥

घाघ ने एक दूसरी जगह पर लिखा है कि—

'सावन में पुरवइया भादों में पछियाँव।
हरवाहे हर छोड़ दे, लरिका जाय जियाव॥'

अर्थात् सावन में पुरवैया हवा और भादों में पछुवा हवा चले तो वर्षा न होने के कारण बड़ा कष्ट होता है। यदि पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में पुरवैया हवा चले तो इतनी अधिक वर्षा होगी कि सूखी नदी में नाव चलने लगेगी।

'जो पुरवा पुरवाई पावै,
सूखी नदिया नाव चलावै॥'

वर्षा विज्ञान के सम्बन्ध में भी घाघ ने बड़ी सटीक उक्तियाँ कहीं है। जैसे :—

"माघ क उखम जेठ के जाड़
पहिले बरखा भरिगा ताल।
कहै घाघ हम होब वियोगी
कुवाँ खोदि के धोइहैं धोबी॥'

अर्थात् यदि माघ में गर्मी पड़े और जेठ में शीत की प्रधानता हो, और यदि प्रथम वर्षा में ही तालाब भर जाय तो अवर्षण के कारण धोबी कुँआ खोदकर कपड़ा धोयेगा। घाघ की दूसरी उक्ति है कि[1]—

"रोहिनी बरसै मृग तपै, कुछ कुछ अद्रा जाय।
कहै घाघ घाघिनि से स्वान भात नहि खाय॥

अर्थात् रोहिणी नक्षत्र में वर्षा हो, मृगशिरा नक्षत्र में खूब गर्मी पड़े और आर्द्रा में भी कुछ वर्षा हो तो इतना अधिक अन्न पैदा होगा कि कुत्ता भी भात को नहीं खायेगा।

इसी प्रकार घाघ ने जोताई, बोआई, निराई, कटाई, मड़ाई और ओसाई आदि के सम्बन्ध में उक्तियाँ कही हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि घाघ

---

१ त्रिपाठी ह० ग्रा० सा० पृ० २०३

कोई पक्का किसान था जिसने खेती-विज्ञान सम्बन्धी अपनी निरीक्षण शक्ति का परिणाम इन लोकोक्तियों में रखा है।

लोकोक्तियों की तीसरी विशेषता है इनकी सरलता। ये लोकोक्तियाँ बड़ी सरल भाषा में निबद्ध हैं जिससे सुनते ही इनका अर्थ हृदयङ्गम हो जाता है। इनकी यही सरलता इनके अतिशय प्रभाव उत्पन्न करने का कारण है। जो वस्तु अर्थ-काठिन्य के कारण समझ में नहीं आती उसका प्रभाव हृदय पर नहीं पड़ता। परन्तु कहावतें अपनी सरसता और सरलता के कारण हृदय पर सीधे चोट करती हैं। जैसे—

'नसकट पनही, बतकट जोय;
जो पहिलौंठी बिटिया होय।
पातर कृषी, बौरहा भाय,
घाघ कहै दुःख कहाँ समाय॥'

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि पैर के नस को काटने वाला जूता और बात को काटने वाली (लड़ाकू या झगड़ालू) स्त्री कितनी दुःखदायी होती है। घाघ ने इसी बात को बड़ी सीधी सादी भाषा में कहा है जिसका प्रभाव ग्रामीण जनों के हृदय पर बहुत ही अधिक होता है।

कहावतें गद्य में भी होती हैं और पद्य में भी। पद्यात्मक कहावतों को याद करने में सुविधा होती है। उनका प्रभाव भी जन-हृदय पर संभवतः अधिक पड़ता है।

लोकोक्तियों का वर्गीकरण

लोकोक्तियों का वर्गीकरण प्रधानतया निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है :—

(१) स्थान सम्बन्धी
(२) जाति सम्बन्धी
(३) प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धी
(४) पशु-पक्षि सम्बन्धी
(५) प्रकीर्ण

१—स्थान-सम्बन्धी

बहुत सी ऐसी लोकोक्तियाँ पायी जाती हैं जो किसी देश या स्थान-विशेष की विशेषताओं को प्रकट करती हैं। काशी के सम्बन्ध में जो कहावत प्रचलित है उसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है। उत्तर प्रदेश के बलिया

जिले के पश्चिमी भाग को 'बाँगर' कहते हैं। यहाँ सिंचाई के प्रबन्ध की सुविधा न होने के कारण अन्न बहुत कम पैदा होता है। इसी विषय का उल्लेख नीचे की एक कहावत में किया गया है।[1]

"का बाँगर का अन्ने, का जोलाहा का धन्ने।"

मगध देश में भोजन अच्छा नहीं मिलता। भुजिया चावल का भात और खराब दाल खाने को मिलती है। अतः वहाँ जाने का निषेध किया गया है।[1]

"उसिना चावल दाल खमोरी।
मगह देस जनि जइह मुरारी॥"

बिहार के तिरहुत प्रदेश की विशेषताओं को बतलाने वाली यह उक्ति कितनी सुन्दर बन पड़ी है।

"कोकटी धोती पटुआ साग,
तिरहुत गीत बड़े अनुराग।
भाव भरल तन तरुणी रूप,
एतवै तिरहुत होइछ अनूप॥"

कलकत्ता शहर में जाकर रहने वाले लोगों के लिए बड़ा ही सुन्दर उपदेश इस लोकोक्ति में दिया गया है। इससे भारत के सर्वश्रेष्ठ नगर की विशेषताओं का पता चलता है:—

"घोड़ा गाड़ी, नोना पानी, और राड़ के धक्का।
ए तीनू से बचल रहे, तब केलि करे कलकत्ता॥"

हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक श्री वृन्दावन लाल वर्मा ने ग्वालियर राज्य के स्थानों के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है।[2]

२—जाति-सम्बन्धी

भारत की विभिन्न जातियों की विशेषताओं को प्रकट करने वाली अनेक लोकोक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। ब्राह्मण और नाई किस प्रकार अपनी जातिवालों को देखकर जलते हैं इसका उल्लेख इस लोकोक्ति में हुआ है:—

---

१ लेखक का निजी संग्रह
२ 'मृगनयनी' की भूमिका

"बांभन, कुकुर, नाऊ।
आपन जाति देखि गुर्राऊ॥"

ब्राह्मण पुरोहित किस प्रकार हवन करते समय यजमान के घी और अन्न को अग्नि में भस्मसात् कर देता है, इसका वर्णन सुनिये :—

"करवा[1] कोंहार के, घीव जजमान के;
बाबा जी कहेले स्वाहा स्वाहा।"

इसी से मिलती-जुलती एक दूसरी उक्ति है जो ब्राह्मणों की भोजन-भट्टता को प्रकट करती है —

"आनकर[2] आटा, आनकर घीव।
चावस[3] चावस बाबा जीव॥"

अंग्रेजो में भी इसी प्रकार की एक उक्ति है जो उपर्युक्त लोकोक्ति के भावों को प्रकट करती है।

"फूल्स मेक फीस्ट्स
एण्ड वाइजमेन ईट देम।"

आजकल के अनेक साधु-महात्मा—जो अपने को ब्राह्मण कहते हैं—रामानुजी टीका लगाये फिरते हैं और मधुर बानी बोलकर भक्तों को फँसाते हैं। उनके सम्बन्ध की यह लोकोक्ति कितनी सटीक है :—

"तीन फँकिया टीका मधुरी बानी,
दगाबाज के इहे निसानी।"

बनियों के बारे में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है जो उनकी बद्धमुष्ठिता को सूचित करती है :—

"आमी, नीबू बानिया,
चापें तें रस देय।"

अर्थात् आम, नीबू और बनिया इन तीनों को दबाने या कष्ट देने से ही ये रस देते हैं। क्षत्रिय और कायस्थों के विषय में भी इसी प्रकार की अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध है। शूद्रों तथा अन्य तथाकथित नीच जातियों के सम्बन्ध में यह प्रायः कहा जाता है कि ऊँच जाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) बात करने से परन्तु नीच जातियाँ दण्ड देने से ही ठीक रास्ते पर रहती हैं—

---

१. मिट्टी का वह पात्र जिससे हवन सामग्री कुण्ड में डाली जाती है।
२. दूसरे का। ३ खूब मजे में खाना।

"ऊँच जाति बतिग्रवले
नीच जाति लातग्रवले ।"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस तथ्य का समर्थन "शूद्र, गँवार ढोल, पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी" लिखकर किया है।

रसल ने "पीपुल्स ऑव् इण्डिया" नामक अपनी पुस्तक में भारत की विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में जो विशेषताएँ हैं उनका उल्लेख बड़े विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का बड़ा उपयोग है।

३—प्रकृति तथा कृषि सम्बन्धी

अनेक लोकोक्तियाँ प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाली हैं। किस समय किस दिशा से वायु चलने पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा, किस रंग की बिजली चमकने से ऋतु के सम्बन्ध में क्या सूचना मिलती है, किन नक्षत्रों में वर्षा होने या न होने से सुकाल या अकाल पड़ता है, इन सभी विषयों का ज्ञान हमें लोकोक्तियों से प्राप्त होता है। ऋतु-विज्ञान की जो बातें वैज्ञानिक अपने अनुसन्धानों द्वारा बतलाते हैं उस विज्ञान की बहुत सी बातें इनमें मिलती हैं। इसके अतिरिक्त कृषि सम्बन्धी अनेक कार्यों—सिंचाई, बोआई, निराई, कटाई, दवाँई, मड़ाई आदि—के सम्बन्ध में भी कहावतें पायी जाती हैं। इनसे हमें यह ज्ञात होता है कि किस समय में कौन सा कार्य करने पर उसका फल अच्छा होगा या बुरा। घाघ तथा भड्डरी की वायु तथा वर्षा सम्बन्धी लोकोक्तियों का वर्णन पहले हो चुका है। कृषि जीवन से सम्बद्ध ऐसा कोई भी अंग नहीं जिसके विषय में कोई उक्ति न कही गई हो। ऊख के खेत को कितना जोतना चाहिए इस विषय में घाघ कहते हैं:—

"तीन कियारी तेरह गोड़,
तब देखै ऊखी के पोर ॥"

खेत में खाद डालने से खेती अच्छी होती है इसका समर्थन लोकोक्तियों से भी प्राप्त होता है।

"जेकरे खेत पड़ा नहिं गोबर,
वहि किसान को जान्यो दूवर ॥"

खाद को आषाढ़ मास में डालने से फसल खूब होती है —

"असाढ़ में खाद खेत में जावै,
तब भरि मूठि दाना पावै।"

४—पशु-पक्षी सम्बन्धी

कृषि सम्बन्धी कहावतों का उल्लेख पहिले हो चुका है। बैल कृषि-कर्म का अनन्य साधन है। इसके बिना किसान का कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। अत. बैल के सम्बन्ध में अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं जिनमें उनके गुण-दोष का विवेचन किया गया है। हल में तेज चलने वाले बैल का लक्षण इस प्रकार दिया है[1] :—

"सींग मुड़े, माथा उठा, मुँह का होवे गोल।
रोम नरम, चंचल करन, तेज बैल अनमोल॥"

बुरे बैल का लक्षण इस प्रकार है[1] ।—

"उजर बरौनी मुँह का महुवा,
ताहि देखि हरवहवा रोवा॥"

कृषि कार्य में बैल का कितना महत्त्व है इसका पता नीचे की उक्ति से लगता है।[2]

"बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार॥"

गीदड़ और कौओं का विभिन्न समय पर बोलना अशुभ है, इसकी सूचना हमें कहावतों से मिलती है।[3]

"रात को बोलै कागला, दिन में बोलै स्याल।
तो यों भाखै भड्डरी, निहचै पड़िहैं काल।"

इसी प्रकार से बन्दर, हाथी और घोड़ा आदि के विषय में भी बहुत सी कहावतें प्रचलित है।

५—प्रकीर्ण

प्रकीर्ण लोकोक्तियाँ वे है जो उपर्युक्त चार प्रकारों से भिन्न हैं। इनमें नीति से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों की प्रधानता है। घाघ ने ऐसी बहुत सी लोकोक्तियाँ कही हैं जिनमें किसी न किसी प्रकार का नीति-कथन उपलब्ध होता है। यहाँ एक दो उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

"मुये चाम से चाम कटावै, भुँइ सँकरी माँ सोवै।
घाघ कहैं ये तीनों भकुवा, उढ़रि गये पै रोवै॥

---

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य, पृ० २१८
२. वही, पृ० २२३ ३. वही, पृ० २५०

× × ×

सधुवै दासी, चोरवै खाँसी; प्रीति बिनासै हाँसी ।
घग्घा उनकी बुद्धि बिनासै, खाय जो रोटी बासी ॥

कहीं-कहीं तो घाघ की उक्तियाँ चाणक्य की नीति से टक्कर लेती हैं, जैसे :—

"लारका ठाकुर बूढ़ दिवान,
ममिला बिगरै साँझ बिहान ।"

इसी प्रकार नीचे की यह लोकोक्ति इसी आशय की है—

"ओछो मंत्री राजै नासै ताल बिनासै काई ।
सुक्ख साहिबी फूट बिनासै, घग्घा पैर बिवाई ॥"

गाँवों में इन्हीं नीति-वचनों के द्वारा लोग अपने जीवन का नियंत्रण करते हैं ।

कुछ कहावतें ऐसी है जिनमें स्वस्थ रहने की विधि बतलायी गई है । इन्हें 'नीरोग के नुसखे' कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी; जैसे—

'मोटी मुखारी जो करै, दूध बियारी खाय ।
बासी पानी जो पियै, तेहि घर बैद न जाय ॥

× × ×

क्वार करैला, चैत गुड़, सावन साग न खाय ।
कौड़ी खरचे गांठ की रोग बिसाहन जाय ॥

भोजन में पथ्यापथ्य का विधान कर ये लोकोक्तियाँ हमें स्वास्थ्य के नियमों को बतलाती है ।

१. ब्रज की लोकोक्तियों के भेद

ब्रज में सामान्य लोकोक्तियों के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार की लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं जिनके भेद निम्नांकित है ।—(१) अनमिल्ला (२) मेरि (३) अचका (४) औठपाव (५) गहगड्ड (६) ओलना (७) खुसि ।

अनमिल्ला—इनमें नाम के ही अनुरूप बेमेल बातों का एक साथ उल्लेख मिलता है । जैसे—

"भार भुजावन हम गये, पल्ले बाँधी ऊन ।
कुत्ता चरखा लै गयौ, काए ते फटकूँगी चून ॥"

---

१ डा० सत्येन्द्र ' ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ५३७-४२

अचका इसमें आश्चर्य की प्रधानता रहती है। सुकुमारता की अतिशयता के साथ ही साथ इसमें फूहड़पन भी अपनी पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ दिखायी पड़ता है। पतङ्ग के विषय में यह उक्ति कही गई है।

"पीपर पै ते उड़ी पतङ्ग, जौ कहुँ लगि जाय मेरे अंग
मैंने दै दई वजर किवार, नहीं उड़ि जाती कोस हजार"

इन अचकों में साधारणतः स्त्रियों की गर्वोक्तियाँ है जो इनके सौंदर्य या धन की अतिशयता को घोषित करती हैं।

भेरि, औठपाय और खुँसि इन तीनों का सामान्य धर्म यह है कि ये सभी ऐसी बातों का दिग्दर्शन कराते हैं जो अवाञ्छनीय होती हैं। भेरि का अन्तिम चरण एक समान होता है। वह है—गड्‌आ गढत भेरि है गई।

"रॉंढ नारि ने पहरयौं कॉंछु,
अब मति जानो याकी सॉंचु।
सालू पहिरि पैठें फू गई
गडुवो गढ़त भेरि है गई॥

'खुँसी, ऐसी ही बातों के कहने का दूसरा ढंग है। इसमें तीन दोषों की गणना की गई रहती है;[1] जैसे:—

"एक तो बूढ़ी गाय
दूसरां कूं खेत खाय।
तीसरां कूं दूध हीन
खुँसि ऊपर खुँसि तीन॥"

अन्तिम चरण सब में समान होता है। जिस प्रकार 'खुसी' में स्वाभाविक दोषों की गणना होती है उसी प्रकार 'औठपाय' में जानबूझ कर किये गए कुछ कार्यों का परिणाम दिखाया गया रहता है। उदाहरण के लिए:—

"कूँआ पनघट बाइकें, पॉंय दिये ललराय।
पीठि भिड़ायै सौति पै, जेई मरिवे के औठपाय॥'

ओलना—इस प्रकार की लोकोक्ति में सुख देने वाली वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा निविष्ट रहती है। मनोभिलषित वस्तुओं की सूची इसमें दी गई रहती है।[2] उदाहरणार्थ —

---

१. डा० सत्येन्द्र · ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २४०

२. वही, पृ० २४१

"रिमझिम बरसै मेह कि ऊँची रावटी
कामिन करै सिंगार कि पहरै पामटी।
बारह बरस की नारि गरे में ढोलना,
इतनौ दै करतार फेरि ना बोलना।।"

गहगड्ड—इस लोकोक्ति में दो व्यक्तियों की उक्तियाँ रहती है। एक व्यक्ति सुख के साधनों का सुझाव रखता है और दूसरा व्यक्ति उन सुझाओं को तब तक अस्वीकार करता जाता है, जबतक उसकी अभीष्ट वस्तु न प्रस्तुत की जाय, यथा—

"किनक कटोरा ध्यौ चना, गुर बनिये की हट्ट।
तपं रसोई जैश्रो मुसाफिर, यों माँचै गहगड्ड॥
नहीं गहगड्ड, नहीं गहगड्ड।

संक्षेप में ब्रज की लोकोक्तियो की यही रूप रेखा है

लोकोक्तियों के रचयिता

लोकोक्तियों के रचयिताओं का कुछ पता नहीं चलता। परन्तु अधिकाश लोकोक्तियाँ घाघ और भड्डुरी के नाम से प्रचलित है। कुछ कहावतों में इन दोनों के नामों का उल्लेख पाया जाता है।

(१) घाघ, अकवर बादशाह के जमाने में हुए थे। ये जाति के दूबे ब्राह्मण थे। कन्नौज के पास इनके नाम से एक पुरवा (छोटा गाँव) बसा हुआ था। जिसका नाम अब बदल गया है परन्तु पुराने कागजों में 'पूरे घाघ' का उल्लेख मिलता है। घाघ के वशज अब भी उस गाँव में रहते हैं।

घाघ का सम्बन्ध गोरखपुर और छपरे जिले से भी बतलाया जाता है। स भव है घाघ किसी सम्बन्ध से यहाँ कुछ दिनों तक रहे हों। घाघ की कहावतों की भाषा से उनके जन्म स्थान का पता लगाना बड़ा कठिन है। क्योंकि इनकी कहावतें किसानों में इतनी लोकप्रिय है कि सबने अपनी बोली में इनका रूपान्तर कर लिया है।[1]

घाघ के सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि है कि अपनी पतोहू से इनकी बड़ी नोक-झोंक रहती थी। घाघ जो कहावत कहते थे पतोहू उसका उल्टा कहती थी। इससे जान पड़ता है कि इनकी पतोहू भी पद्य रचना करना जानती थी।

---

१ त्रिपाठी ह० ग्रा० सा०, पृ० २५४ २५५

बहुत से ऐसी लोकोक्तियाँ जो घाघ के नाम से नहीं है अब उन्हीं के नाम से प्रचलित हो गई है जिससे उनकी लोकप्रियता का पता चलता है।

(२) भड्डरी—इनके जीवन-वृत्त के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। ऐसा कहा जाता है कि ये ब्राह्मण पिता और आभीरी माता से उत्पन्न हुए थे। भड्डरी नाम भी इनके नीच वर्ण में उत्पन्न होने की सूचना देता है। इन्होंने वर्षा विषयक अनेक कहावतों का निर्माण किया है जिनमें कथित तथ्य बहुधा सच निकलते हैं। अब तो भड्डरी नाम की एक जाति ही बन गई है जो भड्डरी की कहावतों के आधार पर भविष्य में होने वाली वर्षा-सम्बन्धी बातों को बतलाती है। इस जाति के लोग गोरखपुर और देवरिया जिले में अधिक हैं। राजस्थान में भड्डली नाम की एक स्त्री की कहावतें मिलती हैं जिनमें भड्डरी की लोकोक्तियों से बहुत कुछ एकता पायी जाती है। वर्षा के अतिरिक्त भड्डरी ने नीति स्वास्थ्य और शकुन आदि के सम्बन्ध में बहुत सी कहावतें कहीं हैं।[1]

(३) लाल बुझक्कड़—ये यू० पी० के फर्रुखाबाद जिले के रहने वाले थे। इनका असली नाम लाल था। बुझक्कड़ तो इनकी पदवी थी। ये अपने गाँव के सबसे चतुर आदमी समझे जाते थे। ग्रामीण जनता में प्रचलित यह कहावत सम्भवतः इन्हीं लाल बुझक्कड़ की ज्ञात होती है।[2]

"लाल बुझक्कड़ बूझिया, और न बूझा कोय।
पैर में चक्की बाँध के हरिन न कूदा होय॥"

माधोदास तथा हृदयराम ने अनेक नीति-परक लोकोक्तियाँ कहीं है परन्तु इनके जीवन वृत्त के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं हैं।

२. मुहावरे

अर्थ

मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है—परस्पर बात-चीत और सवाल—जबाब करना।' इसे अंग्रेजी में 'इडियम' कहते हैं। संस्कृत में इस शब्द के यथार्थ अर्थ को बोधित करने वाला कोई शब्द नहीं है। कुछ विद्वानों ने 'वाग्रीति' या 'रमणीय प्रयोग' का व्यवहार

१ त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा० पृ० २६१
२ वही, पृ० २६७

इसके लिए किया है। परन्तु वास्तव में ये शब्द उपयुक्त नहीं जँचते क्योंकि इनसे 'मुहावरे' के भाव का सम्यक् प्रकाशन नहीं होता।

अरबी भाषा में मुहावरा शब्द का अर्थ सीमित तथा सकुचित है, किन्तु हिन्दी और उर्दू में यह विकसित होकर व्यापक भाव को द्योतित करता है। मुहावरे के अर्थ में अभिधेयार्थ से कुछ विभिन्नता होती है। अतः इसके अर्थ की सिद्धि लक्षणा और व्यञ्जना शक्तियों के ऊपर अवलम्बित रहती है। उदाहरण के लिए 'नव दो ग्यारह होना' इस मुहावरे को लीजिए। इसका अभिधेयार्थ स्पष्ट है। परन्तु इस मुहावरे का अर्थ है चल देना, भाग जाना आदि। यह भाव अमिधा या लक्षणा से द्योतित न होकर व्यञ्जना शक्ति के द्वारा प्रकट होता है। दूसरा मुहावरा है 'नाकों चना चबाना' जिसका अर्थ है बड़ी कठिनाई से किसी कार्य को सम्पादित करना। चना चबाने का काम मुँह करता है नाक नहीं। नाक से इसे चबाना असभव कार्य है। अतः लक्षणा शक्ति के द्वारा इस मुहावरे का अर्थ हुआ किसी काम को बड़ी कठिनता से करना। इसी प्रकार अन्य मुहावरों में भी यही बात पायी जाती है।

मुहावरों की उत्पत्ति

मुहावरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय लिखते हैं कि "मनुष्य के कार्यक्षेत्र विस्तृत हैं। उसके मानसिक भाव भी अनन्त हैं। घटना और कार्य-कारण परम्परा से जैसे असख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार मुहावरों की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण विशेष से सकेत अथवा इगित किंवा व्यग द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावों को थोड़े शब्दों में विवृत करने का उद्योग करता है, जिनके अधिक लम्बे, चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न करना उसे अभीष्ट होता है। प्रायः हास, परिहास, घृणा, आवेग, उत्साह आदि के अवसर पर उस प्रवृत्ति के अनुकूल वाक्य योजना होती देखी जाती है। सामयिक अवस्था और परिस्थिति का भी वाक्य विन्यास पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है और इसी प्रकार के साधनों से मुहावरों का आविर्भाव होता है।"[1]

कवि सम्राट् उपाध्याय जी ने मुहावरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने जो विचार प्रकट किये हैं, वे यथार्थ हैं। भाषा-शास्त्रियों का कहना है कि

---

१. 'बोल चाल', पृ० ३६-३७

मानव प्रकृति शब्दों के उच्चारण में प्रयत्नलाघव को पसन्द करती है। यही बात भाषा के प्रयोग के विषय मे भी कही जा सकती है। मनुष्य थोड़े में अपने भावों प्रकट करना चाहता है। अतः वह ऐसी शब्दावली का प्रयोग करता है जो संक्षिप्त हो। अत्यन्त घने तथा निविड़ अन्धकार का वर्णन करने के लिए—जिसमें मनुष्य के अपने हाथ-पैर न दिखायी पड़ते हों—संस्कृत में 'सूचिभेद्य तमः' मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। केवल इन दो छोटे से शब्दों में कितनी अधिक भावराशि भरी पड़ी है।

मनुष्य की दूसरी प्रवृत्ति गोपनीयता की होती है। वह किसी कारण वश अपने भावों को ऐसी भाषा में प्रकट करना चाहता है जो सर्वसाधारण के लिए सरलतया बोधगम्य न हो। वज्रयानी बौद्धों ने तथा हिन्दू तान्त्रिकों ने इसीलिए एक ऐसी प्रतीकात्मक भाषा को आविष्कृत किया था जो गोपनीय होने के कारण जनसाधारण की बुद्धि से परे थी। 'पंच मकारों' के ठीक अर्थ को न समझ सकने का यही कारण था। मुहावरों के विषय में भी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है। 'नौ दो ग्यारह होना' या रफ्फू चक्कर होना का अर्थ चल देना या भाग जाना है जो अभिधा से सूचित नहीं होता। अतः गोपनीयता की भावना इसमें विद्यमान है।

परिभाषा

मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला वह अपूर्ण वाक्य खण्ड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोक-व्यवहार में जिन जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा और समझा और बार बार उसका अनुभव किया उन्हीं को उसने शब्दों में बाँध दिया है। वे ही मुहावरे कहलाते हैं।[1]

लोकोक्ति तथा मुहावरे मे अन्तर

मुहावरों और कहावतों में अन्तर है। मुहावरा वाक्य का अंश होता है, उसका स्वतंत्र रूप से व्यवहार नहीं किया जा सकता। परन्तु लोकोक्तियाँ पूर्ण वाक्य होती हैं। उनका प्रयोग स्वतंत्र रूप से होता है। वे अपना स्वतन्त्र अर्थ रखती हैं। किसी कथन का समर्थन करने के लिए उदाहरण के रूप में अलग से उनका प्रयोग किया जाता है। मुहावरे

---

१ त्रिपाठी : 'त्रिपथगा' अंक ६ (मार्च, १९५६), पृ० ३०

गद्यात्मक होते हैं, परन्तु लोकोक्तियाँ गद्य और पद्य दोनों में उपलब्ध होती हैं। दोनों का आकार लघु होता है, परन्तु मुहावरा लघुतर होता है।

मुहावरों का महत्त्व

मुहावरे किसी भाषा की सजीवनी शक्ति हैं। ये उस भाषा के प्राण हैं। इनके द्वारा भाषा में सुघराई और चुस्ती आती है। मुहावरों के प्रयोग से वाक्यों में रोचकता आ जाती है और उनका प्रभाव पाठकों के हृदय के ऊपर सीधे होता है। रोचक भाषा भावों की अभिव्यञ्जना में कितनी समर्थ होती है यह कहने की आवश्यकता नहीं। यही कारण है कि जो लेखक मुहावरों का अधिक प्रयोग करते हैं उनकी भाषा टकसाली होती है। मौलाना हाली ने इनके महत्त्व के विषय में "मुकद्दमा शेर व शायरी" में लिखा है कि—"मुहावरा अगर उम्दा तौर से बाँधा जावे तो बिला शुबहा पस्त शेर को बलन्द और बलन्द को बलन्दतर कर देता है।" इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उचित मुहावरों के प्रयोग से शैली में माधुर्य, सौन्दर्य और शक्ति आ जाती है। विस्तृत भावों को थोड़े शब्दों में प्रकट करना मुहावरों का ही काम है। इनके प्रयोग द्वारा कोई भी भाषा संस्कृत होकर चमत्कृत हो जाती है।

परम्परा तथा व्यापकत्व

मुहावरों का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना भाषा की उत्पत्ति का। संस्कृत साहित्य में इनका प्रचुर प्रयोग उपलब्ध होता है। संस्कृत महाकाव्यों तथा नाटकों में ये विशेष रूप से व्यवहृत हुए हैं। 'सूचिभेद्य तमः' की चर्चा पहिले की चुकी है। अत्यन्त शीघ्रता से रात बीत जाने के लिए "अक्ष्णोः प्रभातमासीत्" का प्रयोग पाया जाता है। किसी बात को सामने देखते हुए भी उसके अस्तित्व को न स्वीकार करने के लिए 'गजनिमीलिका' का व्यवहार पण्डित लोग किया करते हैं। संस्कृत में कुछ ऐसे भी मुहावरे हैं जिनकी परम्परा को राष्ट्रभाषा हिन्दी भी अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। बिना समझे-बूझे अन्धविश्वास के कारण किसी कार्य को सामूहिक रूप से करने के लिए 'गड्डलिका प्रवाहः' को प्रयुक्त किया जाता है। यह मुहावरा 'भेड़िया धसान' के रूप में हिन्दी में वर्तमान हैं। प्राकृत तथा पाली भाषा में भी मुहावरे पाये जाते हैं, परन्तु स्थानाभाव के कारण इन्हें लिखना सम्भव नहीं।

हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी में मुहावरों की सख्या बहुत ही अधिक है।

सिर से पैर तक शरीर का कोई भी अंग ऐसा नहीं है जिससे सम्बद्ध दर्जनों मुहावरें न हों। कवि सम्राट् पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय ने अपनी 'बोल चाल' नामक पुस्तक[1] में इन मुहावरों का पद्यों में प्रयोग किया है। इस पुस्तक से हिन्दी के मुहावरों के प्राचुर्य का पता लगाया जा सकता है।

हिन्दी की विभिन्न बोलियों—भोजपुरी, व्रज, अवधी, बुन्देलखण्डी आदि—में हजारों की संख्या में मुहावरे उपलब्ध होते हैं जो नितान्त मौलिक हैं। केवल भोजपुरी में ही सैकड़ों ऐसे मुहावरें हैं जो हिन्दी में नहीं पाये जाते, जैसे—

१. पाताल खिलना—बहुत दूर चला जाना।
२. हाथ में दही जमाना—मारने पर भी क्रुद्ध न होकर चुप रहना।
३. हाथ झुलावत आना—असफल होकर लौटना।
४ हाँका हाँकी बदना—प्रतिस्पर्धा करना।
५. लग्गा लगाना—किसी काम को प्रारम्भ करना।

मुहावरों का प्रयोग बड़ा ही व्यापक है। हमारे जीवन का कोई ऐसा कार्य नहीं जिसके वर्णन में मुहावरों का प्रयोग न होता हो। हजारों वर्षों से बोलचाल में बार-बार आते रहने से मुहावरे मनुष्य जीवन के पक्के साथी बन गये हैं। वे मानव की गति, क्रिया, अनुभूति, उसके शरीर के अंग-उपांगों, भोजन के पदार्थों, घर गृहस्थी के काम-काज, प्रकृति के विभिन्न तत्व—आकाश, आग, हवा, पानी और पृथ्वी—दिन-रात, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों और जीव जन्तु सभी से सम्बन्ध रखते हैं। कहने का आशय यह है कि स्थावर और जंगम जितनी सृष्टि है उन सभी से इनका सम्बन्ध है।

मुहावरों की विशेषताएँ

(१) मुहावरों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी वाक्य का अंगीभूत बन कर रहता है। जैसे 'आग लगाना' एक मुहावरा है। परन्तु इसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। जब तक इसका किसी वाक्य में प्रयोग नहीं होता तब तक इसका कोई अर्थ नहीं है। परन्तु जब हम यह कहते हैं कि 'वह आग लगाकर तमाशा देखने लगा' तब इसका अर्थ होता है झगड़ा लगाना।

---

1 खड्गविलास प्रेस पटना से प्रकाशित।

(२) मुहावरा अपने मूल रूप में ही सदा प्रयुक्त होता है। यदि इसमें आये हुए शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाय तो मुहावरा नष्ट हो जाता है। जैसे 'कमर टूटना' एक मुहावरा है। परन्तु इसके स्थान पर इसके पर्याय के प्रतिपादक 'कटिभग .होना, लिखें तो यह पूर्वोक्त अर्थ का द्योतक कदापि नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'हाथ धोना' मुहावरा है परन्तु 'हस्त प्रक्षालन' का प्रयोग करने पर अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति हमें नहीं हो सकती।

(३) मुहावरे का वाच्यार्थ से विशेष सम्बन्ध नहीं होता। लक्ष्यार्थ के द्वारा ही अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है। उदाहरण के लिए 'गड़े मुर्दे उखाड़ना' इस मुहावरे को लीजिए। इसका अभिधेयार्थ है दफनाये गए मुर्दे की कब्र खोदना परन्तु इसका वास्तविक अर्थ है दबी दबायी बात को फिर से उठाना। इसी प्रकार 'लड़ाई में काम आना' का अर्थ लड़ते लड़ते मर जाना है, न कि लड़ाई के काम में उपयोगी होना।

जन-जीवन का चित्रण

मुहावरों में जनता के जीवन की झाँकी देखने को मिलती है। सामाजिक प्रथाओं, रूढ़ियों और परम्पराओं का उल्लेख इनमें पाया जाता है। साथ ही साधारण जनता की आर्थिक दशा कैसी थी, इस पर भी प्रकाश पड़ता है। इतिहास की अनेक टूटी और बिखरी हुई कड़ियाँ भी इनकी सहायता से जोड़ी जा सकती है। भारतीय संस्कृति के दर्शन भी हमें मुहावरों में मिलता है। इन दृष्टियों से इनका महत्त्व अत्यधिक है।

जनता की आर्थिक स्थिति के परिचायक कुछ मुहावरों को लीजिए। 'गरीबी में आटा गीला' एक मुहावरा है। गरीब के पास थोड़ा सा आटा होता है। यदि सानते समय वह गीला हो जाय तो उसकी रोटियाँ नहीं बन सकती और उसे भूखा ही रहना पड़ेगा। इसी से जब किसी कष्ट के बाद दूसरा कष्ट आ पड़ता है तब इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। दूसरा मुहावरा है 'सत्तू बाँधकर पीछे पड़ना' देहात के लोग सत्तू का उपयोग बहुत करते हैं। जब वे कहीं बाहर यात्रा करते हैं तब साथ में सत्तू बाँधकर ले जाते हैं जिससे उन्हें भोजन सदा तैयार मिलता है और इस प्रकार समय की काफी बचत होती है। परन्तु यह गरीबों का ही भोजन है। 'पेट काटना' भी मुहावरा है जिसका अर्थ है धन की कमी से जान बूझ कर कम खाना; जैसे मोहन ने पेट काट कर अपने पुत्र को पढ़ाया-लिखाया।

सामाजिक प्रथाओं का चित्रण इन मुहावरों में अधिकता से हुआ है। 'छीपा बजाना' एक भोजपुरी मुहावरा है। जिस समय किसी के घर पुत्र पैदा होता है उस समय प्रसन्नता के कारण थाली बजायी जाती है। पुत्री के जन्म पर थाली नहीं बजायी जाती। अतः 'छीपा बजाना' पुत्र की उत्पत्ति का द्योतक है। विवाह तथा कथा आदि में एक साथ ही स्त्री-पुरुष मण्डप में बैठते हैं। उस काल में एकाग्र चित्त होकर बैठना होता है। अतः 'चौका बैठना' यह मुहावरा इस घटना की ओर संकेत करता है।

स्त्री-पुरुष का विवाह होते समय दोनों के कपड़ों को लेकर आपस में गाँठ बाँध देते हैं। यह दम्पत्ति के अभिन्न प्रेम का द्योतक है। इस अर्थ को द्योतित करने वाला मुहावरा है 'गठ जोड़ाव करना'। भोजपुरी में एक दूसरा मुहावरा है 'गोतरुचार करना' जिसका अभिप्राय है गाली-गलौज करना। यह संस्कृत के 'गोत्रोच्चारण' का अपभ्रंश रूप है। विवाह के समय वर-कन्या की वंशावली का वर्णन वैदिक किया करते हैं जिसे 'गोत्रोच्चारण' कहते हैं। इसीलिए जब कोई किसी के बाप, दादे का नाम लेकर गाली देने लगता है तब इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है।

विवाह के पश्चात् कन्या का भाई मिट्टी के बड़े मटके—जिसे कुण्डा कहते हैं—में मिठाई भरकर बहिन के घर आता है। इससे सम्बद्ध मुहावरा है 'कुण्डा लेकर आना' जिसका अभिप्राय है कोई सौगात लेकर आना।

'घंट बाँधना' भी मुहावरा है जो उस प्रथा को द्योतित करता है जो मृत्यु के पश्चात् जलाञ्जलि देने के लिए पीपल के पेड़ में मटका बाँधकर की जाती है।

स्त्रियों के व्रतों का उल्लेख भी कुछ मुहावरों में पाया जाता है। स्त्रियाँ कातिक शुक्ल द्वितीया—जिसे भातृ द्वितीया भी कहते हैं—के दिन 'गोधन' की गोबर की मूर्ति बनाकर उसे ओखल में खूब कूटती है। इसी प्रथा की ओर संकेत करता हुआ यह मुहावरा है 'गोधन कूटना' जिसका अर्थ है खूब पीटा जाना।

कुछ कहावतों में पौराणिक कथाओं का उल्लेख पाया जाता है। 'चउथी के चान देखल' एक भोजपुरी मुहावरा है जिसका अभिप्राय है दोष रहित मनुष्य को व्यर्थ में कलंकित करना। भाद्र मास की शुक्ला-चतुर्थी को चन्द्रमा का दर्शन निषिद्ध माना जाता है। एक पौराणिक कथा के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ने इस दिन चन्द्र-दर्शन कर लिया था। फलस्वरूप उन्हें मणि चुराने का दोष लगा। इसी पौराणिक कथा की ओर उपर्युक्त मुहावरा

सकेत करता है। 'कापारे पर ब्रह्म चढ़ल' मुहावरे का अर्थ है अत्यन्त क्रोधित होना। अकाल मृत्यु से मरा हुआ ब्राह्मण 'ब्रह्म' कहलाता है जो भूतों की एक योनि है। जब वह किसी के सर पर चढ़ता है तब आविष्ट व्यक्ति हाथ पैर पीटता हुआ बक् बक् करने लगता है। वह क्रोध में आकर अनाप शनाप बकता है। अतः इसका अभिप्राय है क्रोध में आकर असम्बद्ध प्रलाप करना।

ऐतिहासिक तथ्यों के ऊपर भी इन मुहावरों से प्रचुर प्रकाश पड़ता है। 'अँगूठा दिखाना' हिन्दी का प्रचलित मुहावरा है जिसका अभिप्राय है इन्कार करना। यह मुहावरा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काल की उन परि-स्थितियों की ओर सकेत करता है जिनके कारण ढाके के बारीक मलमल बुनने वाले जुलाहों का अँगूठा काट लिया जाता था। 'कजड़ भइल' मुहा-वरा कजूस होना या दरिद्र स्वभाव का होना इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। कजड़ एक खानाबदोश जाति है जो स्थान-स्थान पर घूमा करते हैं। 'उजुबुक भइल' का अर्थ है—मूर्ख होना। यह मुहावरा सभवतः रूस देश के अन्तर्गत उजबेकिस्तान में निवास करने वाली उजबेक जाति की ओर सकेत करता है जो पहले असभ्य थी। अत. उपर्युक्त मुहावरों में ऐतिहासिक तथ्यों की झलक हमें देखने को मिलती है।

अनेक जातिगत विशेषताएँ भी इनसे परिलक्षित होती है। "कोइरी का देवता' का अभिप्राय है सीधा-सादा होना। कोइरी एक जाति विशेष है जो शाक पैदा करने और बेंचने का काम करती है। ये सज्जन और सीधे होते हैं। 'करटाहा' महाब्राह्मणों की दूसरी संज्ञा है जो मृत्यु के पश्चात् दान लेते हैं। ये बड़े भोजन-भट्ट होते हैं और बड़ी निर्लज्जता के साथ माँग माँग कर भोजन करते हैं। अतः 'करटाहा भइल' का अर्थ है वेहद लालची, निर्लज्ज और वृकोदर होना।

कहावतों में शकुन-विचार की सामग्री भी उपलब्ध होती है। 'गीदड़ बोलना' या 'उरुवा' (उल्लू) बोलना मुहावरे का भाव उस स्थान का उजाड़ हो जाना समझना चाहिए। जैसे उस घर में अब गीदड़ बोल रहे हैं। 'कौआ बोलना' प्रियतम के आगमन की शुभ सूचना देता है। 'आँखि फरकल' और 'हाथ फरकल' प्रिय समागम का सूचक है। 'खड़लिचि (खजन पक्षी) देखल' सौभाग्य का परिचायक है। गूलर का फूल होना या लेना भी मुहावरा है। गूलर में फूल नहीं होता। अतः इसका अथ है असभव वस्तु की प्राप्ति करना।

मुहावरों में जन-जीवन का चित्रण किस प्रकार हुआ है इसका वर्णन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। यदि इन मुहावरों का सम्यक् अध्ययन किया जाय तो लोक-संस्कृति सम्बन्धी बहुत सी बातें ज्ञात हो सकती हैं। अतः इस बात की आवश्यकता है कि इनका संकलन तथा सम्पादन वैज्ञानिक रीति से किया जाय हिन्दी की विभिन्न बोलियों में प्रचलित मुहावरों का भी संग्रह करना चाहिए। विद्वानों का ध्यान अब इधर आकृष्ट हो रहा है, यह शुभ लक्षण है।

३. पहेलियाँ

मानव प्रवृत्ति रहस्यात्मक है। जब मनुष्य यह चाहता है कि उसके कथन को सर्व साधारण न समझ सकें तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो जन साधारण की समझ से परे होती है। यही पहेली का रूप धारण कर लेती है। मनुष्य की गोपनीय प्रवृत्ति ही पहेलियों की उत्पत्ति का कारण है। डा० फ्रेजर ने लिखा है कि पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती होगी[1]। बातचीत के प्रसंग में भी साधारणतया यह देखा जाता है कि जब हम यह नहीं चाहते कि हमारी बात सभी लोग जान जाँय तब हम ऐसी कथन पद्धति का आश्रय लेते हैं जो दुर्बोध होती है। यही पहेली बन जाती है। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में रूपकालंकार का सहारा लेकर जिन वस्तुओं का वर्णन हुआ है वे सब इसी कोटि में आयेंगी। हिन्दी के महाकवि सूरदास जी ने अनेक दृष्टिकूटों की रचना की है[2] जिनका अर्थ समझना टेढ़ी खीर है। इन दृष्टिकूटों को भी हम पहेली के अन्तर्गत रख सकते हैं।

उत्पत्ति

किसी व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा के लिए भी पहेलियों का प्रयोग किया जाता है। भारतवर्ष के मूल निवासियों में मध्यप्रदेश के मँडला जिले के गोंड, प्रधान तथा बिरहोर जातियों में विवाह के अवसर पर पहेली पूछना (बुझाना) एक आवश्यक कार्य है[3]। भोजपुरी प्रदेश में विवाह के समय

---

१ डा० फ्रेजर डि गोल्डेन बाऊ भाग ६, पृ० १२१

२ शुक्ल भ्रमर गीत सार की भूमिका

३ मैन इन इण्डिया, भाग १३ संख्या ९, पृ० ३१६

जब वर वैवाहिक विधि के पश्चात् 'कोहबर' में प्रवेश करने लगता है तब घर की स्त्रियाँ उससे पहेलियाँ पूछती हैं जिन्हें 'छेंका' कहा जाता है[१]। इन पहेलियों का सन्तोष जनक उत्तर देने पर ही वर 'कोहबर' में प्रवेश कर सकता है अन्यथा नहीं। यह प्रथा समवतः वर की विद्वता अथवा बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए ही की जाती है।

पहेलियों की उत्पत्ति का तीसरा कारण मनोरजन भी है। किसान को दिन भर कठोर परिश्रम करते रहने से तनिक भी अवकाश नहीं मिलता। भीषण श्रम से उसका शरीर और मस्तिष्क चूर-चूर हो जाता है। अतः रात्रि में भोजन आदि से निवृत्त होकर वह इन पहेलियों को बुझाकर अपने दिल और दिमाग को ताजा करता है। वह थोड़ी देर के लिए शारीरिक श्रम को भूल जाता है तथा शान्ति और सुख का अनुभव करता है। गाँवों में जहाँ सिनेमा नहीं है, जहाँ थियेटर का अत्यन्त अभाव है, जहाँ मनोरजन के कोई भी अन्य साधन उपलब्ध नहीं है वहाँ ये पहेलियाँ इन कृषकों के मनोरजन के अनन्यतम साधन हैं।

परम्परा

पहेलियों को सस्कृति में 'प्रहेलिका' कहा जाता है। इनकी परम्परा बहुत प्राचीन है। वैदिक काल में भी इनकी सत्ता का पता चलता है। अश्वमेध यज्ञ में तो यह अनुष्ठान का एक भाग ही समझा जाता था। अश्व की वास्तविक बलि से पूर्व 'होता' और 'ब्राह्मण' 'ब्रह्मोदय' (प्रहेलिका) पूछा करते थे[२]। इन्हें पूछने का केवल इन दो को ही अधिकार था।

वैदिक ऋषियों ने रूपकालकार का आश्रय लेकर अनेक ऐसे ऋचाओं की रचना की है जो अर्थ की दुर्बोधता के कारण रहस्यात्मक बन गई हैं। जा प्रहेलिका के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती हैं। ऋग्वेद का यह प्रसिद्ध मंत्र है।

"चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य'
त्रिधा बद्धोवृषभो रोरवीति
महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥"

उपर्युक्त मन्त्र में वर्णित 'वृषभ' कौन है इसके विषय में विद्वानों

---

१ डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन

२ डा० सत्येन्द्र : ब्र० लो० सा० अ०

में बड़ा मतभेद है। भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपने अपने मत के अनुसार इसके विभिन्न अर्थ किये हैं। यह उपर्युक्त ऋचा निश्चय ही पहेली है जो जन साधारण की समझ में नहीं आ सकती। 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' इस वैदिक ऋचा के द्रष्टा ऋषि ने वास्तव में विद्वानों को इसके अभिप्राय को समझने के लिए चुनौती दी है। उपनिषदों की भाषा भी कुछ कम रहस्यात्मक नहीं है। नचिकेता ने यम से उस रहस्यमय तत्व को बतलाने का आग्रह किया है जिसको जान लेने या पाने से मनुष्य अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। नचिकेता का प्रश्न एक पहेली ही है जिसको सुलझाने को यम तैयार नहीं था।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इस संसार की सृष्टि का जो वर्णन किया है वह बहुत ही गूढ़ है। उन्होंने कहा है कि जो इस रहस्य को समझ सकता है वही 'वेदवित्' है।

"ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥"

यहाँ संसार की उपमा पीपल के वृक्ष से दी गई है।

महाभारत में यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद उपलब्ध होता है जिससे प्राचीन काल में पहेलियों का स्वरूप कैसा था इसका पता चलता है। यक्ष किसी तालाब का अधिष्ठातृ देवता था। वहाँ पानी पीने के लिए नकुल, सहदेव आदि गये। सभी से यक्ष ने चार प्रश्न किये। परन्तु किसी से उसका उत्तर देते न बन पड़ा। जब उस तालाब से जल पीने या लाने के लिए युधिष्ठिर गये तब उनसे भी उसने यही चार प्रश्न किये जो निम्नांकित हैं:—

"का वार्ता? किमाश्चर्यं?
कः पन्था? कश्च मोदते।
इति मे चतुरः प्रश्नान्,
उत्तरं दत्वा जलं पिब॥"

अर्थात् इस संसार में नयी बात क्या है? आश्चर्य की कौन सी वस्तु है? कौन सा प्रशस्त मार्ग है और इस संसार में सुख पूर्वक कौन निवास करता है? युधिष्ठिर ने क्रमशः इन प्रश्नों का बड़ा सुन्दर उत्तर दिया है।

"अस्मिन् महामोहमये कटाहे, सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वी परिघट्टनेन, भूतानि काल पचतीति वार्ता॥१॥"

११

"अहनि अहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम् ।
शेषा स्थातुमिच्छन्ति, किमाश्चर्यमतः परम् ॥२॥"
"वेदा विभिन्ना स्मृतयो विभिन्नाः, नैको मुनिर्यस्य वचःप्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्था ॥३॥"
पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा, शाकं पचति वै गृहे ।
अनृणी चाप्रवासी च, स वारिचर ! मोदते ॥४॥

संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की पहेलिका प्रचुर संख्या में पायी जाती हैं जिन्हें अन्तर्लापिका और वहिर्लापिका कहते हैं। 'सुभाषित रत्न भाण्डागारम्' में इनका संग्रह विस्तार से उपलब्ध होता है। कुछ पहेलियाँ ऐसी हैं जिनमें केवल प्रश्न किया गया है और उनका उत्तर बाहर से देना पड़ता है, जैसे :—

"पंचभर्त्री न पाञ्चाली, द्विजिह्वा न च सर्पिणी ।
कृष्णमुखी न मार्जारी, य जानाति सः पण्डित ॥

इसका उत्तर है लेखनी जिसमें ऊपर लिखी सभी बातें ठीक-ठीक घटती हैं। कुछ पहेलियाँ ऐसी है जिनमें प्रश्न और उत्तर एक ही में मिले हुए हैं। चतुर मनुष्यों का यह कार्य है कि वे उन प्रश्नों के भीतर से ही उन पहेलियों का उत्तर निकालें। यहाँ एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा —

"का काशी, का मधुरा, का शीतल वाहिनी गङ्गा ।
कं संजघान कृष्ण., कं बलवन्त न वाधते शीतम् ॥"

यह एक पहेली है जिसमें प्रश्न के भीतर ही उसका उत्तर भी अन्तर्निहित है। प्रश्नकर्ता पूछता है :—

प्रश्न—का मधुरा—(मधुर कौन सी वस्तु है ?)
उत्तर—काम धुरा—(कामदेव की धुरा या (चक्र)
प्रश्न—का शीतल वाहिनी गगा—?
(शीतल जल वाली गंगा कहाँ है ?)
उत्तर—काशी तल-वाहिनी गगा
(अर्थात् काशी नगरी के नीचे (पास) बहने वाली गगा)
प्रश्न—क सजघान कृष्ण (कृष्ण ने किसको जान से मार डाला ?)
उत्तर—कस जघान कृष्णः (कृष्ण ने कंस को जान से मार डाला)
प्रश्न—क बलवन्तं न बाधते शीतम् ? (किस बलवान् व्यक्ति को जाड़ा नहीं लगता ?)

उत्तर—कम्बलवन्तं न बाधते शीतम् (जिसके पास ओढ़ने के लिए कम्बल है उसको जाड़ा नहीं सताता)।

इस प्रकार सभंग श्लेष के द्वारा एक ही श्लोक में प्रश्न और उत्तर दोनों मिले हुए हैं। कहीं कहीं ऐसा होता है कि श्लोक के तीन चरणों मे तो प्रश्न किये जाते हैं और चतुर्थ चरण में सबका उत्तर एक ही साथ दे दिया जाता है। जैसे—

"किमायुष्यं लोके, जयन्तः कस्य वै सुतः।
कथं विष्णुपदं प्रोक्तं, तक्रं, शक्रस्य, दुर्लभम्॥"

इसमें प्रथम तीन चरणों मे निम्नांकित तीन प्रश्न किये गये हैं और चौथे में इन तीनों का क्रमशः उत्तर दिया गया है।—

प्रश्न—संसार में आयु करने वाली कौन सी वस्तु है?

उत्तर—तक्रम् (दही)

प्रश्न—जयन्त किसका लड़का था?

उत्तर—शक्रस्य (इन्द्र का)

प्रश्न—विष्णु का स्थान कैसा कहा गया है?

उत्तर—दुर्लभम् (अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होने योग्य)

कुछ प्रहेलिकाओं में क्रिया-पद गुप्त रहता है। अर्थात् क्रिया-पद तो होता है परन्तु वह वाक्य में इस प्रकार से मिला रहता है कि स्पष्ट नहीं जान पड़ता। उदाहरण—

"विराटनगरे तात! कीचकादपि कीचकम्।
अत्र क्रियापदं गुप्तं, यो जानाति स पण्डितः॥"

इसमें क्रिया दिखाई नहीं पड़ती। 'विराट' शब्द इस नाम के राजा को द्योतित करता है परन्तु इसी में क्रिया छिपी पड़ी है। विराट में सन्धि है—विः+अाट (विः—पक्षी, अाट—घूमते थे)। अतः इस पहेली का अर्थ हुआ "एक बाँस से दूसरे बाँस पर पक्षी घूमते थे।" इसी प्रकार से अन्य बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

हिन्दी में अमीर खुसरो की मुकरियाँ बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उन्होंने पुराने ढंग की सुन्दर मुकरियाँ लिखी हैं। इस मुकरियों की परम्परा भी संस्कृत में पाई जाती है। जैसे :—

"काले वारिधराणां, अपतितया नैव शक्यते गन्तुम्
उत्कण्ठितासि भद्रे, नहि नहि सखि! पिच्छिलः पन्थाः"

कोई युवती स्त्री कहती है कि वर्षाकाल में बिना पतन (गिरना,

'पथ भ्रष्ट होना) हुए रहना कठिन है। इस पर उसकी सखी पूछती है कि क्या तुम पति-समागम के लिए उत्कंठित हो ! तब वह निषेध करती हुई कहती है नहीं नहीं सखि ! मैं तो यह कह रही हूँ कि रास्ते में बड़ी फिसलन हो गई है। ये मुकरियाँ भी पहेली के ही अन्तर्गत समझनी चाहिएँ।

पहेलियाँ वागविलास की वस्तु हैं। ये बुद्धि परीक्षा के अन्यतम साधन हैं। जिस प्रकार आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रश्नों द्वारा किसी बालक की बुद्धि का माप (Intelligence Test) करते हैं उसी प्रकार से प्राचीन काल में मनुष्यों की बुद्धि परीक्षा के लिए इनकी रचना की गई होगी। इन पहेलियों के द्वारा बुद्धि का व्यायाम भले ही होता है, उनसे थोड़ी देर के लिए किसी का मनोरजन भले ही हो जाता है परन्तु इनसे रस की निष्पत्ति नहीं होती। अत. काव्य की दृष्टि से इनका विशेष महत्व नहीं है। अपनी दुर्बोधिता के कारण ये रस की चर्वणा में बाधा उपस्थित करती हैं। इसी लिए मम्मटाचार्य ने इन्हें अलकार की कोटि में नहीं रखा है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में स्पष्ट ही लिखा है कि :—

"रसस्य परिपन्थित्वात् नालंकार प्रहेलिका "

अतः ये कथन के सुन्दर प्रकार भले ही हो परन्तु अलकार की श्रेणी में इन्हें कदापि स्थान नहीं मिल सकता।

पहेलियों के प्रकार

पहेलियों के अनेक प्रकार हैं। जन जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सभी वस्तुओं के विषय में पहेलियाँ पाई जाती हैं। इनको साधारणतया सात भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) खेती सम्बन्धी पहेलियाँ
(२) भोज्य पदार्थ सम्बन्धी पहेलियाँ
(३) घरेलु वस्तु सम्बन्धी पहेलियाँ
(४) प्राणि सम्बन्धी पहेलियाँ
(५) प्रकृति सम्बन्धी पहेलियाँ
(६) शरीर सम्बन्धी पहेलियाँ
(७) प्रकीर्ण पहेलियाँ

इनमें घरेलू और प्राणि सम्बन्धी पहेलियों की प्रधानता है जो घर में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं—जैसे दीपक, मूसल, लोढ़ा, वेलना, खाट, ताला-चाभी, कुर्ता, धोती आदि—के सम्बन्ध में पाई जाती है। सुई दैनिक

व्यवहार में आने वाली वस्तु है। इसके सम्बन्ध में यह भोजपुरी पहेली कही जाती है।[1]

"हती मोटी गाजी मियां, हतवत पोंछि।
भागल जाली गाजी मियां, धरिहे पोंछि॥"

ग्रामीण लोग कन्द (शकरकन्दी) का प्रयोग अधिक किया करते हैं। गरीबों की उदरदरी की पूर्ति का यह अनन्य साधन है। इस के सम्बन्ध में निम्न पहेली प्रसिद्ध है :—

लाल छड़ी भुंइ में गड़ी।
सासु ले पतोहि बड़ी॥ (उत्तर-कन्द)

कन्द सफेद और लाल दोनों तरह का होता है अतः उसे 'लाल छड़ी कहा' गया है। मूली के सम्बन्ध में यह उक्ति कितनी सुन्दर है।

एक बाग में ऐसा हुआ।
आधा बगुला आधा सुआ॥ (मूली)

लकड़ी काटने वाली आरी की उपमा पहेलियों में चिड़िया से दी गई है। कितनी सुंदर पहेली है :—

"एक चिरइया चटनी, काठ पर बइठनी।
काठ खाले गुबुर गुबुर, हगेले भुरुकनी॥"

प्रकृति के विभिन्न पदार्थों को लेकर भी पहेलियाँ उपलब्ध होती हैं आकाश के सम्बन्ध में यह पहेलो बड़ी प्रसिद्ध है।[3]

"एक थाल मोतिन से भरा,
सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर थाल वह फिरै,
मोती उससे एक न गिरै॥"

बादल को हाथ-पैर नहीं होता फिर भी वह पहाड़ पर चढ़ जाता है। इसका उल्लेख नीचे की पहेली में किया गया है।[4]

"बे हाथ क बे गोड़ क पहाड़ चढ़ा जाथै।
देखा तो बनखंडी बाबा, कौन जनारी जाथै॥" (बादल)

---

१ लेखक का निजी संग्रह
२ वही
३ त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य, पृ० २८१
४ वही

बबूल गाँवों में बहुत पाया जाता है। पहेलियों में उसका भी स्मरण किया गया है।

"सावन फूलै, चैत में फरै, ऐसो रूख बोई का करै।
घासी कहै सवासी खेरे, है नियरे पर पैहो हेरे॥"

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है इन पहेलियों का प्रधान उद्देश्य मनोरजन है। बहुत सी ऐसी पहेलियाँ है जिनमें हास्य उत्पन्न करने के लिए शब्दों की योजना की गई है। ढेकुल—जिसके द्वारा कुयें से जल निकाल कर खेत सींचा जाता है—के सबंध में यह भोजपुरी पहेली कही गई है।[1]

"आकास गइले चिरई, पाताल गइले बच्चा।
हुचुक मारे, चिरई, पियाब मोर बच्चा॥"

व्रज की यह पहेली भी ऐसी ही है जिसके पढ़ने से हास्य रस की उत्पत्ति होती है।[2]

"चार पाग की चापड़ चुप्पो, वापै बैठी लुप्पो।
आई सप्पो लै गई लुप्पो, रह गई चापड़ चुप्पो॥"

इसका भाव यह है कि भैंस पर मेढ़की बैठ गई और मेढ़की को चील लेकर उड़ गई। यहाँ चापड़ चुप्पो भैंस के लिए, लुप्पों मेढ़की के लिए और सप्पो चील के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

परन्तु शुद्ध मनोरजन के अतिरिक्त कुछ पहेलियों में गणित सबधी कुछ प्रश्न भी उपलब्ध होते हैं जिनको बतलाने में बालकों को दिमागी कसरत करनी पड़ती है।[3]

उदाहरण—

"चार आना बकरी आठ आना गाय।
चार रुपया भैंस बिकाय, बीसै रुपया बीसै जीव॥

अर्थात् बीस रुपया में बीस जानवर खरीदने हैं जिनका मूल्य उक्त प्रकार से है। इसका उत्तर है तीन भैंस, पन्द्रह गाय और दो बकरी।

एक दूसरी पहेली है जिसमें एक मन अन्न चार बाटों से पूरा-पूरा तौलना है जिससे किसी प्रकार कमी न पड़ने पाये।—

---

१ लेखक का निजी संग्रह

२ सत्येन्द्र : व्रज लो० सा० अ०, पृ० ४२६

३ त्रिपाठी हमारा ग्राम साहित्य पृ० २८३

"एक मन दाना चारि बाट।
जितना तौलो परै न घाट॥"

(उत्तर—१, ३, ६, २७ सेर के बाट)

किसी-किसी पहेली में पौराणिक उपाख्यानों की ओर संकेत रहता है। जब तक कोई व्यक्ति उस कथा को नहीं जानता तब तक उत्तर देने में असमर्थ रहेगा :—

"स्याम बरन मुख उज्जर कित्ते?
रावन सीस मदोदरि जित्ते।
हनुमान पिता करि लैहौं,
तब राम पिता भरि देहौं॥"

प्रश्न—उड़द का क्या भाव है?

उत्तर—जितना रावण और मन्दोदरी का सिर है अर्थात् १०+१=११ सेर।

प्रश्न—मैं हवा में फटक कर (साफ कर) लूँगा।

उत्तर—तब पिता (दश+रथ) के बराबर १० सेर दूँगा।

इस पहेली का उत्तर देने में यह जानने की आवश्यकता है कि राम और हनुमान के पिता कौन थे तथा रावण के कितने सिर थे।

किसी जाति विशेष की विशेषताओं की ओर भी कहीं-कहीं संकेत किया गया है। ब्राह्मणों की भोजन-प्रियता प्रसिद्ध है। मथुरा के चौबे लोगों ने इस क्षेत्र में काफी कीर्ति कमाई है।

अगहन पइठ चैत के प्याट,
तेहि पर पण्डित करैं कप्याट।
है नेरे पैहो ना हेरे,
पण्डित कहै बिगह पुर केरे।

इसका उत्तर है—कचौरी। एक भोजपुरी कहावत से इस कथन की पुष्टि होती है जिसमें कहा है कि ब्राह्मण लोग चिउड़ा और दही खाने के लिए चौबीस मील तक चले जाते हैं और यदि पूरी खाने को मिले तो वे लोग छत्तीस मील तक का धावा बोलते हैं।

"चिउड़ा दही बारह कोस,
लुचुई अठारह कोस।

---

१ त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य, पृ० २८२

आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति भी सुन्दर रीति से की गई है। पति की मृत्यु पर स्त्रियों के सती होने का उल्लेख बहुत पाया जाता है, परन्तु इनमें 'बत्ती' के सती होने का वर्णन हुआ है।

"नाजुक नारि पिया संग सोती,
अंग सो अंग मिलाय।
पिय को बिछुड़त जानि के,
संग सती हो जाय॥

इसका उत्तर है बत्ती और तेल।

इन पहेलियों के लेखकों का नाम कहीं उपलब्ध नहीं होता। किसी-किसी में सवासी खेरे के घासीराम का नाम उपलब्ध होता है। यथा :—

"हाथी हाथ हथिनियाँ काँधे, जात कहाँ हौ बकुचा बाँधे।
घासी कहै सवासी खेरे, है नियरे पै पैहो हेरे।

हिन्दी की प्रत्येक बोली में हजारों की संख्या में पहेलियाँ पाई जाती हैं परन्तु इनके कर्ता का कुछ पता नहीं चलता। पहेलियों का निर्माण आजकल भी जारी है। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों को लेकर अनेक पहेलियों की सृष्टि हुई है।

ढकोसले

ढकोसले पहेलियों से भिन्न होते हैं। पहेलियों में प्रश्न और उत्तर सार्थक होते हैं परन्तु इन ढकोसलों में वे सिर-पैर की ऊँट-पटाँग तथा असंभव बातें कही जाती हैं। इन ढकोसलों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन होता है। ये हास्यरस की सृष्टि करते हैं। कितना भी मनहूस आदमी क्यों न हो इनको सुनकर वह एक बार खिलखिलाकर हँस पड़ेगा। जैसे[१]—

ऊँट पनारे बहि चला, मैं जानों पिय मोर।
हाथ नाइ पिय ढूकन लागी, मिला कठौती का बेंट॥

इसमें सभी बातें असम्बद्ध प्रलाप की भाँति कही गई हैं। दूसरा उदाहरण—

"ऊँटिन कहै ऊँट सों, सुनु पिय मेरी बात।
राजा एक पद्मिनी हेरै, कोउ कोउ मोहि क सुगात॥"

ढकोसलों में जितनी ही ऊँट पटाँग बाते कही जाँय उतना ही

---

१ त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा०, पृ० २६४

वह सुन्दर समझा जाता है। हिन्दी में अमीर खुसरो के ढकोसले बहुत प्रसिद्ध है।

संस्कृत के नाटककारों ने विदूषक के मुख से अनेक स्थानों पर ऐसी असंबद्ध उक्तियाँ कहलाई हैं जिनको ढकोसला कह सकते हैं। शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक में शकार नामक पात्र कुछ ऐसी हास्यजनक बातें कहता है[1] कि :—

> किं स शक्रो वालिपुत्रो महेन्द्रो
>
> रम्भापुत्रः कालनेमिः सुबन्धुः।
>
> रुद्रो राजा द्रोणपुत्रो जटायुः
>
> चाणक्यो वा धुन्धुमारस्त्रिशंकुः ॥

वह वसन्तसेना से कहता है कि मैं तुम्हें उसी प्रकार से मार डालूँगा जिस प्रकार चाणक्य ने महाभारत में सीता को और जटायु ने द्रौपदी को मार डाला था।[2]

> "चाणक्येन यथा सीता, मारिता भारते युगे।
>
> एवं त्वां मोटयिष्यामि, जटायुरिव द्रौपदीम्"

कहने की यह आवश्यकता नहीं कि शकार की यह उक्ति सिर से पैर तक बेतुकी है। इसमें नाटककार का प्रधान लक्ष्य श्रोताओं तथा दर्शकों को हास्य रस में निमग्न करना है।

भोजपुरी में बहुत सी इसी कोटि की उक्तियाँ है जिनका कोई अर्थ नहीं लगता।[3]

> "हाथी चढ़ल पहाड़ पर,
>
> घिनि घिनि महुआ खाई।
>
> चीटी मरलसि बाघ के,
>
> उलुटा पैर उठाई॥"

ब्रज में प्रचलित अनेक पहेलियों में भी यही बात पाई जाती है जैसे[4]—

---

१ मृच्छकटिक, अंक ८ श्लोक २४

२ वही. अंक ८ श्लोक २५

३ लेखक का निजी संग्रह।

४ ब्र० लो० सा० अ०

आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति भी सुन्दर रीति से की गई है। पति की मृत्यु पर स्त्रियों के सती होने का उल्लेख बहुत पाया जाता है, परन्तु इनमें 'बत्ती' के सती होने का वर्णन हुआ है।

"नाज़ुक नारि पिया संग सोती,
अंग सो अंग मिलाय।
पिय को बिछुड़त जानि के,
संग सती हो जाय॥

इसका उत्तर है बत्ती और तेल।

इन पहेलियों के लेखकों का नाम कहीं उपलब्ध नहीं होता। किसी-किसी में सवासी खेरे के घासीराम का नाम उपलब्ध होता है। यथा :—

"हाथी हाथ हथिनियाँ काँधे, जात कहाँ हौ बकुचा बाँधे।
घासो कहै सवासी खेरे, है नियरे पै पैहो हेरे।

हिन्दी की प्रत्येक बोली में हजारों की संख्या में पहेलियाँ पाई जाती हैं परन्तु इनके कर्ता का कुछ पता नहीं चलता। पहेलियों का निर्माण आजकल भी जारी है। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों को लेकर अनेक पहेलियों की सृष्टि हुई है।

ढकोसले

ढकोसले पहेलियों से भिन्न होते हैं। पहेलियों में प्रश्न और उत्तर सार्थक होते हैं परन्तु इन ढकोसलों में वे सिर-पैर की ऊँट-पटाँग तथा असंभव बातें कही जाती हैं। इन ढकोसलों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन होता है। ये हास्यरस की सृष्टि करते हैं। कितना भी मनहूस आदमी क्यों न हो इनको सुनकर वह एक बार खिलखिलाकर हँस पड़ेगा। जैसे[1]—

ऊँट पनारे बहि चला, मैं जानों पिय मोर।
हाथ नाइ पिय ढूढ़न लागी, मिला कठौती का बेंट॥

इसमें सभी बातें असम्बद्ध प्रलाप की भाँति कही गई हैं। दूसरा उदाहरण—

"ऊँटिन कहै ऊँट सौं, सुनु पिय मेरी बात।
राजा एक पद्मिनी हेरै, कोउ कोउ मोहि क सुगात॥"

ढकोसलों में जितनी ही ऊँट पटाँग बाते कही जाँय उतना ही

---

१ त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा०, पृ० २६४

words and sung on two notes—a sort of soothing drone, corresponding exactly to the sound of a rocking cradle and having apparently the same effect on the nerves of the child."

छोटे से छोटे बच्चों में लय पूर्ण गीतों को सुनने की भावना जन्म जात होती है। वे उन मधुर गीतों को सुनकर सुख का अनुभव करते हैं और शीघ्र ही निद्रा देवी की गोद में चले जाते हैं।

इन गीतों में स्वर-साम्य को पैदा करने के लिए एक ही शब्द की बार बार आवृत्ति होती रहती है जिससे अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न हो सके। एक भोजपुरी गीत है :—

"हाल हाल बबुआ
कुरुई में ढेबुआ,
माई अकमरूआ
बाप दरबरुआ
हाल हाल बबुआ।"

इस गीत के प्रत्येक चरण के अन्तिम शब्द में एक ही प्रकार के स्वरों की उपलब्धि होती है। हाल, हाल की आवृत्ति इसी अभिप्राय से की गई है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए जिसमें समान स्वर वाले वर्णों तथा शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है[१] :—

"अरर बरर पूआ पाकेला,
चीलर खोंइछा नाचेला।
चीलर भइले चोर,
मोर बाबू के मुँहवा गोर॥"

इन गीतों की प्रधानता इनके शब्दों में ही निहित है। स्वर-प्रधान होने के कारण इनका अनुवाद किसी दूसरी भाषा में नहीं हो सकता।[२] भोजपुरी की यह लोरी लीजिए—

---

१ लेखक का निजी संग्रह

2 They donot bear translating Their charm lies in the words themselves, often half meaningless and the mono tonous cadence of mothers chant"

ग्रेस रीज—Cradle songs & nursery rhymes

"धौरी घोवी लाल लगाम।
वापै बैठ्यौ सालिग्राम॥"

इन पहेलियों और ढकोसलों का यदि सम्यक् अध्ययन किया जाय तो इनमें हिन्दू समाज, धर्म और सस्कृति की बाँकी झाँकी देखने को मिल सकती है। अतः लोक साहित्य के इस अग की ओर भी अधिकारी विद्वानों को ध्यान देना चाहिए।

४. पालने के गीत (Cradle Songs)

उत्पत्ति

पालने के गीत उतने ही प्राचीन हैं जितना मानव का इस पृथ्वी पर आविर्भाव। अतः इन गीतों की परम्परा चिर प्राचीन है। शिशु जब बच्चा रहता है, तब माँ उसको थपकियाँ देकर सुलाती है। वह उसे पालने पर सुलाकर लय से गाकर गीत सुनाती है। यही गीत 'पालने के गीत' कहे जाते हैं। इन गीतों का कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि ये अर्थ-प्रधान न होकर लय प्रधान होते हैं। इनमें ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है जो श्रोत्र-सुखद होती है और जो उच्चारण-साम्य के कारण लय युक्त है। ग्रेस रीज़ ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि :—[1]

"They begin with two line Nenna, sung on two notes in a monotonous chant Their charm lies in the monotonous Cadence of the mothers chant."

माताएं बालक को सुलाते समय निन्नी, नेन्ने, नुन्नी आदि को बडे आरोह अवरोह के साथ लय के साथ गाती हैं। इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता। इनकी प्रधान मनोहरता माता के स्वरयुक्त उच्चारण में हैं।

इन पालने के गीतों में दो या तीन से अधिक शब्द नहीं होते। गाये जाते हुए इन गीतों की आवाज़ झुलाये जाते हुए पालने की आवाज के समान होती हैं। इनका शिशु के स्नानुयों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस सबध में ग्रेस रीज का निम्नाकित मत सटीक एव उपयुक्त जॅचता है।[2]

"The best lullaby would seem to be that sung naturally by peasant mothers with but two or three

---

1 Cradle Songs and Nursery Rhymes

2 Do

O birdeen his eyes,
In these blue eyes I see."

एक दूसरे गीत में माता कहती है—मेरे प्यारे शिशु ! आवो और माँ की गोद में खेलो तुम्हारा दगाबाज़ बाप यहाँ से भग गया है।

"But Come to mother, babe ! and play
For father false is fled away."

संस्कृत में लोरियाँ

पालने के गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। महाभारत में मदालसा का उपाख्यान पाया जाता है जो अपने बाल शिशु को सुलाते समय गीत गाती है। इन गीतों में दर्शन शास्त्र-अद्वैत वेदान्त—के गूढ़ तत्वों का समावेश पाया जाता है। मदालसा अपने शिशु अलर्क को सम्बोधित करती हुई कहती है कि ए पुत्र ! तुम शुद्ध, बुद्ध और निरंजन हो। तुम संसार की माया से रहित हो। तुम मोह निद्रा को छोड़ो :—

"त्वमसि तात ! शुद्ध बुद्ध ! निरंजन !
भवमायावर्जित ज्ञाता।
भव स्वपनं च मोहनिन्द्रां त्यज,
मदालसाह सुतं माता ॥"

रोते हुए बच्चे को सम्बोधित कर मदालसा कहती है कि तुम नाम से रहित हो। न तो यह शरीर तुम्हारा है और न तुम इसके हो। अत. क्यों रोते हो ?—

"नामविमुक्त शुद्धोऽसि रे सुत !
मया कल्पितं तव नाम।
न ते शरीरं न चास्य त्वमसि
किं रोदिषि त्वं सुखधाम !"

मदालसा कहती है कि ब्रह्म सत्य है, वह मल रहित है ज्ञान स्वरूप है और संसार का स्वामी है।

"विमलविज्ञानविश्वेश्वरव्यापक,
सत्य ब्रह्म त्वमसि ज्ञाता।
प्राह मदालसाऽलर्कसुतं प्रति,
शास्त्रप्रसिद्धा वरमाता ॥"

इससे पता चलता है भारतीय लोरियों का स्तर कितना ऊँचा होता था और उनमें तत्त्वज्ञान का कितना गहरा पुट था।

"चाना मामा ! आरे आव पारे आ'व,
नदिया किनारे आव,
सोने के कटोरवा में दूध भात लेले आव,
बबुआ के मुंहवा में घुट्टक, घुट्टक, घुट्टक"

"आरे आव, पारे आव आर किनार आव" इन शब्दों में जो नाद सौन्दर्य है वह इनके अनुवाद में अवश्य ही नष्ट हो जायेगा।

अंग्रेजी के पालने के इस गीत में भी यही तत्व निहित है।

By By Lulla lullaby
lullaby oh lullaby

दूसरा उदाहरण—

Ay lilly o lilly lally
All i the night sae early

इन गीतों में माता का पुत्र के प्रति स्वाभाविक प्रेम छलका पड़ता है। पुत्र वत्सला माँ अपने शिशु को बड़े प्रेम से सुलाती और पुचकारती है। संसार की सभी जातियों के पालने के गीतों में पुत्र-वत्सलता तथा प्रेम अत्यन्त सीधे सादे शब्दों में व्यक्त किया गया है।[1] भोजपुरी का यह उदाहरण लीजिए जिसमें माँ अपने पुत्र से कहती है कि ए पुत्र! तुम किस चीज़ के बने हुए हो? कभी तुम चाँदी के और कभी सोने के बने हुए दिखाई देते हो :—

'ए बबुआ तू कथी के ?
खने सोना खने रूपा के
माई लवग के, बाप चउवा चन्नन के
पितिया पीतम्बर के, लोग बिराना माटी के
ए बबुआ तू कथी के,
खने सोना खने रूपा के।"

कोई अंग्रेजो विधवा एव परित्यक्ता माता अपने शिशु से कहती है कि ए पुत्र! तुम्हारी नीली आँखों में मैं तुम्हारे पिता की आँखों को देखती हूँ[2]—

"He calls me, he cries
who is father to thee

---

१. लेखक का निजी संग्रह

२. ग्रेसरीज —वही

O birdeen his eyes,
In these blue eyes I see."

एक दूसरे गीत में माता कहती है—मेरे प्यारे शिशु ! आवो और माँ की गोद में खेलो तुम्हारा दगाबाज़ बाप यहाँ से भग गया है।

"But Come to mother, babe ! and play
For father false is fled away."

संस्कृत में लोरियाँ

पालने के गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। महाभारत में मदालसा का उपाख्यान पाया जाता है जो अपने बाल शिशु को सुलाते समय गीत गाती है। इन गीतों में दर्शन शास्त्र-अद्वैत वेदान्त—के गूढ़ तत्वों का समावेश पाया जाता है। मदालसा अपने शिशु अलर्क को सम्बोधित करती हुई कहती है कि ए पुत्र ! तुम शुद्ध, बुद्ध और निरंजन हो। तुम संसार की माया से रहित हो। तुम मोह निद्रा को छोड़ो :—

"त्वमसि तात ! शुद्ध बुद्ध ! निरंजन !
भवमायावर्जित ज्ञाता।
भव स्वप्नं च मोहनिन्द्रां त्यजः
मदालसाह सुतं माता ॥"

रोते हुए बच्चे को सम्बोधित कर मदालसा कहती है कि तुम नाम से रहित हो। न तो यह शरीर तुम्हारा है और न तुम इसके हो। अत. क्यों रोते हो ? —

"नामविमुक्त शुद्धोऽसि रे सुत !
मया कल्पितं तव नाम।
न ते शरीरं न चास्य त्वमसि
किं रोदिषि त्वं सुखधाम !"

मदालसा कहती है कि ब्रह्म सत्य है, वह मल रहित है ज्ञान स्वरूप है और संसार का स्वामी है।

"विमलविज्ञानविश्वेश्वरव्यापक,
सत्य ब्रह्म त्वमसि ज्ञाता।
प्राह मदालसाऽलर्कसुतं प्रति,
शास्त्रप्रसिद्धा परमाता ॥"

इससे पता चलता है भारतीय लोरियों का स्तर कितना ऊँचा होता था और उनमें तत्वज्ञान का कितना गहरा पुट था।

"चाना मामा ! आरे आव पारे आव,
नदिया किनारे आव,
सोने के कटोरवा में दूध भात लेले आव,
बबुआ के मुंहवा में घुट्टक, घुट्टक, घुट्टक"

"आरे आव, पारे आव और किनारे आव" इन शब्दों में जो नाद सौन्दर्य है वह इनके अनुवाद में अवश्य ही नष्ट हो जायेगा।

अंग्रेजी के पालने के इस गीत में भी यही तत्व निहित है।

By By Lulla lullaby
lullaby oh lullaby

दूसरा उदाहरण—

Ay lilly o lilly lally
All i the night sae early

इन गीतों में माता का पुत्र के प्रति स्वाभाविक प्रेम छलका पड़ता है। पुत्र वत्सला माँ अपने शिशु को बड़े प्रेम से सुलाती और पुचकारती है। संसार की सभी जातियों के पालने के गीतों में पुत्र-वत्सलता तथा प्रेम अत्यन्त सीधे सादे शब्दों में व्यक्त किया गया है।[1] भोजपुरी का यह उदाहरण लीजिए जिसमें माँ अपने पुत्र से कहती है कि ए पुत्र ! तुम किस चीज़ के बने हुए हो ? कभी तुम चाँदी के और कभी सोने के बने हुए दिखाई देते हो :—

'ए बबुआ तू कथी के ?
खने सोना खने रूपा के
माई लवग के, बाप धउवा चन्नन के
पितिया पीतम्बर के, लोग बिराना माटी के
ए बबुआ तू कथी के,
खने सोना खने रूपा के।"

कोई अंग्रेजी विधवा एवं परित्यक्ता माता अपने शिशु से कहती है कि ए पुत्र ! तुम्हारी नीली आँखों में मैं तुम्हारे पिता की आँखों को देखती हूँ[2]—

"He calls me, he cries
who is father to thee

१ लेखक का निजी संग्रह
२ प्रेसरीज —वही

O birdeen his eyes,
In these blue eyes I see."

एक दूसरे गीत में माता कहती है—मेरे प्यारे शिशु ! आवो और माँ की गोद में खेलो तुम्हारा दगाबाज़ बाप यहाँ से भग गया है।

"But Come to mother, babe ! and play
For father false is fled away."

संस्कृत में लोरियाँ

पालने के गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। महाभारत में मदालसा का उपाख्यान पाया जाता है जो अपने बाल शिशु को सुलाते समय गीत गाती है। इन गीतों में दर्शन शास्त्र-अद्वैत वेदान्त—के गूढ़ तत्वों का समावेश पाया जाता है। मदालसा अपने शिशु अलर्क को सम्बोधित करती हुई कहती है कि ए पुत्र ! तुम शुद्ध, बुद्ध और निरंजन हो। तुम संसार की माया से रहित हो। तुम मोह निद्रा को छोड़ो :—

"त्वमसि तात ! शुद्ध बुद्ध ! निरंजन !
भवमायावर्जित ज्ञाता।
भव स्वपनं च मोहनिन्द्रां त्यज,
मदालसाह सुतं माता ॥"

रोते हुए बच्चे को सम्बोधित कर मदालसा कहती है कि तुम नाम से रहित हो। न तो यह शरीर तुम्हारा है और न तुम इसके हो। अतः क्यों रोते हो :—

"नामविमुक्त शुद्धोऽसि रे सुत !
मया कल्पितं तव नाम।
न ते शरीरं न चास्य त्वमसि
किं रोदिषि त्वं सुखधाम !"

मदालसा कहती है कि ब्रह्म सत्य है, वह मल रहित है ज्ञान स्वरूप है और संसार का स्वामी है।

"विमलविज्ञानविश्वेश्वरव्यापक,
सत्य ब्रह्म त्वमसि ज्ञाता।
प्राह मदालसाऽलर्कसुतं प्रति,
साश्रुप्रसिद्धा परमाता ॥"

इससे पता चलता है भारतीय लोरियों का स्तर कितना ऊँचा होता था और उनमें तत्व-ज्ञान का कितना गहरा पुट था।

"चाना मामा ! आरे आव पारे आ'व,
नदिया किनारे आव,
सोने के कटोरवा में दूध भात लेले आव,
बबुआ के मुँहवा में घुट्टक, घुट्टक, घुट्टक"

"आरे आव, पारे आव आर किनार आव" इन शब्दों में जो नाद सौन्दर्य है वह इनके अनुवाद में अवश्य ही नष्ट हो जायेगा।

अंग्रेजी के पालने के इस गीत में भी यही तत्व निहित है।

By By Lulla lullaby
lullaby oh lullaby

दूसरा उदाहरण—

Ay lilly o lilly lally
All i the night sae early

इन गीतों में माता का पुत्र के प्रति स्वाभाविक प्रेम छलका पड़ता है। पुत्र वत्सला माँ अपने शिशु को बड़े प्रेम से सुलाती और पुचकारती है। संसार की सभी जातियों के पालने के गीतों में पुत्र-वत्सलता तथा प्रेम अत्यन्त सीधे सादे शब्दों में व्यक्त किया गया है।[1] भोजपुरी का यह उदाहरण लीजिए जिसमें माँ अपने पुत्र से कहती है कि ए पुत्र ! तुम किस चीज़ के बने हुए हो ? कभी तुम चाँदी के और कभी सोने के बने हुए दिखाई देते हो :—

'ए बबुआ तू कथी के ?
खने सोना खने रूपा के
माई लवग के, बाप चउवा चन्नन के
पितिया पीतम्बर के, लोग बिराना माटी के
ए बबुआ तू कथी के,
खने सोना खने रूपा के।"

कोई अंग्रेजी विधवा एवं परित्यक्ता माता अपने शिशु से कहती है कि ए पुत्र ! तुम्हारी नीली आँखों में मैं तुम्हारे पिता की आँखों को देखती हूँ[2]—

"He calls me, he cries
who is father to thee

१. लेखक का निजी संग्रह
२ ग्रेसरोज—वही

O birdeen his eyes,
In these blue eyes I see"

एक दूसरे गीत में माता कहती है—मेरे प्यारे शिशु ! आवो और माँ की गोद में खेलो तुम्हारा दगाबाज़ बाप यहाँ से भग गया है।

"But Come to mother, babe ! and play
For father false is fled away."

संस्कृत मे लोरियाँ

पालने के गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। महाभारत में मदालसा का उपाख्यान पाया जाता है जो अपने बाल शिशु को सुलाते समय गीत गाती है। इन गीतों में दर्शन शास्त्र-अद्वैत वेदान्त—के गूढ तत्वों का समावेश पाया जाता है। मदालसा अपने शिशु अलर्क को सम्बोधित करती हुई कहती है कि ए पुत्र ! तुम शुद्ध, बुद्ध और निरंजन हो। तुम संसार की माया से रहित हो। तुम मोह निद्रा को छोड़ो :—

"त्वमसि तात ! शुद्ध बुद्ध ! निरंजन !
भवमायावर्जित ज्ञाता।
भव स्वप्नं च मोहनिन्द्रां त्यज,
मदालसाह सुतं माता ॥"

रोते हुए बच्चे को सम्बोधित कर मदालसा कहती है कि तुम नाम से रहित हो। न तो यह शरीर तुम्हारा है और न तुम इसके हो। अतः क्यों रोते हो :—

"नामविमुक्त शुद्धोऽसि रे सुत !
मया कल्पितं तव नाम।
न ते शरीरं न चास्य त्वमसि
किं रोदिषि त्वं सुखधाम !"

मदालसा कहती है कि ब्रह्म सत्य है, वह मल रहित है ज्ञान स्वरूप है और संसार का स्वामी है।

"विमलविज्ञानविश्वेश्वरव्यापक,
सत्य ब्रह्म त्वमसि ज्ञाता।
प्राह मदालसाऽलर्कसुतं प्रति,
शास्त्रप्रसिद्धा परमाता ॥"

इससे पता चलता है भारतीय लोरियों का स्तर कितना ऊँचा होता था और उनमें तत्व-ज्ञान का कितना गहरा पुट था।

बाल-गीत

बच्चों की जितनी भी क्रियायें हैं—जैसे बैठना, चलना-फिरना, कूदना किसी वस्तु को पाने के लिए मचलना, घुटनों के बल चलना तथा थिरक कर नाचना आदि—इन सभी के सम्बन्ध में लोकगीत पाये जाते हैं। बालक के समस्त क्रिया-कलापों से सम्बन्ध रखने वाले गीतों को बाल कहते हैं। गुजराती लोक-साहित्य के मर्मज्ञ श्री झवेरचन्द मेघाणी ने बाल-गीतों को निम्नांकित दस भागों में विभक्त किया है।[1]

(१) चलने-कूदने के गीत
(२) बैठे-बैठे चलने के गीत
(३) किसी वस्तु को दिखलाकर बच्चे को बुलाने के गीत
(४) ऋतु सम्बन्धी गीत
(५) पशु-पक्षी सम्बन्धी गीत
(६) चाँदनी रात के गीत
(७) कथा सम्बन्धी गीत
(८) व्रत सम्बन्धी गीत
(९) गरबा के गीत
(१०) रास के गीत

जब बालक पैरों के बल चलने में समर्थ हो जाता है, तब उसकी माता उसे चलने के लिए प्रोत्साहित करती है और गीत गा गाकर उसे चलने का अभ्यास कराती है। माँ गाती है :—

"पा ! पा ! पगली
मा मा नी डगली"

दूसरा उदाहरण[2]

"डगमग डगमग डगलां भरता
हरजी मन्दिर आव्या।
पगमा डाक जशोदा माये
गोकुल मां ज चलाव्या।

---

१ मेघाणी · लोक साहित्य भाग १, पृ० १९९
२ वही, पृ० २००

येई थेई चरण भरोने कान
आए मुक्ताफल ने पान ॥"

इस गीत को द्रुत लय में गाया जाता है।

बालक बैठे बैठे हाथों और पैरों के बल घसीट कर जमीन पर चलते हैं उस समय का गीत यह है[1]—

'अदको ददको दही दहाको
पतर भेतर चमरो डाल्यो
ऊर मूर धतुरानु फूल
शाकर गेरड़ी छोकरा।
खाई जाय खजूर"

बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तब कूदकर चलते हैं।[2] माता उनका चलना देखकर प्रसन्न होती है और गीत गाती है।

"घुंघड़ी सैयर मां रमे
घुंघड़ी काजर नी कोर।
घुंघड़ो आवानी हाय,
घुंघड़ो सैयर मा रमे॥"

हिन्दी के प्राचीन कवि और सूर तुलसी ने अनेक बाल गीतों की रचना की है जिनमें राम और कृष्ण की बाल लीलाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है।

ऋतु संबंधी गीतों को गा गा कर भी बालकों का मनोरंजन किया जाता है।[3] यथा—

"आव रे वरसाद
घेवरियो परसाद।
ऊनी ऊनी रोटली ने कारेलानु शाक
मेघ मेघ राजा।
दिवाली ना बाजरा ताजा

वर्षा के स्वागत में यह गीत बड़ा सुन्दर है।[4]

---

१ मेघाणी : लोक-साहित्य भाग १, पृ० २०१
२ वही, पृ० २००
३ वही, पृ० २०३
४ वही, पृ० २०४

"बरस रे बादड़ी
बीर ना खेत मां
(तो) घटी नु ढेबरूं
बेन ना पेट मा"

अनेक पक्षी अनेक प्रकार का कलरव करते हैं। उनकी बोली में बड़ा माधुर्य होता है। जिस का अनुकरण कर बालकों को रिझाया जाता है। यथा—[१]

घूघी फई
घांघे गई
घूघी फई
घोघे गई

तित्तिर की बोली का अनुकरण इस गीत मे हुआ है जिसमें एक अन्तर्कथा भी छिपी हुई है —

उठ बेन ! उठ बेन !
तल तेतला
तल तेतला
तल तेतला

भोजपुरी प्रदेश में पशुओं के संबंध में अनेक बाल गीत प्रसिद्ध है जिन्हें बालक प्रायः गाया करते हैं। इन गीतों का कुछ विशेष अर्थ नहीं होता। केवल बालकों के मनोरंजन के लिए ही इनकी रचना हुई है। बन्दर के संबंध में यह गीत प्रसिद्ध है।[२]

"चोकर के लिट्टी, कसइली के दाल।
ए बनरा तोर गाड़िये लाल॥

ऊँट के संबध में यह गीत लड़के बड़े चाव से गाते हैं।[३]

"ए ऊटवाँ हुगो बूटंवा दे।
भरल बाजार में पइसा ले।"

---

१ मेघाणी . वही पृ० ३०४
२ लेखक का निजी संग्रह
३ वही।

गीदड़ बड़ा डरपोक जानवर है। वह आदमी को देखकर भाग चलता है। उसकी इस विशेषता का वर्णन इस प्रकार किया गया है।[1]

"एक देखि लपटी
दुई देखि झपटी
तीनि देखि चलिहे पराइ।"

साड़ की पीठ पर 'ककुद्' होता है जिसे भोजपुरी में 'बदुरी' कहते है। बच्चे जब किसी साड़ को देखते हैं तब जोर से चिल्ला कर कहने लगते हैं कि—[2]

"साँढ़वा के पीठि पीठि बदुरी बिआहल जाला
हे हा हा, हे हा हा, हे हा हा, हे॥'

रात्रि काल में जब चाँदनी छिटकी होती है तब मातायें बालकों को चन्द्रमा को दिखलाती हैं और उसे अपने पास बुलाती है।[2]

चोंदा मामा आरे आव, पारे आव
नदिया किनारे आव।

गुजरात में भी इस प्रकार के गीत पाये जाते हैं।
यथा—

रातां बगलां रणे चड्यां
पाणी देखि पाछं वल्यां।
एक बगलानी मांगी कोदी
जाज्या रे लंकानी दोढ़ी॥

कुछ ऐसे भी गीत जिनमें कोई न कोई अन्तर्कथा सन्निहित हैं।[3]

काणी कहूँ भैया
सांभर मारा ढैया।
ढैया मारो हाट
हाट मौंथी निकल्यो भाट

भोजपुरी में भी ऐसे अनेक बाल-गीत उपलब्ध हैं जिसमें किसी न किसी अन्तर्कथा का संकेत पाया जाता है। भोजपुरी का यह बाल-गीत

---

१ लेखक का निजी संग्रह
२ वही
३ मेघाणी—लो० सा० भाग १ पृ० १०९

नीचे दिया जाता है जिसमें राम रावण के युद्ध की कथा की ओर संकेत किया गया है। मन्दोदरी रावण से कहती है कि[1]—

"अठल मठेल गोड़यों अठल मठेल
राजा घोप विसंभर तेल।
कति कसि आवे ? खेल खेलावे,
क्वन खेलि ? अठल मठेल ॥
केकरा पर मेलि ? तोहरा पर मेलि।

विभिन्न अवसरों पर गेय व्रत-गीत भी बालकों का मनोरंजन करते हैं। पौष पूर्णिमा के अवसर पर यह गीत गाया जाता है।

चाँदा तारी चानकी
मारू सुरमू।
भाई जम्यो
बेन भूखी ॥

पालने के गीतों का जन्म

पालने के गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। इनके उद्गम का स्रोत धर्म की पृष्ठ भूमि में सन्निहित है। भागवत में कृष्ण चरित का साङ्गोपाङ्ग वर्णन मिलता है। कृष्ण के पैदा होने, सूप में रख कर गोकुल पहुँचाने, घुटने के बल चलने, थिरक थिरककर नाचने दूध पीने माखन चुरा कर खाने आदि—समस्त बाल क्रीड़ाओं का उल्लेख भागवतकार ने बड़े उत्साह के साथ किया है। यशोदा माता बालक कृष्ण को पालने में झुलाती हैं और तरह तरह के गीत गाकर उन्हें सुलाने का प्रयास करती हैं। कृष्ण भगवान् तो हैं ही साथ ही वे आदर्श बालक हैं, आदर्श राजनीतिवेत्ता हैं और आदर्श लोक-रक्षक है। कृष्ण की बाल लीलाओं का जितना वर्णन महाकवि व्यास ने किया है उतना संभवतः अन्य किसी ने नहीं। महाभारत में मदालसा की कथा प्रसिद्ध है जो अद्वैत वेदान्त परक गीतों को गा गा कर अपने बालक अलर्क को सुलाया करती थी। हिन्दी के कवियों ने—विशेषकर सूरदास और अष्टछाप के भक्तों ने—भगवान् कृष्ण की शिशु क्रीड़ा का बड़ा सरस तथा सजीव वर्णन किया है। महाकवि सूरदास जी कहते हैं कि—

"यशोदा हरि पालने झुलावे,

---

१ लेखक का निजी संग्रह।
२ मेधार्थी—लो० सा० १ पृ० २०७

अंग्रेजी साहित्य में लोरियाँ

गरीब माता का गोद ही उसके बच्चे का पालना है। अत. वह अपने बालक को गोद में लेकर उसको सुलाने या रिझाने के लिए गीत गाती है। माइकेल एन्जिलो, राफेल आदि प्रसिद्ध चित्रकारों ने कुमारी माता मेरी की गोद में विराजमान बालक ईसा मसीह का बड़ा ही सुन्दर चित्र अंकित किया है। यूरोपीय साहित्य में पालने के गीत प्रचुर संख्या में उपलब्ध होते हैं। कोई विदेशी माता कह रही है कि ए मेरे बच्चे! तू चुप हो जा, तू अब सो जा। स्वर्गीय देवदूत तुम्हारी रक्षा कर रहे हैं। तुम्हारे सिर पर स्वर्गीय आशीर्वादों की अजस्र वर्षा हो रही है :—

"Hush ! my deer, lie still and slumber,
Holy angles guard thy bed.
Heavenly blessing without number,
Gently falling on thy head".

कोई गुर्जरदेशीय माँ अपने बालक से कहती है।[१]

"सूई जा वीर सूई जा
लाडकडा वीर सूई जा।
तने राम जी रमाड़े
वीर सूई जा।
तने सीता जी सुवरावे,
वीर सूई जा॥"

बालक को सुलाती हुई यूरोपीय माता कितने मधुर शब्दों में अपने भावों को प्रकट करती है।

So fair, so dear, so warm upon my boss om
And in my hands the little rosy feet.
Sleep on, my little bird, my lamb, my bossom !
Sleep on, sleep on, my sweet.

रस की दृष्टि से इन गीतों के प्रकार

यदि रस की दृष्टि से इन पालने के गीतों का विवेचन किया जाय तो यह स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि इनमें प्रधानतया तीन रसों का मिश्रण

१ मेघाणी—लो० सा० भाग १ पृ० २१६

हुआ है। ये गीत गंगा, यमुना और सरस्वती की त्रिवेणी हैं जिनका प्रवाह आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है। वात्सल्य, करुण और वीर इन रसों से इन गीतों की सृष्टि हुई है। जब माता प्रेम पूर्वक अपने लाड़िले को पालने पर सुलाती हुई गीत गाती है तब इनसे वात्सल्य रस छलका पड़ता है। उदाहरण रूप में जो गीत दिये गये हैं इनसे यह बात प्रमाणित होती है। परन्तु कुछ ऐसे भी गीत है जिनमें विषाद की गहरी रेखा खिची दिखाई पड़ती है। कोई विधवा माता अपने रोते हुए बालक को सान्त्वना देती हुई कहती है कि—

"Weep not my wanton, smile on my knee,
When thou art old, there is grief enough
[for thee
He must go, he must kiss
Child and mother, baby bliss!
For he left his pretty boy
Father's sorrow, father's joy".

कोई विदेशी स्त्री जिसका पति लम्पट है और जिसने उसका परित्याग कर दिया है अपने नन्हे शिशु से कहती है कि :—[१]

"Come little babe, come silly soul,
Thy fathers shame, thy mother's grief"

वही माता आगे चलकर कहती है कि ए बालक! तुम्हें क्या पता कि मेरे दुःख का क्या कारण है? प्यारे बच्चे! तुम मेरी गोद में आकर खेलो क्योंकि तुम्हारा विश्वासघाती एवं झूठा पिता मुझे छोड़कर भग गया है :—

"Thou little thinkest, and less dost know,
The cause of this thy mother's moan.
But come to mother babe and play,
For father false is fled away.
If any ask thy mother's name
Tell her, by love she purchased blame".

पालने के गीतों में वीर रस का परिपाक भी अच्छा हुआ है। इन

---

१ मेवाणी—लो० सा० भाग १ पृ० २२८

गीतों को गाकर सुनाने पर बालकों के अचेतन मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अंग्रेजी के इन गीतों में कितना वीर-भाव भरा हुआ है।

"O fear not the bugle, though loudly it blows,
It calls but the warders that guard thy [repose.
Their bows would be bended,
their bades would be red.
Ere the step of a foeman draws near to thy bed."

गुजराती में भी वीर रस के अनेक गीत पाये जाते हैं। शिवाजी और वनराज के विषय में ऐसे बहुत से गीत प्रसिद्ध हैं। शिवाजी के संबंध में मातायें यह गीत गाती हैं :—

"पोढ़ जो रे मारां बाल,
पोढ़ी लेजे पेट भरीने आज।
काले काला युद्ध खेलाशे
सूवा टाणु क्यांय नै रे-शे॥

वनराज के संबंध में गुजराती मातायें इस गीत को गाकर अपने बालकों को सुलाती हैं :—

"हाँ रे वीरा आजुनी रात आराम,
हाँ रे बाला आजुनी दिन विश्राम।
काले ने केसरिया रे, खाड़ा धारे खेल जो हा राज।
काले ए कुमरिया रे, अरि ने तेवा मेल जो हो राज॥

पालने के मराठी गीत

महाराष्ट्र वीर-प्रसू भूमि है। इसके कण कण में वीरता भरी हुई है। यहाँ के बच्चे बच्चे में वीर-भाव भरे हुए हैं। शिवाजी की जन्मभूमि में ऐसे भावों की उपलब्धि स्वाभाविक ही है। झाँसी की रानी का नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इस रानी ने रणक्षेत्र में जो वीरता दिखलाई वह इतिहास की अमर कहानी है। मराठी भाषा में लक्ष्मीबाई की वीरता से संबंधित अनेक गीत गाये जाते हैं।[१]

लक्ष्मीबाई आली, झाशीस जाउ न को;
मराठा पदर सोडु न को बंशाच बाळ!

---

१ मेघाणी—लो॰ सा॰ भाग १, पृ॰ २२१

लक्ष्मीबाई आली, तां व्यानी दूध प्याली,
धराला मानवली, वासुदेव बाळाच्या !
माळया चा मजया मधे माळी बैसला [कूचो मधे ।)
मलयां घाली टोपी मधे
केशव बालाच्या !"

शिवाजी के संबंध में बहुत से पालने के गीत मराठी भाषा में प्रसिद्ध । जिनमें से एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे :—

' हि दासी जले मही अम्बिका माय
हंबरडा फोडी हाय !
निज शत्रूनी हिये भंगीले छत्र
मांगल्य सूत्र स्वातंत्र्य !
ह्या दु खाने दु खी फार जे पाही,
मी जीजा बाई तव आई"

शिवाजी की वीरता एव आर्य-धर्म की रक्षा की प्रशसा में कहा गया यह गीत कितना मर्मस्पर्शी एव प्रभावोत्पादक है ।

"गद्गदा तदा पाळण्यात शिव हसला
जणु मातृ बोल त्या रुचला !
मग करी लीला मृदुल मुष्टि वळवून
जणु म्हणे इने रिपु वधीन !
अशी आर्य शिखा रक्षिल या भावे हो
जावळा शीलो खेळे हो ।
श्री जीजा आईला असा क्रीडता तान्हा
दाटला प्रीति चा पान्हा !"

भोजपुरी में वीर रसात्मक पालने के गीत उपलब्ध नहीं होते परन्तु उनकी सत्ता का अभाव है ऐसा नहीं कहा जा सकता । जिस भूमि में आल्हा ऊदल जैसे पराक्रमी योद्धा और कुँवर सिंह जैसा रण-बाँकुरा पैदा हुआ है वहाँ ऐसे गीतों का अभाव असभव है ।

धाय के गीत (Nursery Rhymes) उन गीतों को कहते हैं जिन्हें नर्स या धाय बालक को सुलाते समय गाता है । इन गीतों में चूँकि ताल (Rhythm) की ही प्रधानता होती है अतः इन्हें 'नर्सरी राइम्स' कहते

हैं। हिन्दी में इन्हें 'धाय के गीत' कह सकते हैं। अंग्रेजी के इस उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इनमें ताल तथा लय ही सर्वस्व है।

Brown eyes
Straight nose;
Dirt pies
Rumpled clothes
Falling down
Off chairs
Breaking crown
Down stairs
Folded hands
Saying prayers,
understands
Not, not cares,
Thinks it odd
Smiles away :
Yet may God
Hear her Pray

गुजराती का यह गीत इसी कोटि में आयेगा—

दगमग दगमग डगला भरता
हरजी मन्दिर आव्या—आदि।

भोजपुरी का गीत 'चाना मामा आरे आव पारे आव, नदिया किनारे आव, नर्सरी राइम का उपयुक्त उदाहरण है।

५—खेल के गीत

महत्त्व

किसी देश के खेल-कूद के अध्ययन से वहाँ के निवासियों के स्वभाव, साहस और शक्ति का पता चलता है। जिस जाति के खेल जितने साहस पूर्ण और वीरता से युक्त होंगे वह जाति उतनी ही साहसिक समझी जावेगी। खेल-कूद लोक संस्कृति के प्रधान अंग है। इनके अनुसन्धान से यह जाना जा सकता है कि आदिम जातियों की अवस्था कैसी थी! उनके मनोरंजन के क्या साधन थे?

इन खेलों में सहयोग की प्रवृत्ति लक्षित होती है। अंग्रेजी की एक कहावत है कि वाटरलू की लड़ाई क्रिकेट के मैदान में ही जीती गई थी। जिसका आशय यह है कि साथ मिलकर काम करने की आदत से ही वैलिङ्गटन को विजय श्री प्राप्त हुई थी। आदिम लोगों में खेल-कूद में सहयोग की जो भावना थी वह आज भी उपलब्ध होती है। भारत के प्रत्येक राज्य में विभिन्न प्रकार के खेल पाये जाते हैं। यदि इनका सम्यक् अध्ययन किया जाय तो लोक संस्कृति के अनेक तथ्यों का उनसे पता चल सकता है।

भारतवर्ष में प्रचलित खेल-कूदों की संख्या असख्य है। अतः उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में प्रचलित उन्हीं खेलों का सक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जायेगा जिनमें गीतों का प्रयोग मनोरजन के लिए किया जाता है।

भेद

भोजपुरी प्रदेश में दो प्रकार के खेल प्रचलित हैं। (१) घर में खेले जाने वाले खेल (Indoor games) (२) मैदान में खेले जाने वाले खेल (Outdoor games)। इन दोनों प्रकार के खेलों में गीत का सहयोग पाया जाता है। कबड्डी के खेल ने अब तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। इस खेल के खिलाड़ी दो भागों में विभक्त कर दिये जाते हैं तथा इन दोनों दलों के बीच में रेखा खींच दी जाती है। एक दल का व्यक्ति दूसरे दल के लोगों को छूकर अपने दल में भाग आता है। बालक दूसरे दल में जाते समय निम्नांकित गीत या तुकबन्दी गाते रहते हैं[1]। गीत गाते हुए दूसरे दल में जाने को 'कबड्डी पढ़ाना' कहते हैं।

(१) ए कबड्डिया रेता, भगत मोर बेटा।
भगताइन मोरी जोरी, खेलवि हम होरी।
(२) एक कबड्डिया आईले, तबला बजाईले।
तबला में पइसा, लाल बगइचा॥
(३) आव तानी हो, परइह जनि हो।
टॉग जाई टूटी, कपार जाई फूटी,,
लड़कपन छूटी॥

---

१ लेखक का निजी संग्रह

(४) श्राम छू श्राम छू कउड़ी कनक छू।
श्राम छू श्राम छू, कउड़ी बदाम छू॥

इन गीतों में तुकबन्दी ही प्रधान होती है। अर्थ विशेष महत्त्व नहीं रखता।

(२) मौन साधन—बच्चों का एक खेल है जिसमें उन्हें मौन रहने की साधना करनी पड़ती है। सन्ध्या के समय जब दो चार लड़के साथ बैठते हैं तो वे आपस में मौन रहने की प्रतियोगिता करते हैं। इस खेल में इस बात की परीक्षा की जाती है कि कौन अधिक देर तक चुपचाप बैठ सकता है जो बच्चों के स्वभाव के नितान्त प्रतिकूल है। जब सब लड़के एक साथ आकर बैठ जाते हैं तब उनमें से एक लड़का नीचे लिखी पदावली को कहता है जिसमें गाली द्वारा माँ-बहिन की शपथ देकर मौन रहने के लिए कहा गया है।[१]—

'आदा बादा नून सवादा,
मछरी के कंटा, बैल के सींग,
जे बोली से गंइयाँ बोली,
सगरी नगरिया बोली,
जे बोली श्रोकरा माई के ... ।"

ऐसा कहने के पश्चात् सभी लड़के चुपचाप बैठ जाते हैं। यदि कोई चपलता वश बोल उठता है तो माँ की गाली उसी के सिर पड़ती है।

एक दूसरे खेल में कुछ लड़के एक साथ बैठ जाते हैं। एक लड़का दूसरे लड़के के पैर के अंगूठे को अपने बाये हाथ की मुट्ठी में पकड़ता है। फिर दूसरे लड़के भी अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी को उसके ऊपर रखते हैं। फिर वही लड़का अपने दाहिने हाथ को तलवार मानकर उन मुट्ठियों को "काटता" है और गीत गाता जाता है।[१]

"तार काटो तरकुल काटो, काटो रे बन खाजा।
हाथी पर के घुघुरा चमकि चले राजा।
राजा के रजइया अचरू बाप के दुपाटा।
हुचि मारो खींचि मारो मुसर अइसन बेटा॥'

ऐसा कहकर वह मुट्ठियों की शृङ्खला को तोड़ देता है और इस प्रकार खेल समाप्त हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस गीत का कुछ अर्थ नहीं है। यह केवल तुकबन्दी मात्र है।

---

१ लेखक का निजी संग्रह

(३) झाकाझूमरि—इस खेल को प्रायः लड़कियाँ ही खेलती है। आठ-दस लड़कियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर गोलाई में खड़ी हो जाती हैं। वे कभी आगे आती हैं और कभी पीछे जाती हैं। इस प्रकार वे झूमती रहती हैं। वे झूमते समय ये गीत गाती रहती हैं।

"एक हाड़ी झिक्का, बड़ेरी लागे धूँआ।
सासु पकवली गल गल पूआ।
अपने खइली विआवाहा पूआ।
हमारा के दिहली तेलहवा पूआ।
ना खाइबि पूआ खेलबि जूआ।
ना खाइबि पूआ खेलबि जूआ॥"

ऐसा ज्ञात होता है कि इस खेल मे भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला का प्रभाव पड़ा है। इसमें भाग लेने वाली लड़कियों की सख्या जितनी अधिक हो उतना ही अच्छा होता है। झूम झूमकर खेलने के ही कारण इसका नाम झाका-झूमरि पड़ गया है।

(४) ओका बोका का खेल

यह खेल बड़ा ही मनोरजक है। इसमें दस पाँच लड़के एक साथ बैठ जाते हैं। ये अपने दोनों हाथों की अगुलियों से जमीन को छूते हुए अपनी हथेली को ऊपर उठाये रहते हैं। फिर उस दल का नेता प्रत्येक बालक के हाथ को छूता हुआ यह कहता है :—

"ओका बोका तीन तड़ोका।
लउवा लाठी चन्दन काठी।
बाग में बगउवा डोले।
सावन में करइली फूले।
ओ करइली के नॉव का?
इजइल बिजइल, पामवा फूलवा
ढोढ़िया पचक॥"

पहिले यह अगुआ बालक 'ओका' कहकर दूसरे बालक के हाथ को छूता है। फिर 'बोका' कहकर उसके दूसरे हाथ को स्पर्श करता है। इसी प्रकार प्रत्येक बार वह यही क्रम रखता है। 'पचक' शब्द कहकर वह किसी बालक के हाथ को जमीन पर 'पिचका' देता है।

इसी प्रकार एक दूसरे खेल में लड़के यह गाते हैं।

"ताई ताई पुरिया बीच में चमोरिया।

हम खाई कि भउजी खाई
भउजी पतरैंगिया ॥"

इन खेल के गीतों में कहीं-कहीं आधुनिकता का पुट पाया जाता है। बच्चे रेलगाड़ी का खेल खेलते हैं जिसका एक गाना इस प्रकार है।

'माल बाबू माल बाबू, टिकट कटाइ द।
बलिया के गाड़ी आइल, सिगल गिराइ द ॥"

विदेशों में बालकों के खेल

संसार के प्रायः सभी देशों में बालकों के खेल संबंधी गीत पाये जाते हैं। उत्तरी हैटी (Northen Haiti) प्रदेश के बहुत से खेल भोजपुरी खेलों से समानता रखते हैं। जिस प्रकार भारतीय खेलों का उद्देश्य बाल मनोरंजन है उसी प्रकार इन खेलों का लक्ष्य भी यही है। हैटी प्रदेश के एक खेल का नाम है 'जोम्बी मैन-मैन मैन—'। यह खेल लड़कियों को बड़ा प्रिय है। इस खेल में एक वृत्त बनाया जाता है जिसके भीतर कई खेलाड़ी रहते हैं। जब कोई खेलाड़ी इस गोलाई से बाहर जाता है तब बाहर का खेलाड़ी उसे पकड़ने का प्रयास करता है। बाहरी खेलाड़ी के लिए यह अभीष्ट है कि वह उसे पकड़ने में समर्थ हो सके। खेल होते समय सभी खेलाड़ी यह गीत गाते हैं।[1] —

Catch the small chicken for me.
The small chicken escapes. For me.
Where is he passing? For me.
Catch the small chicken for me.

"माता को पालने पर रख देने" के पश्चात् यह खेल समाप्त होत
उस समय दो खेलाड़ी अपने हाथों को फैलाकर एक दूसरे का हाथ
लेते हैं। अपने फैलाए हुए हाथों पर एक छोटी लड़की—जो खेल में
लिप्त रहती है—को बैठा लेते हैं और उसे तब तक झुलाते रहते हैं जब
थक न जायँ। दूसरे खेलाड़ी अपने स्थानों पर बैठे हुए यह गीत ग

---

१ सिमसन्—Peasant Children s Games in N
Haiti
फोक्लोर Vol LXV, No 2, P 65
२ सिमसन— फोक्लोर भाग L XV नं० २ पृ० ६५

"Put mother in the cradle. Ding dong
Put papa in the cradle ,,
It was one monday morning ,,
I am going to Limbe ,,
I meet an old, infim man ,,
I say "good morning, Papa" ,,
I ask what time it is ,,
He says that it is past mid-day- ,,
Put mother in the cradle ,

उपर्युक्त खेल भोजपुरी कबड्डी और झूला के खेल से बहुत कुछ मिलता जुलता है। हैटी प्रदेश में प्रचलित एक दूसरा खेल है जिसे 'विवाह का खेल' कहा जा सकता है। इसमें लड़के लड़कियाँ दोनों सम्मिलित होते हैं। किसी कल्पित 'माता' को लड़कियाँ चारों ओर से घेर लेती हैं। इन लड़कियों के सामने दो 'भाई' खड़े हो जाते हैं। बड़ा 'भाई' माता की ओर नाचता हुआ यह गाता आता है।[1]

"Let him marry who wishes to mary !
As for me, I shall never marry
As for me, I shall never marry
And we are two brothers
And we wish to marry
I am the elder
I must begin
Let him marry who wishes to marry.
I see a young girl
I am going to greet her
Come dance with me
Come dance with me,

इस प्रकार बारी बारी से ये दोनों 'भाई' उक्त 'माता' की लड़कियों से विवाह कर लेते हैं। जब लड़कियाँ अपने पति के साथ

---

१. सिमसन्—फोकलोर भाग LXV नं० २ पृ० ७२

चली जाती है तब 'माता' अकेली पड़ जाती है। उसके दुःख को देखकर दर्शक गण सहानुभूति दिखलाने के ठीक विपरीत उसकी खिल्ली उड़ाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि सर्वत्र बालकों के खेलों में गीत का पुट पाया जाता है। इन गीतों के अध्ययन से बालकों की मनोवृत्ति का पता चलता है। ऊपर हेंटी के विवाह के गीत का उल्लेख अभी किया जा चुका है। भोजपुरी प्रदेश में भी लड़कियाँ गुड़िया का खेल खेलती हैं। इसमें गुड़िया का विवाह किसी वर से कर दिया जाता है। इससे बालकों तथा बालिकाओं में विवाह सम्बन्धी भावना का पता चलता है। कुछ खेल के गीतों में धनी और गरीब समाज की झाँकी मिलती है। इस प्रकार इस दृष्टि से इन खेलों का अध्ययन बड़ा ही रुचिकर सिद्ध हो सकता है।

लोक-साहित्य में काव्यत्व

लोक काव्य और अलंकृत काव्य के विभेद को बतलाते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि लोक काव्य की आत्मा उसकी सरलता, अकृत्रिमता और सरसता है। लोक साहित्य में रस की प्राप्ति ही नहीं होती प्रत्युत यह तो रस से ओत प्रोत होता है। परन्तु रस की सृष्टि के लिए जिन विभाव, अनुभाव और सचारियों की आवश्यकता होती है उनका इसमें अभाव है। इसमें रस की उत्पत्ति स्वतः होती है। अलकारों के सम्बध में भी यही बात समझनी चाहिये। लोक-गीतों में अलकार कहीं कहीं अवश्य पाये जाते हैं परन्तु उनकी योजना आयास पूर्वक नहीं की गई है। वे स्वतः आ गये हैं। अलकारो में भी रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और श्लेष ही अधिक उपलब्ध होते हैं अन्य नहीं। लोक-कवि पिंगल शास्त्र का अध्ययन कर कविता करने नहीं बैठता अतः उसकी रचना में छन्दः योजना का अभाव पाया जाता है। लोक-गीतों में तुक प्रायः नहीं पाया जाता क्योंकि लोक काव्य स्वच्छंद होने के कारण छद और तुक की बेड़ियों में नहीं बाँधा जा सकता। परन्तु इन गीतों में लय अवश्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है जो इनको सगीतमय बना देता है। यही कारण है कि लोक-गीतों को सुन कर मनुष्य मस्ती में आकर झूमने लगता है।

(क) लोक-गीतों में अलंकार-योजना

पिछले किसी प्रसग में लिखा जा चुका है कि लोक-गीत सर्वथा स्वतन्त्र तथा स्वच्छन्द होता। इसमें कहीं कृत्रिमता का पता नहीं होता। लोक-कवि के मन में जो भाव उठते हैं उनका प्रकाशन वह अनायास करता है। यही कारण है कि कलात्मक कविता (Poetry of Art) में अलकरण की जो प्रवृत्ति पाई जाती है उसका इसमें अभाव है। जो कविता कवि के हृदय के अन्तरतम से निकलती है उसमें रस की तो प्रचुरता रहती है परन्तु अलकार योजना की प्रवृत्ति नहीं दीख पड़ती। वाल्मीकि और कालिदास की कविता की यही विशेषता है। यही बात लोक गीतों के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये।

ग्रामीण कवि अलकारों की उलझन में नहीं पड़ता। वह परिसख्या

और परिकर के परे होता है। सच तो यह है कि लोक कवि अलंकारों के माध्यम द्वारा भाव-प्रकाशन करना नहीं जानता। उसके वर्णन का ढंग ही निराला होता है। फिर भी यह नहीं समझना चाहिये कि लोक गीतों में अलंकारों का अत्यन्ताभाव है।

अलंकार योजना की विशेषता

लोक गीतों की अलंकार योजना की पहिली विशेषता यह है कि उनका सन्निवेश अनायास ही होगया है अर्थात् लोककवि ने जान बूझ कर अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है। हिन्दी के अलंकारवादी कवियों की यह परम्परा सी हो गई थी कि वे हठात्—चाहे अवसर हो या न हो—उपमा, रूपक आदि का प्रयोग अपने काव्यों में करते थे। केशव की रामचन्द्रिका से इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। परन्तु लोक गीतों में ठीक इसके विपरीत पाया जाता है। गीतों में जो अलंकार उपलब्ध होते हैं वे बिना किसी परिश्रम के स्वयं उपस्थित हो गये हैं। गीतों के पढ़ने से इस विषय का स्पष्टीकरण हो जाता है।

लोक-गीतों के अलंकार विधान की दूसरी विशेषता इनकी मौलिकता है। लोक कवि ने जिन उपमानों का प्रयोग किया है वे कवि-परम्परा भुक्त (Conventional) नहीं है बल्कि नूतन और मौलिक है। प्राचीन कवियों ने आँख की उपमा खंजन, मीन और मृग की आँखों से दी है परन्तु लोक कवि ने इन परम्पराभुक्त उपमानों का तिरस्कार कर 'आम की फारि' (तिरछा कटा हुआ कच्चे आम का टुकड़ा) से इसकी तुलना की है। इसी प्रकार होठ की उपमा कविजन विद्रुम या बिम्बफल से दिया करते हैं परन्तु ग्रामीण कवि कटे हुए पान से उसकी समानता करता है।

इनकी तीसरी विशेषता है ग्रामीण वातावरण से उपमानों का चुनाव। लोक-कवि जिस वातावरण में जन्म लेता और पलता है उस वातावरण का उसके हृदय पर स्थायी प्रभाव बना रहता है। अतः अपने भावों को स्पष्ट करने के लिए वह जिन उपमानों का चुनाव करता है वे उसके आस पास की चिर परिचित वस्तुयें हुआ करती हैं। यही कारण है कि पेट की उपमा उसने पुरइन के पत्ते[1] से और पीठ की उपमा पोंगी के

---

१ बिहार आदि प्रान्तों में ग्रामीण जन पुरइन के पत्ते पर भोजन करते हैं ये बहुत बड़े और गोल होते हैं।

पाट (काठ का बना हुआ छोटा तख्ता जिस पर धोबी अपने कपड़े धोता है) से दी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दोनों ही वस्तुयें ग्रामीण जगत् में चिर परिचित है। आँख के उपमान के लिए कच्चे आम के कटे हुए तिरछे टुकड़े को खोज निकालने वाला कवि वास्तव में अपने वातावरण से ओत प्रोत रहा होगा।

ग्रामीण अलकार योजना की चौथी विशेषता है आकृति-साम्य। अर्थात् लोक-कवि उपमानों का चुनाव करते समय उपमेय की आकृति का अनुकरण करने वाले उपमान को ही स्थान या महत्त्व देता है। किसी स्त्री के जूरा (बालों को समेटकर तथा बाँधकर गोल आकृति) की उपमा वह हूरा (लाठी का निचला गोलाकार भाग) से देता है। जूरा गोल होता है। अतः उसकी गोली आकृति को देखकर लोक कवि ने उसकी समानता हूरा से की है। बालों की स्निग्धता और चिक्कणता की ओर उसका ध्यान बिल्कुल नहीं गया। पीठ की उपमा धोबी के पाट से देते समय कवि की दृष्टि दोनो की आकृति (लम्बाई-चौड़ाई) की ओर ही विशेष थी। इसी प्रकार उन्नत ललाट के लिए 'लोटा' को अप्रस्तुत के रूप में वर्णन करना आकृति-साम्य का परिचायक है।

उपमा

लोक गीतों में जिन अलंकारों का उल्लेख पाया जाता है उनमें उपमा, श्लेष, रूपक और उत्प्रेक्षा अधिक प्रसिद्ध हैं। इन अलकारों में भी उपमा का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। अपने भावों को स्पष्ट करने तथा साकार रूप प्रदान करने के लिए गीतों में इसका स्थान स्थान पर उल्लेख पाया जाता है। कुछ उदाहरण लीजिए।

कोई स्त्री कहती है कि आज मेरा पति मोरंग देश को जा रहा है। यदि मैं इस बात को जानती तो उसकी प्रस्थान की वस्तु को अपने आँचल में छिपा लेती। वह उसके विभिन्न अंगों का वर्णन करते हुए कहती है कि[1] :—

"गहरी नदिया अगम बहे राम पनिया
पिया चलले परदेसिया, बिहरेला राम छतिया।

---

१ डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ०

जो हम जनिती ए लोभिया, जइबे रे बिदेसवा,
पिया के पयेतवा ए लोभिया, छिपइतीं रे अँचरवा।
मुँह तोरे हवे ए लोभिया, सुरुज के जोतिया।
आँखि तोरे हवे ए लोभिया, आमवा के फरिया।
नाक तोर हवे ए लोभिया सुगवा के ठोरवा।
भउँह तोर हवे ए लोभिया, चढ़ल कमनिया।
ओठ तोर हवे ए लोभिया पतरका पानवा।
अगुरू तोर हवे ए लोभिया, कली फूलो मोदिया।
बाँहि तोर हवे ए लोभिया मोहरन सेंटवा।
पेट तोर हवे ए लोभिया पुरइन पतवा।
पीठि तोर हवे ए लोभिया धोबिया के पटवा।
गोड़ तोर हवे ए लोभिया केरवा के थुन्हवा।"

उपर्युक्त गीत में ध्यान देने की बात यह है कि इसमें जो अप्रस्तुत विधान किया गया है वह सर्वथा मौलिक है। ये उपमान देहाती दुनियाँ से संबंध रखने वाले हैं तथा ग्रामीण सौन्दर्य के मापदण्ड हैं। काव्य जगत् में मुख की उपमा चन्द्रमा या कमल से, आँखों की उपमा मीन या मृग से और होठों की उपमा विद्रुम या बिम्ब (फल) से दी जाती है। परन्तु लोक कवि ने इन परम्परायुक्त उपमानों को सर्वथा परित्याग कर अपनी नवीनता तथा मौलिकता का परिचय दिया है। इन उपमानों की यह विशेषता है कि ये ग्रामीण सौंदर्य-भावना के प्रतीक हैं। भोजपुरी प्रदेश में नाक के अगले भाग का नोकीला होना सुन्दर माना जाता है। इसीलिए उपर्युक्त गीत में नाक की उपमा सुग्गे की चोंच से दी गई है जो लाल और नोकीली होती है। इसी प्रकार होठ का पतला होना सुन्दरता को द्योतित करता है। अतएव कवि ने इसकी तुलना विद्रुम या बिम्बफल से न कर सरासे गये (पतले) पान से दी है।

कोई ग्रामीण युवक किसी स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि ए गोरी! तुम्हारा जूड़ा लाठी के हूरे के समान है तथा तुम्हारे गाल नारंगी की भाँति सुहावने हैं। ए गोरी! तुम पान के समान पतली हो और तुम्हारा ललाट [illegible] के समान उज्ज्वल है।

गीत इस प्रकार है —

'हूरवा नियर तोर जूड़वा ए गोरिया,
पुअवा नियर तोर गाल।

पानवा नियर तू त पातर बाढू गोरिया,
लोटवा नियर तोर भाल ॥"

इस बिरहे में जिन उपमानों का उल्लेख हुआ है वे सभी ग्रामीण वातावरण से लिए गये हैं। देहाती अहीर सदा लाठी लेकर चलता है। रात दिन लोटे का उपयोग करता है। घर में आटा, दूध-घी की कमी न होने के कारण—सदा नहीं तो पर्वों पर ही सही—वह पूआ भी खाता है। विवाह-शादी के अवसर पर वह पान का भी प्रयोग करता है। अतः यदि वह किसी स्त्री के अंगो की उपमा अपने दैनिक प्रयोग में आनेवाली वस्तुओं से न दे तो और किससे दे ? हिन्दी के कवियों ने "कनक छड़ी सी नायिका" का वर्णन किया है परन्तु जो कोमलता, सरसता और सुन्दरता पान के पत्ते में है वह सोने की बनी सख्त छड़ी में कहाँ ?

किसी नायिका के उठते हुए—बिकासोन्मुख—स्तनों का वर्णन उपमा के माध्यम द्वारा कितना सुन्दर और सटीक हुआ है। लोक कवि कहता है कि यौवन के प्रभात में नायिका के स्तन जगली बेर के समान छोटे-छोटे थे। बाद में विकसित होने पर वे 'टिकोरे' (आम का कच्चा फल जिसमें अभी गुठली नहीं होती) के रूप में परिणत हुये। परन्तु विवाह के पश्चात्, यौवन के मध्याह्न में, ज्योंही प्रियतमों के हाथों से उनका स्पर्श हुआ त्योंही विकसित होकर उन्होंने सिन्धोरा का रूप धारण कर लिया :—

"पहिले बइरि सम
फिर भइले टिकोरा।
सइयाँ जी के हाथ लागल,
होइ गइले सिन्धोरा ॥"

इस गीत में पूर्ण विकसित स्तनों की उपमा सिन्धोरा से देना बड़ा ही उपयुक्त हैं। जायसी ने इनकी उपमा औंधे हुए कटोरे से दी है।

"हिया थार कुच कंचन लारू।
कनक कचोरू उठे जनि चारू ॥"

श्लेष

लोक-गीतों में श्लेषालंकार का भी प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है परन्तु इनकी योजना भी अनायास ही हुई है। हिन्दी तथा सस्कृत के कवियों ने अभग तथा सभग श्लेष के द्वारा काव्य रचना में बड़ी चातुरी

दिखलाई है। परन्तु गीतों में अभंग श्लेष ही दृष्टिगोचर होता है। नीचे के इस बिरहे में यमक और श्लेषालंकार की योजना बड़ी सुन्दर हुई है।

"रसवा के भेजलीं भँवरवा के संगिया,
रसवा ले अइले हो थोर।
अतना ही रसवा में केकरा के बटवों,
सगरी नगरी हित मोर॥"

स्वाधीनपतिका कोई स्त्री कहती है कि ए सखी! मैंने भँवरा को रस लेने के लिए भेजा लेकिन वह थोड़ा सा ही रस ले आया। मेरे पास रस इतना थोड़ा है कि मैं किसे-किसे इस रस को दूँ। क्योंकि गाँव के जितने लोग हैं वे सभी मेरे परिचित या हितचिन्तक हैं। यहाँ पर रस शब्द का अर्थ प्रेम और मधु है। अतः यह यमक अलंकार का उदाहरण है। इस गीत मे भँवरो शब्द का प्रयोग पति और भ्रमर इन दोनों अर्थों का वाचक है। अतएव 'भँवरवा' मे श्लेषालंकार है।

इस प्रकार उपर्युक्त एक ही बिरहे मे यमक और श्लेष दो अलंकार उलझे पड़े हैं।

रूपक

इन गीतों में कहीं-कहीं रूपकालंकार भी मिल जाता है। परन्तु इन रूपकों की विशेषता यह है कि ये कहीं भी दीर्घ (लम्बे-लम्बे) और सांग नहीं हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में ज्ञान दीपक के वर्णन में सांग रूपक की जो लम्बी लड़ी लगाई है वैसा प्रदर्शन लोकगीतों में नहीं पाया जाता। आरोप का क्रम प्रारम्भ करके उसका सांग तथा सम्पूर्ण निर्वाह इन में नहीं किया गया है। वस्तु के आरोप की प्रक्रिया थोड़ी ही दूर चलकर समाप्त हो जाती है। इसका कारण संभवतः यह जान पड़ता है कि भाव के भरे और रस के प्यासे लोककवि को रूपकालंकार की योजना करते समय किसी वस्तु के रूप का सम्पूर्ण आरोप करने का अवकाश कहाँ? उसने किसी स्थान विशेष पर जोर देने के लिए अलंकार का पल्ला पकड़ा और फिर उसे छोड़कर वह आगे बढ़ गया। एक उदाहरण लीजिए :—

"मन मुरीरिस के पइसया, दोन बैना सेन्दुर हो।
ललना, धनिया नाहँ करकोरि माँग भरि सेन्दुर हो॥"

कोई स्त्री कहती है कि सत्य और सुकीर्ति रूपी घड़ा है। इस घड़े से प्रेम रूपी रस्सी के द्वारा मैं अच्छी तरह से माँग में सिन्दूर लगाकर पानी भरूँगी। अर्थात् प्रेम के द्वारा सुयश और सत्य का अवलम्बन कर मैं मोक्ष रूपी पवित्र जल को पिऊँगी। यहाँ कुँये से पानी भरने का रूपक बाँधा गया है परन्तु कुँये के वर्णन के अभाव में यह रूपक साङ्ग (पूर्ण) नहीं है।

ईश्वर को प्रियतम या पति मानकर उसकी उपासना करना सन्त कवियों की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। ज्ञान रूपी दीपक के द्वारा हृदय के अन्धकार को दूर करने का उपदेश कोई सन्त कवि दे रहा है। वह आत्मा (स्त्री) को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि पति रूप ईश्वर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। सोने के बने हुये पलग में चाँदी की पाटी लगी हुई है। त्रिकुटी के घाट पर स्नान करके इस पलग पर प्रियतम के साथ सो रहो।

"सखी तोरे पियवा देइ गयो एगो पतिया।
बारहु दियवा जड़ाइ लेहु हियवा
समुझि समुझि के बतिया।
इहाँ वा ना केहू साथी ना सँघतिया,
कामिनी! कंत तोरे जोहत बटिया।
सोने की खाटी, रूपे के पटिया
करु मज्जन चलु त्रिकुटी के घटिया।
ओही रे घाट पर सुन्दर पियवा,
निरखत रहु दिन रतिया।
लछमी सखी के सुन्दर पियवा,
सूत रहु लगाई के छतिया॥"

इस गीत में आत्मा तथा परमात्मा के मिलन का वर्णन है जिसे स्थल रूप प्रदान करने के लिए स्त्री-पुरुष के समागम का रूपक बांधा गया है। परन्तु यह रूपक किसी भी अंश में पूर्ण नहीं है। इसी प्रकार से रूपकालंकार के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं।

(ख)—लोक गीतों में रस-परिपाक

लोक गीतों में रस परिपाक प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। जनता के ये गीत रस में सने हुए हैं। यदि यह कहा जाय कि रस ही इन

गीतों का प्राण है तो यह सत्य से बहुत दूर न होगा। इन गीतों की रसात्मकता के आगे बड़े बड़े कवियों की सरस सूक्तियाँ भी सूखी जान पड़ती है। एक एक लोकगीत क्या है रस से लबालब भरा हुआ प्याला है जिसके पीने से प्यास बुझती नहीं बल्कि और बढ़ती है। क्या हिन्दी और क्या बंगला सभी प्रान्त के लोक-गीतों में यही रस-प्रवाह प्राप्त होता है जो जन जीवन को सदा आप्लावित करता हुआ उसे हरा भरा बनाये रखता है। लोक-गीता का पयस्विनी जिस प्रदेश से प्रवाहित होती है वह अपने तट पर स्थित तरुणों को ही जीवन-प्रदान नहीं करता बल्कि उसका शीतल प्रवाह सभी जनों को समान भाव से आनन्द प्रदान करता है। अपनी इसी रसात्मकता के ही कारण लोक-जीवन से संबंधित ये गीत मानव-हृदय को इतना 'अपील' करते हैं। शुष्क हृदय भी इनको एक बार पढ़कर आर्द्रचित्त हुए बिना नहीं रह सकता।

लोक गीतों में नारी के जीवन का विशेष रूप से चित्रण हुआ है। क्या सोहर या क्या बारहमासा, क्या कजली और क्या झूमर सभी में अबला जीवन की करुण कहानी पायी जाती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त ने लिखा है कि :—

"अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी॥"

जिसकी आँखों में पानी हो फिर उसकी कहानी करुण क्यों न हो। स्त्री जीवन के विविध दशाओं के चित्रण के कारण ही इन गीतों में इतनी सरसता पाई जाती है।

पुत्र या पुत्री के जन्म से लेकर गवना के गीतों तक स्त्री जीवन की किसी न किसी दशा का वर्णन इनमें उपलब्ध होता है। किम्बहुना जतसार—जाँत के गीत—और झूमर के गीतों में (जिनका संबंध किसी संस्कार या ऋतु से नहीं है) भी नारी जीवन के कारुणिक प्रसंग का चित्रण हमें देखने को मिलता है।

यों तो लोक गीतों में प्रायः सभी रस पाये जाते हैं परन्तु इनमें प्रधानतया शृङ्गार तथा करुण रस की उपलब्धि होती है। वैवाहिक प्रसंग में हास्यरस का भी आस्वादन किया जा सकता है। आल्हा-ऊदल से संबंधित काव्य 'आल्हा' में वीर रस का विराट रूप दिखाई पड़ता है। भजन और गंगा माता के गीतों में शान्त रस भी पाया जाता है। गोरखा की कथा में अद्भुत रस मिलता है।

शृङ्गार रस

लोक-गीतों में शृङ्गार रस के दोनों पक्षों—सयोग और वियोग—का वर्णन बड़ी मार्मिक रीति से किया गया है। इनमें शृङ्गार का जो वर्णन उपलब्ध होता है वह नितान्त पवित्र, संयत, शुद्ध और दिव्य है। हिन्दी के रीति कालीन कवियों ने शृङ्गार रस का जो भद्दा, अश्लील तथा कुरुचि-पूर्ण प्रदर्शन अपनी कविताओं में किया है उसका यहाँ नितान्त अभाव है। हिन्दी के इन कवियों ने अपनी कवितायें अपने अन्नदाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिए की थीं। अतः उनमें घोर शृङ्गार होना स्वाभाविक है परन्तु ये गीत "स्वान्तः सुखाय" लिखे गये हैं।

शृङ्गार रस का विशेष प्रयोग सोहर और विवाह के गीतों में दिखाई पड़ता है। महाकवि कालिदास ने जिस प्रकार 'रघुवश' में गर्भवती सुदक्षिणा का वर्णन किया है उसी प्रकार इन गीतों में भी गर्भवती स्त्री की शरीर यष्टि, दोहद तथा प्रसव के कष्टों का उल्लेख स्थान स्थान पर हुआ है। एक गर्भवती स्त्री का सजीव चित्रण देखिए जिसमें उसकी प्रसव पीड़ा का वर्णन बहुत ही सुन्दर हुआ है।

"सुपुली खेलत तुहु ननदी, मोर पियारी ननदी रे।
ए ननदी आपन भइया देई ना बोलाई,
हम दरद बेयाकुल रे।
जुववा खेलत तुहु भइया, अबरू बीरन भइया हो।
ए भइया प्रानप्यारी भउजी हमार
दरद से बेयाकुल हो।

× × ×

डोढ़ मोर बथेला गाछागाहि, कपार मोर टनकेला हो।
ए प्राभु पिरिथवी मोरे सुझेली अलोपित
अँगुरी में दम बसे हो॥

के अवसर पर आनन्द और उछाह का उल्लेख गीतों में जाता है। पुत्र के जन्म पर सास रूपया लुटाती है, ननद में देती है और बन्धु बान्धवों की स्त्रियाँ अन्य वस्तुयें देखिए।[1]

[1] पृ० ११९

"सासु जे आवेली गवइत, ननदी बजवइत रे ।
ललना आवेली बिसाधल,
गोतिनिके घर में सोहर रे ।
सासु लुटावेलि रुपैया,
त ननदी मोहरया रे ।
ललना गोतिनि लुटावेली पन्उरवा,
गोतिनिया फेरिहे पोइच रे ॥

विवाह के गीतों में शृङ्गार रस का आनन्द अधिक मात्रा में मिलता है । विवाह के बाद जब वर को 'कोहबर' में ले जाते हैं उस समय के गीत शृङ्गारिक वर्णनों से ओत प्रोत हैं । परन्तु उनमें अश्लीलता का भद्दा प्रदर्शन कहीं भी नहीं हुआ है ।[1]

"कोप कोपरी रे परेला सोपारी,
तर नरियरवा के बारी ।
कंचन सेज दसावेली कवन देई,
केहु ना आवेला केहु जाई ।
धावल धूपल अइले कवन राम,
मोहर दे गइले साई ।
आधी राति जनि अइह मोरे राजा हो,
नगर के लोग हँसाई ।
ठीक दुपहरिया अइह मोरे राजा हो,
हम रउरा करबि लराई ।
निचवा रसाई रे उपरा ढोलाई,
ताहि बीचे होखेला लराई
आहो लाज ताहि बीच होखेला लराई ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त गीत में संभोग शृङ्गार का जो वर्णन हुआ है वह कितना शिष्ट और संयत है ।

करुण रस

शृङ्गार रस के साथ ही इन लोक-गीतों में करुण रस की मात्रा भी अत्यधिक है । यह रस अनेक अवसरों पर विभिन्न परिस्थितियों में प्रवाहित

[1] डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृष्ठ १२१

होता हुआ दिखाई पड़ता है। इस रस की अभिव्यक्ति इन गीतों में तीन अवसरों पर विशेष रूप से हुई हैं।—

(१) विदाई (२) वियोग और (३) वैधव्य इन तीनों अवसरों पर सुखमय जीवन का अवसान हो जाता है तथा दुःख का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। जीवन के बसन्त में अचानक पतझड़ प्रारम्भ हो जाता है। ये तीनों अवसर मनुष्य के हृदय पर गहरी चोट करने वाले होते हैं। विदाई के अवसर पर लड़की का अपने परम प्रिय माता, पिता तथा बन्धुओं से विछोह होता है, वियोग की अवस्था में पति से विप्रयोग होता है और वैधव्य में अपने प्राणनाथ प्रियतम से सदा के लिए आत्यन्तिक विच्छेद हो जाता है। यही कारण है कि इन गीतों में करुण रसकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जाती है। जिस प्रकार भवभूति की करुण कविता सुनकर वज्र का भी हृदय फट जाता है और पत्थर भी पसीज जाता है,[१] उसी प्रकार इन करुण रस से ओत-प्रोत गीतों को पढ़कर पत्थर के समान कठोर पुरुषों का भी कलेजा आँसुओं के रूप में पसीज पसीज कर बाहर निकलने लगता है :—

"आँसुन के मग जल बह्यौ
हियो पसीज पसीज।"

बेटी की बिदाई—कन्या की बिदाई का समय कितना करुणोत्पादक है, इसे शब्दों में बतलाने की आवश्यकता नहीं। पिता के घर में स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन बिताने वाली, दुलार से प्याली गई कन्या, एक अनजान एवं अपरिचित घर में जाती है। पिता के घर के लाड़-प्यार की याद उसके हृदय को मसोसने लगती है। उसकी मानसिक वेदना आँसुओं की झड़ी के रूप में बहती दीख पड़ती है। ऐसे अवसर पर बड़े बड़े धीरों की भी धीरता का बाँध टूट जाता है फिर साधारण लोग किस गिनती में है? कालिदास ने शकुन्तला की बिदाई के अवसर पर उद्विग्नचेता महर्षि कण्व के मुख से जिस भावोद्गार को अभिव्यक्त किया है वह साहित्य वेत्ताओं से अपरिचित नहीं है। इस प्रसग का मार्मिक चित्रण इन गीतों में उपलब्ध होता है।

एक भोजपुरी गीत में बेटी की बिदाई के समय माता-पिता के रोने का पारावार नहीं है। पिता के लगातार रोने के कारण गगा में बाढ आ

१ अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।

गई है। माता के अश्रुपात के कारण उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया है। माई के रोने से उसकी धोती पैर (चरण) तक भीग गई है परन्तु भावज की आँखें गीली भी नहीं हुई हैं।[1]—

माया के रोवले गंगा बढ़ि अइली,
आमा के रोवले अनोर
भइया के रोवले चरन धोती भीजें,
भउजी नयनवा ना लोर ॥

इस छोटे से गीत में करुणरस का सागर हिलोरें मार रहा है जिसमें सहृदय पाठक अपनी सुधि बुधि खोकर भावमग्न हो जाते हैं।

एक दूसरे भोजपुरी गीत में इसी प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है। पुत्री की विदाई से व्याकुल होकर पिता घर के दरवाजे पर बैठा हुआ, रो रहा है और कह रहा है कि ए बेटी! अब मैं कहीं भी तुम्हारा नूपुर (पायजेब) मैं नहीं देख रहा हूँ। आँगन में बैठी हुई माता रो रही है और रसोई घर में बैठी हुई भावज अश्रुपात कर रही है। माता कहती है कि कहीं भी मेरी बेटी दिखलाई नहीं पड़ती। उसके बिना रसोई घर भयानक और छूँछा (खाली) लगता है। गीत इस प्रकार है।[2]

'दुवरा भूलीए भूली बाबा जे रोवेले
कतहीं न देखों हो बेटी नुपुरवा हो तोहार।
ओंगाना भूलीए भूली आमा जे रोवेली,
कतहीं न देखों हो बेटी, रसोइया झामाझाल।
रसोइया भूलीए भूली भउजी जे रोवेली
कतहीं ना देखों हे बेटी रसोइया झाझाराल'

इसमें सन्देह नहीं कि पुत्री की बिदाई का समय बड़ा ही दुखदायी होता है। इस कारुणिक दृश्य को देखकर पाषाण का हृदय भी पिघल जाता है।

अन्य भाषाओं के लोक-गीतों में भी कन्या की बिदाई के अवसर पर इसी प्रकार के भाव प्रकाशित किये गये हैं। मानव हृदय सर्वत्र एक समान है। चाहे वे गीत भोजपुरी के हों अथवा गुजरात या बंगाल के सभी में एक ही भाव-धारा प्रवाहित हो रही है। पंजाबी लोकगीत में कोई कन्या

१ डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ७४
२ डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ७५

विदाई के समय अपने पिता से कह रही है कि ए पिता जी ! मैं तो एक चिड़ियाँ हूँ। मुझे तो एक दिन उड़ जाना होगा। मेरी उड़ान बड़ी लम्बी है। मुझे किसी अनजान देश में उड़कर जाना होगा। ए पिताजी ! मेरे बिना आपका चौका-बर्तन कौन करेगा ? घर में बैठी हुई मेरी माँ विदाई के अवसर पर रो रही है :—

"साँडा चिड़ियाँदा चम्बा वे बाबल असीं उड़ जाना।
साडी लम्बी उडारो वे, बाबल के हड्डे देश जाना।
तेरा चौका भाण्डा वे, बाबल तेरा कौन करे ?
तेरा महल दों विचबिच वे, बाबल मेरी माँ रोवे ॥"

ठीक इसी प्रकार कोई गुजराती बहिन (बेन) अपनी दशा का वर्णन करती हुई कह रही है कि मैं तो एक हरे भरे खेत की चिड़िया हूँ। मैं उड़कर परदेश चली जाऊँगी। आज दादा जी के देश में हूँ, कल परदेश चली जाऊँगी।[1]

अमेरे लीलुड़ा वननी चर कलड़ी,
उड़ी जाशुं परदेश जो।
आज रे दादा जाना देश माँ,
काले जाशुं परदेश जो।

मैथिली

पुत्री की बिदाई के अवसर पर गाये जाने गीतों को मिथिला में "समदाऊनि" कहते हैं। इन गीतों में भी करुण रस पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इसका शृङ्गार प्रेम और करुणा के मोतियों से हुआ है। बिदाई के समय कोई मैथिल सास कहती है कि "गाय को खूटे में बाँधा जाता है। लेकिन बछिया को कौन बाँधता है। हाय ! मेरा दामाद मेरी बेटी को लिए भागा जाता है। दूध दुहने के समय गाय हँकारती है। बेटी की माँ बेटी की बिदाई के समय भोजन करते समय बिसूर रही है। × ×

माँ किसी पथिक से पूछती है कि क्या तुमने रास्ते में मेरी बेटी और दामाद को देखा है है ? वह पथिक स्वीकारात्मक उत्तर देता हुआ कहता है कि तुम्हारी बेटी की आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग रही है।[2]:—

---

१ मेघाणी – लोक-साहित्य पृ० १८३

२ राकेश —मै० लो० गी० पृ० १७३-७४

अँगने अँगने बुलु हँसइत जमाय।
धिया हे ममोछु मासु मन पिछताय॥
गैया के बँधितों में खुटा हे लगाय।
बछिया के लेल जाइ भागल जमाय॥
गैया जे हुँकरय दुहान बेर बेर॥
बेटी क माए हुँकरय रसोइया बेर बेर॥
बाट रे बटोहिया कि तुहि मोर भाय।
एहि बाट देखलो से धिया धी जमाय॥
देखलों मैं देखलों अमोखया तर ठाढ़
धीया हकन कानु हमइय जमाय
धियवा के कनइत मैं गंगा बहि गेल।
हमदा के हँसइत मैं धादरि उड़ि गेल॥"

राजस्थानी

राजस्थानी लोक गीतों में भी कन्या के बिदाई के गीत करुण रस से ओत प्रोत हैं। इन गीतों को राजस्थानी में 'बधावा' कहते हैं। कोई राजस्थानी नववधू अपने पति के साथ ऊँट पर बैठकर विवाह के पश्चात् ससुराल जा रही है। वह अपने पति से कहती है कि ए प्रियतम! केवल एक बार अपने ऊँट को लौटा लो। साजन! मुझे अपने पिता की बहुत याद आती है। इसी प्रकार वह अपनी माता, भाई और छोटी बहिन को देखने के लिए अपने पति से ऊँट को मोड़के ले चलने के लिए बार-बार कहती है परन्तु पति उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर देता है।[1] —

"एक घर करला था रा, मारू जी ! पाछा जी मोड़
रातीड़ा ढोला थोलूँ घणी आवै म्हारा बाबो सारी
एक-बार, ओ मारूजी, करला जी पाछा मोड़।
रातीड़ा ढोला थोलूँ घणी आवै म्हारी माय री"

इस गीत में पुत्री का अपने पति से ऊँट को मोड़के लौटा ले चलने का निवेदन कितना करुणा जनक है। इसी प्रकार से अन्य राजस्थानी बिदा-गीत भी करुण रस से सने हुए हैं।

---

१ पारीक — राजस्थान के लोक गीत भाग १ पृ० ३८२ ३

(ख) वियोग

लोक-गीतों में करुण रस की अभिव्यक्ति प्रिय-वियोग के अवसर बड़ी मार्मिक रीति से हुई है। प्रियतम के परदेश चले जाने पर पत्नी के लिए सारा संसार सूना लगता है। घर काटने को दौड़ता है। प्रिय के प्रवास के समय समस्त प्रकृति में एक अनोखी विषमता का साम्राज्य छाया हुआ रहता है। कोई भोजपुरी प्रोषितपतिका अपनी दयनीय दशा को दर्शाती हुई कह रही है कि अरे निर्मोही! लोभी! तुम्हे देखे बिना कितने लोग रो रहे हैं—घर में तुम्हारी घरनी रोती है, बाहर तुम्हारी हरिनी रोती है, तालाब में चकवा चकई रो रहे हैं। विछोह करते समय तुम्हें इन पर तनिक भी दया नहीं आई। गीत के इन शब्दों को सुनिये[1] :—

"घरावा रोवे घरिनी ए लोभिया,
बाहरवा राम हरिनिया।
ताहावा रोवे चाकावा चकइया,
विछोहवा कइले निरवामोहिया"॥

पति के वियोग में केवल उसकी स्त्री ही नहीं रो रही है प्रत्युत उसका वियोग पशु (हरिनी) और पक्षियों (चकवा, चकई) को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहता। महाकवि तुलसीदास ने राम के वन गमन के अवसर पर कुछ इसी प्रकार का करुणाजनक वर्णन किया है जिसमें अयोध्या के परिजन और पुरजन ही नहीं बल्कि समस्त चराचर दुःखी है।

एक दूसरी स्त्री भावी वियोग के दिनों को बिताने के लिए अपने प्रियतम से युक्ति पूछ रही है। वह कहती है कि ए प्रिय! तुम यदि परदेश में बहुत दिनों तक रहोगे तब अपनी आकृति को मेरी बाहों पर चित्रित करा दो जिसे देखती हुई मैं अपने दिनों को व्यतीत करूँगी। अथवा मेरे भाई को बुलाकर मुझे अपने मायके भिजवा दो। यदि तुमने परदेश में बहुत दिनों तक रहने का निश्चय कर लिया है तब मेरी बाँह पकड़ कर मुझे गंगा में डाल दो जिससे मुझे तुम्हारे असह्य वियोग को सहने का अवसर ही न मिले। गीत यह है[2]।:—

---

१ डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ७८

२ उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ७६

'जुगुति बताये जाव
ध्वन विधि रहबो राम ॥टेक॥
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं।
बिरना बोलाइ मोको नइहर पहुचाये जाव ॥ जुगुति०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं।
अपनी सुरतिया मोरे बहियाँ पर लिखाये जाव ॥ जुगुति०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं।

बहियाँ पकरि मोके गंगा भसिआये जाव ॥ जुगुति बताये जाव०

इस गीत के प्रत्येक पद से करुण रस चुआ पड़ता है। यह गीत क्या है करुण रस का कलश है। वियोग की आशंका से उत्पन्न दु:ख का इतना सरस, सजीव, अकृत्रिम तथा हृदय द्रावक वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

लोक-गीतों में भौरें को पति का प्रतीक माना गया है जो एक पुष्प के मकरन्द का पान कर दूसरे पुष्प से संबंध स्थापित करता है। कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि ए भौरो! तुम आज परदेश जाकर कितने दिनों में लौटोगे? मैं कितने दिनों तक तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करूँगी? जब पति बहुत दिनों तक परदेश से लौट कर नहीं आया तब स्त्री दु:खी होकर कहती है कि पति के आने की अवधि के दिन गिनते गिनते मेरी अँगुली घिस गई। उनके आने के दिन की प्रतीक्षा करते हुए मेरी आँखों से आँसू गिरते रहते हैं।[1]

"आजु रे गइल भवरा कहिया ले लवटब।
कतेक दिनवां, हम जोहबि तोरी बटिया॥
कतेक दिनवा।

गनत गनत मोरी अंगुरी भइल खियानी,
चितवते दिनवा, नैना से दुरे लोरवा॥
चितवते दिनवा।

एक बने गइली दोसर बन गइलीं,
तीसरे बनवा, मिलल गोरू चरवहवा,

---

१ डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ८२

गोरू चरवहवा तुहीं मोर भइया।
कतहुँ देखल ना, मोर भँवर वा परदेसिया॥
कतहुँ देखल ना।

गीत में वियोगिनी की व्याकुलता देखने ही योग्य है। प्रियतम के वियोग में विधुरा यह स्त्री उसे खोजने के लिए घर से बाहर निकल पड़ती है। अपने प्राणप्रिय को वन वन खोजती हैं परन्तु कहीं भी उसका पता नहीं चलता।

(ग) वैधव्य

विदाई और वियोग के गीतों में करुण रस की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है परन्तु वैधव्य के गीतों में यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ दिखाई देता है। इन में विषाद की गहरी रेखा खिची हुई है। बाल-विधवाओं की मनोवेदना का चित्रण भला किस प्रकार किया जा सकता है? इन बाल-विधवाओं में कितना भोलापन भरा हुआ है जो विवाह जैसी अजनबी चीज को जानती ही नहीं। इनकी दर्दनाक आहें किसके दिल को न दहला देंगी? इनके गीतों में बड़ी वेदना भरी हुई है।

एक भोली भाली बाल विधवा अपने पिता से पूछ रही है कि आपने किस लिए मेरी शादी की? कब मेरा गवना किया? पिता उत्तर देता है तेरी शादी आनन्द भोगने के लिए मैंने की तथा मुहूर्त देखकर तुम्हारा गवना किया। इस पर बेटी कहती है कि ए पिता जी! मेरा सिर सिन्दूर के बिना रो रहा है, आँखें काजल के बिना रो रही हैं, मेरी गोद पुत्र के बिना रो रही है और मेरी सेज पति के बिना रो रही है।[1]

"बाबा सिर मोरा रोवेला सेनुर बिनु,
नयना कजरवा बिनु ए राम।
बाबा गोद मोरा रोवेला बालक बिनु,
सेजिया कन्हइया बिनु ए राम॥"

गीत की अन्तिम दो पक्तियों के कितनी मार्मिक वेदना भरी पड़ी है। करुणा रस का प्रवाह कितना गभीर है।

शान्त रस

लोक गीतों में शान्तरस का बड़ा ही सुन्दर परिपाक दिखाई पड़ता है। देवी देवताओं की स्तुति विषयक गीतों में जिस प्रकार भक्ति का उद्रेक

---

१ डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ८४

दृष्टि गोचर होता है उसी प्रकार भजनों में ऐहिक जीवन की निःसारता और पारलौकिक जीवन की महत्ता प्रतिपादित की गई है। स्त्रियों की कामना के केन्द्र दो ही हैं—माँग और कोख अर्थात् पति और पुत्र। इनके कल्याण साधन के लिए वे भिन्न भिन्न देवी देवताओं से मंगल की कामना किया करती हैं। इन देवताओं में एक प्रधान देवता षष्ठी माता (छठी माई) हैं जिनकी पूजा कातिक शुक्ल षष्ठी को भोजपुरी प्रदेश में बड़े उमंग तथा उत्साह के साथ की जाती है। यह व्रत प्रधानतया पुत्र की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

कोई वन्ध्या स्त्री षष्ठी माता से पुत्र कामना की प्रार्थना करती हुई कहती है कि ए माता! मेरा जीवन निरर्थक सा प्रतीत होता है। सास मुझे दुतकारती है, ननद गालियों की बौछार करती हैं और पति भी मुझे कष्ट देता है। बेचारी का दोष केवल यही है कि उसकी गोद पुत्र के बिना सूनी है। अन्त में सूर्य भगवान् उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लेते हैं।

दूसरा प्रसंग उस समय का है जब प्रातःकालीन प्राची गगन में अरुण की आभा तनिक छिटक रही है। रात के चेहरे पर से अन्धकार का काला परदा उठ गया है। परन्तु अभी सूर्य भगवान् का उदय नहीं हुआ है। भक्त नारी का हृदय बेचैन हो रहा है कि कब भगवान् सूर्य का उदय होगा। सूर्योदय की प्रतीक्षा करते करते वह थक सी जाती है। उस समय उसके मुँह से जो प्रार्थना निकलती है वह कितनी भक्ति पूर्ण और भावपूर्ण है[1]—

"ए आमा के कोरा पइसि सुतेले अदितमल,
भोरे हो गइले बिहान।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल,
अरघ दिआऊ॥
फलवा फूलवा ले ले मालिनि थिटिया ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआऊ॥
गोड़वा दु:खइले रे डाढ़वा पिराइले,
कब से जे हम पानी ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल,
अरघ दिआऊ॥

1. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ८८

शीतला (चेचक) के होने पर जब बालक का शरीर जलने लगता है, बेहद पीड़ा होती है, तब उसकी जननी भक्ति भावना से झूमते हुए दयामयी शीतला माता से प्रार्थना करती है कि मैं रोग से पीड़ित बालक की माँ हूँ। मैं अपना आँचल पसार कर भीख माँग रही हूँ। इस बालक को मुझे भिक्षा-रूप में दीजिये। ए मेरी मन की इच्छाओं की पूर्ति करने वाली शीतला माता! इस बालक को भीख दीजिये अर्थात् इसके रोगों को दूर कीजिए। गीत इस प्रकार है :—

"पटुका पसारि भीखि माँगेलो बालाकवा के माई,
हमरा के बालाकवा के भीखि दीं।
मोर दुलारी हो मइया,
हमरा के बालाकवा भीखि दीं।
आँचारा पसारि भीखि माँगेले बालाकवा के बाबा,
हमरा के बालाकवा भीखि दीं।
मोरी मनवा राखनि मइया,
हमरा के बालाकवा भीखि दीं।"[1]

बालक की दर्द-भरी आहों से व्याकुल होकर उसकी माँ जब उपर्युक्त गीत को मस्ती में झूम झूम कर गाती है तब सुनने वालों के शरीर में रोमाञ्च हो जाता है। उनका हृदय माता की प्रार्थना पर पिघलने लगता है।

भजनों में शान्तरस की मात्रा अत्यधिक है। इनमें संसार की निःसारता, जीवन की अनित्यता और वैभव की क्षण-भंगुरता का सुन्दर प्रतिपादन मिलता है। वृद्धा स्त्रियाँ जब गङ्गा स्नान या तीर्थ-यात्रा के लिए जाती है तब वे इन भजनों को प्रायः गाया करती है। एक तो भजनों का कोमल भाव, दूसरे इन वृद्धाओं के कण्ठ से निकली हुई भक्त विह्वल ध्वनि, तीसरा प्रातः काल का सुहावना समय—ये तीनों मिलकर इन भजनों को इतना रसमय बना देते हैं कि सुनने वालों का हृदय इस सांसारिक प्रपञ्च से दूर हटकर भगवद्भक्ति के सागर में गोता लगाने लगता है। शरीर की क्षणभंगुरता का द्योतक यह गीत कितना सरस है।

'का देखि के मन भइल दिवाना, का देखि के। टेक
मानुख देहि देखि जनि भूल,
एक दिन माटी होई जाना। का देखि०

---

१ डा० उपाध्याय— भो० लो० गी० भाग १ पृ० ८६

आरे इ देहिया कागद की पुड़िया,
बूंद परे मिहिलाना। का देखि०
इ देहिआ के मलि मलि धोवलों,
सोवा चनन चढ़ाई।
ओहि देहिया पर कागा भिनकें,
देखत लोग घिनाई॥" का देखि०

हास्य रस

लोक-गीतों में हास्य रस का भी पुट पाया जाता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन गीतों का हास्य ग्रामीण होते हुये भी ग्राम्य नहीं है। विवाह के अवसर पर ससुराल में वर के साथ जो परिहास किया जाता है वह कितना मीठा है, कितना विशुद्ध है। कहीं कहीं इन गीतों का व्यङ्ग इतना चुभता और चुटीला होता है कि पाठकों के हृदय पर उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। शिवजी के विवाह के अवसर पर पार्वती की माता शिव की विचित्र तथा वीभत्स आकृति को देख कर डर जाती है और कहती है कि ऐसे वर से मैं पार्वती का विवाह नहीं करूँगी चाहे वह अविवाहित ही क्यों न रहें।

"धिया लेके उड़बी धिया लेके बुड़वि
धिया लेके खिलबो पाताल।
अइसन तपसिया के बर नाहीं देबो
बलु गउरा रहिहें कुँवार॥"

पार्वती अपनी माता से शिवजी की जो हुलिया बतलाती है उसे पढ़कर हँसे आये बिना नहीं रह सकती। वह कहती हैं कि शिव जी की दाढ़ी सूप के समान हैं। वे भाँग पीते हैं और धतूरे की गोली निगल जाते हैं[1]।—

"सूप अइसन दढ़िया ए आमा ; बरध अस आँखी।
उहे तपेसिया ए आमा, हमें बेलमाई।
भँगिया पीसत ए आमा जीयरा अकुलाई।
धतुरा के गोलिया ए आमा, हायावा रे खिआई

सुन्दर चित्रों के अंकन करने में चित्रकार जितने सिद्धहस्त दीख

---

1. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १—पृ० २४६

पड़ते हैं उतने वे कुरूप तथा भद्दे चित्रों के चित्रण में नहीं। कुरूपता के चित्रण में भी एक विशेष कला है। आदर्श सती स्त्रियों के चित्रण से हमारा साहित्य भरा पड़ा है। परन्तु कुलटा स्त्रियों का कला पूर्ण चित्र बहुत कम मिलता है। इस दृष्टि से कर्कशा स्त्री का यह निम्नांकित चित्रण हास्य रस के नितान्त अनुकूल है।[1]

"धनि धनि रे पुरुष तोरि भागि करकसा नारि मिली।
सात घरी दिन रोय के जागी,
लिहिन बढ़निया उठाय।
निहुरे निहुरे अँगना बटोरे,
घर भर को गरिआय ॥१॥
करकसा नारि मिली।
बखरी पर से कौवा रोवे, पहुना अइले तीन।
आव पाहुन घर में बइठ, कंडा लाऊँ बीन ॥२॥
करकसा नारि मिली।
हँड़िया भरि के अदहन दिहली, चाउर मेरवली तीन।
कठवत भरि के माँड़ पसवली, पिय हिलोर हिलोर ॥३॥
करकसा नारि मिली।
सात सेर के सात पकवली, नव सेर के एक।
तू दहिजरऊ सातो खइल, हम कुलवन्ती एक ॥४॥
करकसा नारि मिली।
डेहरी बइठे तेल लगावे, सेंदुर भरावै माँग।
आँचर पसारि के सुरुज मनावे,
कब होइबो मैं रांड़ ॥
धनि धनि रे पुरुख तोरि भागि
करकसा नारि मिली।"

उपर्युक्त गीत में कर्कशा स्त्री का जो सजीव वर्णन किया गया है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

वीर रस

'आल्ह खण्ड' वीर रस का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। कौन ऐसा मनुष्य

---

१ डा० उपाध्याय—वही पृ० ७०-७१

होगा जिसकी धमनियों में इसे पढ़ या सुनकर खून न दौड़ने लग जाय ? वर्षा ऋतु में अल्हैतों के द्वारा 'आल्ह खण्ड' को गाते सुनकर बूढ़ों के भी दिल में जोश उमड़ पड़ता है। सचमुच ही आल्हा वीर रस का अनूठा काव्य है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में वीर रस भरा पड़ा है। सिरसा गढ़ की लड़ाई का यह वर्णन पढ़िये जिसमें गाढ़ बन्धता लाने के लिए कवि ने वैसे ही उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया है :—

"दोनों फौजन के अन्तर में, रहि गयो तीन पैग मैदान।
खटखट तेगा बाजन लागो, जूझन लगे अनेकन ज्वान।
बढे सिपाही दोनों दल के, सब के मारु मारु रट लागि।
पैदल अभिरि गये पैदल सग, औ असवारन ते असवार।
हौदा के संग हौदा मिलि गये, हाथिन अड़ो दाँत से दाँत।
सूड़ि लपेटा हाथी होइगे, औ बहि चली रक्त की धार।"

इन शब्दों में कितना ओज गुण भरा हुआ है। इसी प्रकार आल्ह खण्ड के अन्य स्थलो से ऐसे ही अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।[1]

प्रसिद्धनारायण सिंह ने अपने 'भोजपुरी वीर काव्य' में सन् १८५७ ई० के विद्रोह के नेता बाबू कुँअर सिंह का वर्णन बड़ी ही ओजपूर्ण भाषा में किया है। अंग्रेजों के साथ कुँअर सिंह के युद्ध का वर्णन करते हुए यह कवि लिखता है कि[1] :—

"छप छप गोरन के काटि चलल,
रन भूमि रकत से पाटि चलल।
जे जहँ मिलल ते तहँ मुअल,
शासन के सोरि उपारि चलल॥"

फिर आगे यही कवि कहता है कि :—

"अइसन सेना बलिदानी ले,
मद में मातल तूफानी ले।
आइल रन में रिपु का आगे,
जब कुंअर सिंह सेनानी ले।

---

१ नारायण प्रसाद मिश्र—असली आल्ह खण्ड
प्रकाशक—बैजनाथप्रसाद बुकसेलर—वाराणसी

१ 'भोजपुरी' वर्ष ४ अंक ३—६ (जनवरी १९२६)

खच खच खंजर तरुआरि चलल,
संगीन, कृपान, कटारि चलल।
बर्छा बर्छी का बरखा में,
बहि लाल लहू के धार चलल॥"

इसी लोक कवि ने सन् १९४२ ई० में अंग्रेजों द्वारा उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में जो अत्याचार किया गया था उसका बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। इससे ज्ञात होता है कि लोक-भाषा में भी कितनी वीर-रसमयी कविता की जा सकती है।

"सड़कन डालन से पाटि पाटि,
पूलन के दिहली काटि काटि।
तहसील खजाना लूटि फूँकि,
अगवढ़ि दिहनी तनखाह बाटि।
अपना खूनन से सींचि सींचि,
गड़ली हम झंडा जिला बीच।
गूँजल हमार जब विजय घोष,
आइल तब नेदरसोल नीच॥"

अंग्रेजों द्वारा जनता पर किये गये अत्याचारों का यह वर्णन पढ़िये।

"गाँवनि पर दगलनि गन मशीन।
बेतन सन मरलन बीन बीन॥
बैठाई डाल पर नीचे से।
जालिम भोंक लन खच खच सँगीन॥

× × ×

घर घर से निकलल आहि आहि,
कोना कोना से आहि आहि॥
गाँवन गाँवन में लूट फूक,
मारल, काटल, भागल पराहि॥

इस प्रकार प्रसिद्धनारायण सिंह ने बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में सन् ४२ ई० के आन्दोलन का वर्णन किया है।

सन् १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम के अग्रणी बाबू कुँवर सिंह पर 'कुँअरायन' नामक वीर काव्य अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है जो वीर रस से परिपूर्ण हैं:—

(ग)—लोक-गीतों में छन्द-विधान

लोक-गीत जगल के फूल की तरह स्वतन्त्र वातावरण में उत्पन्न होते हैं और उसी वातावरण में इनका विकास भी होता है। ये छन्द-विधान के बन्धनों से परे होते हैं। ग्रामीण कवि कविता करते समय छन्दः शास्त्र के नियमों को याद कर के नहीं बैठता और न वह जगण, रगण और मगण की भूल भुलैया में ही पड़ता है। न तो वह मात्रिक और वर्णिक छन्दों के चक्कर में पड़ता है और न वह भिन्न तुकान्त कविता की रचना-प्रणाली की ही चिन्ता करता है। उसके हृदय में जो भाव-धारा अनायास आ जाती है उसे वह "स्वान्तः सुखाय" प्रकाशित करता है। इसीलिए लोक-गीतों में छन्द विधान का कोई निश्चित नियम नहीं दिखाई पड़ता। ऐसी दशा में इस विषय के अनुसन्धान-कर्ता का कार्य बड़ा ही कठिन हो जाता है।

लोक-गीतों के संबंध में प० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि "इनमें छन्द नहीं, केवल लय है।"[1] त्रिपाठी जी का यह कथन यथार्थ है। गीतों में लय की ही प्राधनता होती है।

सोहर

लोक कवि गीतों को बनाते समय छन्द विधान की ओर ध्यान नहीं देते। इसी कारण से गीतों की कोई पक्ति बहुत बड़ी तो कोई बहुत छोटी होती है। उदाहरण के लिए सोहर की ये चार पक्तियाँ लीजिए जिनकी प्रत्येक पक्ति में अक्षरों की सख्या भिन्न-भिन्न है :—[2]

"हम ना अइबों ए आमा, हम ना अइबों हो।
ए आमा मइलाहि लुगवा सुतइबू थारेइया कहि बोलइबू नु हो।
आवहु ए बबुआ आवहु मोंहि जुड़वावहु हो।
सार्फाहि लुगवा सुताइबि बबुआ कहि बोलाइबि हो।"

इस सोहर की प्रथम पक्ति में १६ अक्षर हैं तो दूसरी पंक्ति में २६ अक्षर विद्यमान है। इसी प्रकार से तीसरी और चौथी पंक्तियों में भी अन्तर है। कहने का आशय यह कि सोहर की इन पंक्तियों में अक्षरों के किसी

---

१ त्रिपाठी—कविता-कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत) पृ० १।
२ डा० उपाध्याय-वही

नियम या क्रम का पालन नहीं किया गया है। इसी प्रकार निम्नलिखित भजन की पक्तियों में भी छन्द शास्त्र का कोई नियम नहीं दिखाई पड़ता[१]:

"सोने का खड़उवा राजा रामचन्द्र ठाढ़ भइले मोंह ऑगाना।
राम हुकुम दीही ना मोरी माता जी, हम जइबो बनरटना।
जाहु तुहु जइबो हो बनरटना।
कढ़वो में रघुपति छुरिया, मैं हतबों पारान अपना॥"

यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब इन गीतों में छन्दशास्त्र के नियमों का पालन नहीं किया है और प्रत्येक पंक्ति में अक्षर-सख्या सबधी इतनी विषमता है तब इन्हें गाते समय छन्दो भग अवश्य होता होगा और इनकी गेयता में बाधा उपस्थित होती होगी। परन्तु नहीं, बात ऐसी नही है। स्त्रियाँ इन गीतों को गाते समय छन्दोभग दोष को बचाने के लिए कहीं ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व बना कर गाती है। कहीं किसी पद में अक्षरों की कमी हुई तो उसे अपनी ओर से जोड़ भी लेती है। इस प्रकार न तो कही छन्दोभंग ज्ञात होता है और न कहीं गेयता में गतिरोध ही उत्पन्न होता है।

लोक गीतों में प्रायः तुक नहीं होता है। यद्यपि विरहा के गीतों में कहीं-कहीं तुक पाया जाता है परन्तु इसे नियम की अपेक्षा अपवाद ही समझना चाहिए। इस प्रकार लोक-गीतों को भिन्न तुकान्त कविता की जननी समझना चाहिए। जिस प्रकार आधुनिक अतुकान्त कविता में लय की प्रधानता है उसी प्रकार लोक-गीतों में भी लय ही मुख्य वस्तु है। लय के द्वारा गाये जाने के कारण ये गीत इतने सरस और मनोहर मालूम होते हैं।

सुप्रसिद्ध भाषा तत्ववेत्ता डा० ग्रियर्सन ने विरहा का छन्द-विधान बतलाते हुए लिखा है कि पढते समय ये विरहे शायद ही छन्द के नियमों के अनुसार मिलें जब तक हम यह याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढते समय लघु कर दिये जाते हैं। इनमें कभी कभी कुछ ऐसे भी व्यर्थ के शब्द होते हैं जो छन्द के अगभूत नहीं होते।[२] इसी विद्वान् ने आगे चल अपना

---

२ डा० उपाध्याय—वही पृ० ४६८

2 In reading them Birhas—they will really be found to agree with this, unless we remember that many long syllables must be read as short that is one instant Sometimes, there are superfluous words which donot form part of the metre.

मत प्रकट करते हुए स्पष्ट लिखा है कि इन गीतों की यह विशेषता है कि पिंगल शास्त्र के नियम इनके सम्बन्ध में शिथिल पड़ जाते हैं।[1]

विरहा

अहीरों का राष्ट्रीय गीत विरहा है। इसमें चार चरण होते हैं। इसीलिए इसे 'चरकड़िया' (चार कड़ी वाला) भी कहते हैं। इसके प्रथम और तृतीय चरण में १६ अक्षर होते हैं और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में १० अक्षरों का विधान पाया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रथम और तृतीय चरण के अन्तिम दो अक्षर क्रम से लघु और गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ के अन्तिम दो अक्षरों में गुरु और लघु का क्रम पाया जाता है। नीचे के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।[2]

"पिया पिया कहत पियर भइली देहिया
लोगवा कहेला पिंढ रोग।
गववाँ के लोगवा त मरमियो ना जानेला,
भइले गवनवा न मोर।"

यह विरहा उपर्युक्त नियम की कसौटी पर खरा उतरता है। इस छन्द के नियमानुसार इसके प्रथम तथा तृतीय चरण में १६ अक्षर और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में १० अक्षर उपलब्ध होते हैं। विभिन्न चरणों के अन्तिम दो अक्षरों में लघु और गुरु का क्रम भी ठीक है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए जिसमें उक्त नियम का पालन विधिवत् किया गया है।[3]

"गोरि गोरि बहियाँ गोरि गोदना गोदावेले,
मोर साले अलहर करेज।
अइसन गोदना गोदू ना रे गोदनरिया,
चूनरी रँगेला रँगरेज॥"

परन्तु इस नियम का पालन सर्वत्र नहीं दिखाई पड़ता है। नीचे के विरहे में इस नियम का उल्लघन स्पष्ट है :—

ज० रा० ए० सो० (१८८९ ई०)

1 The peculiarities of all these songs is that the fetters of metre lie upon them very loosely indeed

ज० रा० ए० सो० (१८८९ ई०)

२ डा० उपाध्याय—वही पृ० ४४७

३ डा० उपाध्याय—वही पृ० ४४४

'पिसवा के परिकल मुसरिया तुसरिया,
दूधवा के परिकल बिलारि।
आपन आपन जोबना सँभरि हे ए बिटियवा,
रहरी में लागल बा हुँडार ॥"

इस विरहे के तृतीय और चतु ॅ चरण में १८ और ११ अक्षर हैं जो नियम के प्रतिकूल है।

डा० ग्रियर्सन ने यति के ऊपर विशेष ध्यान देते हुए विरहा के प्रत्येक चरण के लिए निम्नलिखित नियम बतलाया है।

प्रथम चरण ६+४+४+२=१६ अक्षर
द्वितीय चरण ४+४+३=११ अक्षर
तृतीय चरण ६+४+४+२=१६ अक्षर
चतुर्थ चरण ४+४+४=१२ अक्षर

परन्तु इस नियम का पालन जिन विरहों में हुआ है उनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

आल्हा

आल्हा एक विशेष प्रकार का छन्द है। प्रसिद्ध कवि जगनीक ने महोबे के विख्यात वीर आल्हा-ऊदल की कथा 'आल्हा' नामक छन्द में लिखी है। यह छन्द इतना लोक-प्रिय हुआ कि फिर तो उस पुस्तक का नाम ही 'आल्हा' पड़ गया। इसके पश्चात् जो भी कविता इस छन्द में लिखी जाने लगी उसे 'आल्हा' नाम से अभिहित किया जाने लगा।

यह छन्द वीररस के वर्णन में बड़ा ही उपयुक्त होता है। जिस प्रकार संस्कृत में मन्दाक्रान्ता छन्द प्रावृट् तथा प्रवास के वर्णन में प्रयुक्त होता है और हिन्दी में शृङ्गार के वर्णन में सवैया तथा कवित्त का प्रयोग होता है उसी प्रकार जहाँ वीर रस का वर्णन करना होता है वहाँ 'आल्हा' छन्द का प्रयोग समीचीन होता है। इस छन्द में वीर रस की जैसी सुन्दर अवतारणा की जाती है वैसी सम्भवतः हिन्दी के किसी दूसरे छन्द में नहीं हो सकती। एक उदाहरण लीजिए :—

"खट खट खट खट तेगा बाजै,
बाजै छपकि छपकि तलवार।
धद धद धद धद गोला छूटै,
धुवाँ धूरि एक ह्वै जाय।

सर सर तीर करे धनु हनते,
गोली फटकि फटकि रहि जाय।
गिरे सिपाही दोनों दल के,
अपनी खींचि खींचि तरवार।

सोहर

पुत्र जन्म के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें सोहर कहते हैं। चूंकि ये गीत 'सोहर' नामक छन्द में लिखे गये हैं अतः इनका नाम ही 'सोहर' पड़ गया है। लोक-कवि पिंगल शास्त्र के पचड़े में पड़कर अपनी काव्य-रचना करने नहीं बैठता। वह सर्वथा स्वतन्त्र होता है और उसके हृदय में जो भाव आते हैं उन्हें छन्द शास्त्र के नियमों की पर्वाह न करता हुआ लिपि-बद्ध करता है। यही कारण है कि सोहर के गीतों की प्रत्येक पंक्ति में अक्षरों अथवा मात्राओं की समानता नहीं पाई जाती। उदाहरण के लिए सोहर की ये पंक्तियाँ लीजिए :—

"माघ ही मास के चउथिया, बहुवा मोरी झुखेली हो।
ए ललना! बहुआ चलेले असनान, त सासु निरेखेली हो॥१॥

इसमें प्रथम पंक्ति मे १६ अक्षर और दूसरी में २२ अक्षर हैं। इसी प्रकार—

"बाजन बाजेला बनहि बीखे, अजोधा में तदपेला हो।
बालाना असीहि कोस हो अजोधा, सबद कानवा परि जइहें हो।"

उपर्युक्त गीत की पहली पंक्ति में २० अक्षर और दूसरी पंक्ति मे २४ अक्षर हैं। इस गीत की अन्य पंक्तियों में भी इसी प्रकार अक्षरों का कोई समान क्रम नहीं दिखाई पड़ता है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्त्री-कवियों ने सोहर के निर्माण में बड़ी स्वतन्त्रता से काम लिया है और उन्होंने छन्द-शास्त्र के नियमों पर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'राम लला नहछू' में सोहर छन्द का प्रयोग किया है परन्तु उन्होंने इनकी मात्राओं को ठीक करके इसे साहित्यिक रूप प्रदान किया है। तुलसीदास जी ने जिन सोहर छन्दों का प्रयोग किया है वे छन्दःशास्त्र की दृष्टि से नपे तुले और उचित है। गोस्वामी जी ने 'राम लला नहछू' में तुक भी मिलाया है और मात्रायें भी प्रत्येक पद में बराबर रखी है। जैसे :—

"बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिन, हाथ बरायन हो।

अहिरिनि हाथ दहेडी सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।
रूप सलोनि तंबोलिनि बीरा हाथहिं हो।
जाकी ओर विलोकहिं मन उन साथहिं हो।
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगन्धन बोरा हो।
नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो।

घ) लोक–गीतों में भाव-व्यञ्जना और छन्द विधान का सामञ्जस्य

संस्कृत मे छन्द विधान का नियम

छन्द—विधान और भाव-व्यञ्जना में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस प्रकार के भावों की व्यञ्जना करनी हो उनके अनुकूल ही छन्दों का प्रयोग समुचित होता है। संस्कृत साहित्य में भाव-व्यञ्जना और छन्द-विधान का अत्यधिक सामञ्जस्य पाया जाता है। सस्कृत के कवियों ने विभिन्न भावों को द्योतित करने के लिए विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्त तिलक' में इस विषय पर बड़ा गम्भीर विवेचन किया है और यह दिखलाया है कि विभिन्न रसों की अवतरणा के लिए भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग ही समुचित होता है। उन्होंने लिखा हैं कि प्रावृट् (वर्षा) और प्रवास के वर्णन के लिए मन्दाक्रान्ता छन्द अधिक उपयोगी होता है।

"प्रावृट्प्रवासकथने, मन्दाक्रान्ता विशिष्यते।"

मन्दाक्रान्ता का शाब्दिक अर्थ होता है धीरे धीरे आक्रमण करने वाला। इस छन्द में भाव तथा लय की वृद्धि उत्तरोत्तर होती जाती है। इसी कारण इसमें प्रवास या विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन बड़ा सुन्दर होता है। संभवतः महाकवि कालिदास ने इसी हेतु अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'मेघदूत' में केवल इसी छन्द का प्रयोग किया है। प्रवास वर्णन में करुण रस की प्रधानता होती है। अतः मन्दाक्रान्ता में इस रस का वर्णन अन्य छन्दों की अपेक्षा अधिक समीचीन होता है।

क्षेमेन्द ने आगे चल कर यह भी लिखा है जहाँ केवल वस्तु वर्णन और नीति-कथन हो वहाँ अनुष्टुप छन्द का प्रयोग प्रशसनीय होता है।

इसी प्रकार से भयकर वस्तु एवं प्रचण्ड रूप के वर्णन में स्रग्धरा आदि लम्बे छन्दों का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से भाव तथा तदनुरूप छन्दों का सम्मिलित बल श्रोताओं के हृदय पर समधिक प्रभाव उत्पन्न करता है।

हिन्दी साहित्य में इस विषय की विशेष विवेचना उपलब्ध नहीं होती। परन्तु रीति कालीन कवियों ने संभोग तथा विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन में प्रायः सवैया छन्द का प्रयोग किया है। यदि किसी वस्तु का लम्बा वर्णन कर उसमें गाढबन्धता लानी अभीष्ट हुई तो घनाक्षरी या कवित्त छन्द का उपयोग किया जाता है। हिन्दी में घनानन्द और मतिराम के सवैये तथा देव और भूषण के कवित्त अपना सानी नहीं रखते। मतिराम ने "ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि; त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई" लिख कर नायिका के शरीर की गुराई के साथ ही साथ अपनी सवैया की सुघराई की ओर भी संकेत किया है।

लोक-गीतों के रचयिताओं की जो कवितायें उपलब्ध होती हैं उनके अध्ययन से पता चलता है कि इनमें भाव-व्यञ्जना और छन्द-विधान का प्रचुर सामञ्जस्य है। मानव जीवन के हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुःख आदि जिन परिस्थितियों का वर्णन हुआ है प्रायः उन्हीं के अनुकूल छन्दों का प्रयोग भी पाया जाता है। यद्यपि लोक-कवि ने जाने-बूझ कर ऐसा किया होगा यह कहना कठिन है।

भाव-व्यञ्जना और छन्द का समन्वय

लोक-गीतों में जहाँ जीवन की आनन्दात्मक वृत्ति का वर्णन है, जहाँ उल्लास, उत्साह एव संभोग का उल्लेख है वहाँ प्राय' झूमर का प्रयोग किया गया है। झूमर की प्रत्येक पंक्ति छोटी-छोटी होती है इसकी लय ऐसी सुन्दर और सरस होती है कि इसके सुनने से आनन्द की अद्भुत अनुभूति होती है। किसी स्त्री की यह उक्ति सुनिये:—

"ना जानो यार झुलनी मोरा कहाँ गिरा। टेक —
पनिया भरन जाऊँ राजा न जानो,
यहाँ गिरा ना जानो वहाँ गिरा न जानो
रोटिया पोवन जाऊँ राजा न जानो
यहाँ गिरा ना जानो वहाँ गिरा ना जानो॥"

झूमर छन्द का लय बड़ा द्रुत होता है। यह बड़ी शीघ्रता के साथ

गाया जाता है। स्त्रियाँ गोल आकार में खड़ी होकर झूम-झूम कर इसे जल्दी-जल्दी गाती हैं। झूम-झूम कर गाने के ही कारण इस गीत का नाम झूमर पड़ गया है। द्रुत लय में गाये जाने से इस छन्द में आनन्द, हर्ष और उल्लास का वर्णन समुचित रूप से किया जाता है। संभोग शृङ्गार का— जिसमें आनन्द और हर्ष की अधिकता होती है—वर्णन इस छन्द में बड़ा ही समीचीन होता है। उदाहरण के लिए एक दूसरी झूमर सुनिये जिसमें उपर्युक्त विशेषतायें उपलब्ध होती हैं।[1] :—

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमके
मोरी बारी उमिरिया लहर तरसे। टेक—
सोने की थारी में जेवना परोसलों,
मोर जेवन वाला विदेस तरसे ॥२॥ मोरी०
झझरे गडुअवा गंगा जल पानी,
मोर पीयन वाला विदेस तरसे ॥३॥ मोरी०
लवंग इलायची के बीरा लगवली।
मोर कूँचन वाला विदेस तरसे ॥४॥ मोरी०
कलिया चुनि-चुनि सेजिया डसवलीं।
मोर सूतन वाला विदेस तरसे ॥५॥ मोरी०

मैथिली लोक-गीतों में भी संभोग शृङ्गार का वर्णन तथा आनन्द एवं हर्ष का उल्लेख झूमर के गीतों में ही हुआ है। एक मैथिली झूमर सुनिये जिसमें जूही—चमेली के सूँघने तथा अनार के चखने के संबंध में दो सखियों में वार्तालाप हो रहा है।[2]

"कहमा लगएलौं मैं जुही-चमेली,
कहमा लगएलौं अनार हे।
नारियर के गछिया
दुअरे लगएलौं मैं जुही-चमेली
अँगने लगएलौं अनार हे।
नारियर के गछिया।
कय फल फूलै जुही-चमेली
कय फूल फूलै अनार हे

1 डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग 1 पृ० ८१
२ राकेश : मै० लो० गी० पृ० २०७

नारियर के गछिया
दस फूल फूलै जुही-चमेली
दुइ फूल फूलै अनार हे
नारियर के गछिया
केहि सखि चिखलन जुही-चमेली,
केहि सखि चिखलन अनार हे
नारियर के गछिया।
देवरा दहेला चिखै जुही-चमेली
सँइया रँगीला अनार हे
नारियर के गछिया

उपर्युक्त मैथिली झूमर में संभोग शृङ्गार का सुन्दर तथा मनोहारी वर्णन हुआ है।

जीवन के गंभीर पक्ष की अभिव्यक्ति के लिए, हृदय के मार्मिक भावों की अभिव्यञ्जना के लिए, लम्बे लम्बे छन्दों की आवश्यकता होती है जिससे रसका स्रोत शीघ्र ही सूख न जाय। इसलिए विप्रलंभ शृङ्गार का वर्णन प्रधानतया जतसार और निर्गुन के गीतों में हुआ है। जाँत के गीत लोक-गीतों की परम्परा में प्रायः सब से लम्बे होते है। अतः करुण रस की जो सरिता इसमें प्रवाहित होती है उसका स्रोत अविच्छिन्न रूप से बहता रहता है। एक उदाहरण लीजिए।[1]

"ए राम जेहि बन सिकियो ना डोलेला,
बघवो ना गुजरेला ए राम।
ए राम ताहि बने हरि मोर गइले
त केहु ना सनेसिया ए राम॥
ए राम मचिया बइठल तुहुँ आमा,
त अवरू से आमा मोरी ए राम।
ए राम विपतलि धियवा रे सगेरू,
त विपति गवने अइलों ए राम॥
ए राम पासावा खेलत तुँहु भइया,
त अवरू से भइया मोरे ए राम।
ए राम विपतलि बहिना रे संगेरू,

1 डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १ पृ० ३०६-१०

कँगाना ले गइले चोर।
अरे कँगाना ले गइले चोर।

(ङ) लोक गीतों में तुक और लय

तुक के प्रयोग से कविता को स्मरण रखने में सहायता मिलती है। यह कुछ अंश तक श्रुति-मधुर भी होता है। इसीलिए प्राचीन हिन्दी कवियों ने तुकान्त कविता की रचना की है। संस्कृत भाषा में तुकान्त कविता नहीं होती और अंग्रेजी भाषा में भी बहुत सी ऐसी कवितायें उपलब्ध होती हैं जिनमें तुक का अभाव होता है। यद्यपि तुक काव्य का आवश्यक अंग नहीं है फिर भी इसके प्रयोग से कविता में नाद-सौन्दर्य आ जाता है। तुकान्त कविता का पाठ मधुर मालूम पड़ता है।

लोग गीत प्रायः तुकान्त होते हैं। परन्तु इनमें तुक का पालन कठोरता के साथ कहीं किया जाता। कहीं तो पद के अन्त में समान स्वर मिलते हैं और कहीं समान व्यञ्जन। कहीं पर प्रत्येक पंक्ति में एक ही शब्द या शब्दावली का प्रयोग समान रूप से पाया जाता है और कहीं विषम पक्तियों में। भोजपुरी 'चैता' की प्रत्येक पक्ति में 'हो रामा' और मैथिली 'वटगमनी' के गीतों में 'सजनि गे' शब्दों की आवृत्ति पुनः पुनः पायी जाती है। इससे इन गीतों की मधुरता में उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त होती है। नीचे के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

"कब होइहे दरसनवा हो मोरा साम सुनर के।
सपना में देखलों भवनवा हो, अपना साम सुनर के।
लिखियो न भेजेला सनेसवा हो, अपना साम सुनर के।
ना जाने कवने करनवा हो, हमरा के तेजि के।
आाध राति बोले ला पपिहरा हो, जियरा के बेधि के।

उपर्युक्त गीत की प्रथम तीन पक्तियों में 'साम सुनर के' का तुकान्त रूप में व्यवहार हुआ हैं। 'के' का अन्त में प्रयोग पाँचों पक्तियों में दिखाई पड़ता है।

लोक-गीतों में प्रायः रे ना, हो ना, आहो रामा, कि आहो मोरे रामा, ए राम, हो राम, ए, हो, रे, आदि पदों की—प्रत्येक पक्ति के अन्त में—आवृत्ति देखी जाती है। भोजपुरी चैता की प्रत्येक पक्ति के अन्त में 'हो रामा' नियत रूप से पाया जाता है।[1] यथा :—

---

१ डा॰ उपाध्याय—भो॰ ग्रा॰ गी॰ भाग २ पृ॰ १६७

"रामा ननदी भउजिया दुनो पनिहारिन हो रामा।
मिलि जुलि गागर पानि भरे चलली हो रामा ॥१॥
रामा भरि घूंठि पनिया घरिलवो ना डूबे हो रामा।
कौन रसिकवा घरिला जुठिअवले हो रामा ॥२॥
रामा घरिला भरि भरि अररा चढ़वली हो रामा।
केहूँ नाहीं घरिला मोर अलगावे हो रामा ॥३॥

इसी प्रकार मैथिली 'जट-जटिन' नामक गीतों में 'रे जटा' की आवृत्ति प्रत्येक बार हुई है।[1]

दूर दूर रे जटा
दूर रहिह रे जटा
सड़ल चाउर रे जटा
राख छाउर रे जटा
चइगन मोंटो रे जटा
जुलुफ सँवारइत चल अइह रे जटा।

भोजपुरी गीतों मे तुक

कहीं-कहीं पर किसी समस्त पद की पुनरावृत्ति न होकर केवल पदान्त के स्वर या व्यञ्जन ही समान पाये जाते हैं। जैसे बिसराई और नाई में 'आई' समान है। बहुरा के निम्नलिखित गीत में यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है :—

"माघ मॉसे गइलीं रामा बाबा के सागारावा,
सखिया सब बोले ए बारि कुँवारि ॥१॥
सामावा बइठल तुहुँ बाबा हो बड़इता,
कतेक दिनवा रखब हो बारि कुँवारि ॥२॥
तोहरो बियाह बेटी नान्हे हम कइलीं,
से तोर कन्त गइले हो जमोराई ॥३॥
जवना हि रहिया बाबा कन्त मोर गइले,
से तवन रहिया देहु ना हो बतलाई ॥४॥
जवना ही बटिया बेटी कन्त तोर गइले,
से तवना बटिया उपजेला हो धमोराई ॥५॥

---

१ राकेश : मै० लो० गी० पृ० ३२९

देहु ना बाबा हो डाल तरुवरिया,
से हमहू कटइबो हो धमोराई ॥६॥
देहु ना बेटी हो डाल भरि सोनवा,
से आपन कन्हैया देहु ना हो बिसराई ॥७॥
आगि लगइबो बाबा डाल भरि सोनवा,
से आपन कन्हैया बिसरे जोग नाई ॥८॥

अनेक गीतों में निरर्थक पदों की आवृत्ति कर तुक मिलाने का प्रयास किया गया है[1]। जैसे :—

"पानावा छेवहि छेवहि भजिया बनौलों,
लौंगन दिहलो धंअरवा हू रे जी।
सठिया कूटि कूटि भातावा रिन्हौलों,
ऊपरा मुंगिया केरि दलिया हू रे जी ॥१॥

'बारह मासा' में प्रथम-द्वितीय तथा तृतीय-चतुर्थ पक्तियों में तुक की योजना बड़ी ही सुन्दर रीति से की गई है। जैसे :—

"माघ मास रितु आइल बसन्त,
कहति मदोदरि सुनु पिया कन्त।
दे डालु जानकी राम अवध फिरि जाई।
नाहीं त निसाचर बंस नसाई ॥
× × ×
जइसे फागुन उड़त अबीर।
तइसे घेरेले राम लखन दुई बीर ॥
× × ×
खड़बड़ भूमि निसाचर जूथ।
अइले कपिदल सेन बरूथ ॥

इस गीत में तुक की योजना बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। यह अलङ्कृत कविता की कोटि में पहुँचता दिखाई दे रहा है।[2]

विरहा के गीतों में प्रथम तथा तृतीय पक्ति में और द्वितीय तथा चतुर्थ पक्ति में तुक पाया जाता है। जैसे[3] :—

---

1 डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २४४
२ वही : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० १६१—६२
३ वही : भो० लो० गी० भाग १ पृ० ३५२—५३

बइठलि माँजेले यटलोहिया गोरिया,
तूरेले गेहुअवा पर तान।
जेतना के सँइयाँ तोर करेला नोकरिया
हम ओतना के कचरीला पान॥

मैथिली गीतों मे तुक

मैथिली 'बटगमनी' के गीतों में भी तुक का विधान इसी प्रकार से किया गया है। उदाहरण के लिये कुछ पंक्तियाँ लीजिये।[1]

"अवधि मास छल माधव सजनि गे,
निज कर गेलाह बुझाय।
से दिन अब नियरायल सजनि गे
धैरज धैलो नहि जाय।
अति आकुलि भेलि पहुँ बिनु सजनि गे
उर अछि अति सुकुमारि।
उकछि नयन पथ हेरय सजनि गे
अजहु न आयल मुरारि॥"

दाम्पत्य प्रेम के निम्नांकित राजस्थानी लोक-गीत में भी तुक का क्रम द्वितीय तथा चतुर्थ पंक्तियों में दिखाई पड़ता है।[2]

"मैं तने बूझूँ ए सखी
था रा किस विध खुला जी केस।
नैणा झरै, टपका पड़ै,
था रा किस विध विरंगा जी भेस॥

× × ×

च्यार कूँट की बावड़ी,
जे मे सीतल नीर।
आपाँ रल मिल न्हायस्याँ,
(म्हारी) लाल नणद रा बीर॥[3]

---

१ राकेश : मै० लो० गी० पृ० २६३
२ सूर्यकरण पारीक : राजस्थान के लोकगीत
भाग १ उत्तरार्ध पृ० २७७
३ वही पृ० २६७

लय

वास्तव में लय ही लोक-गीतों की आत्मा है। लय के बिना इन गीतों को निष्प्राण ही समझना चाहिए। इसीलिए इनका वास्तविक आनन्द समवेत स्वर से लय पूर्वक गाने में है। जब स्त्रियाँ सामूहिक रूप से किसी गीत को गाने लगती हैं तब वे लय के अनुसार किसी ह्रस्व स्वर को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर लेती हैं। जहाँ किसी पंक्ति में अक्षरों की कमी होती है वहाँ वे नये शब्दों को जोड़कर उसकी पूर्ति कर लेती हैं। उनके कलकंठ से गीतों का लय-पूर्ण गायन गीतों में जान भी डाल देता है जिसको सुनकर श्रोता गण आनन्द सागर में डूबने लगते हैं। शुष्क से शुष्क गीतों में भी स्त्रियाँ लय द्वारा सरसता तथा मधुरता का संचार कर देती है। एक छोटा सा गीत लीजिए :[१]

"जुगुति बताये जॉव,
कवना विधि रहबो राम। टेक।
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं
अपनी सुरतिया मोरे बहिया पर लिखाये जॉव जुगुति०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं,
विरना बोलाइ मोके नइहर पहुँचाये जॉव ॥ जुगुति०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं,
बहिया पकड़ि मोके गंगा भसि आये जॉव
जुगुति बताये जॉव
कवना विधि रहबो राम ॥

भिन्न भिन्न गीतों को भिन्न भिन्न लयों में गाया जाता है। लय दो प्रकार के होते हैं—(१) द्रुत और (२) विलम्बित। कुछ गीतों को द्रुत—शीघ्रतापूर्वक लय में गाया जाता है। झूमर के गीतों को गाते समय द्रुतलय का प्रयोग किया जाता है। निर्गुन तथा चैता को विलम्बित लयों में धीरे-धीरे गाया जाता है। जतसार के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।

कुछ गीत तार स्वर से गाये जाते हैं और कुछ मन्द स्वर से। विरहा और आल्हा ऐसे गीत हैं जो सदा उच्च (तार) स्वर से गाये जाते हैं। आल्हा के अतिरिक्त अन्य लोक गाथाओं—विजयमल, लोरकी, सोरठी,

---

१ डा० उपाध्याय भो० लो० गी० भाग १ पृ० ७६

कहरवा, नयकवा, बनजरा,—के गाने में भी उच्च स्वर का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियों द्वारा गेय जितने गीत हैं—सोहर, जनेऊ, विवाह, गवना, जतसार, रोपनी, सोहनी आदि—वे प्रायः सभी मन्द स्वर में गाये जाते हैं। यद्यपि सामूहिक रूप से गाये जाने के कारण ये भी तार स्वरता को प्राप्त कर लेते हैं।

लोक-साहित्य में लोक-संस्कृति का चित्रण

भारतीय संस्कृति का सच्चा तथा स्वाभाविक चित्रण लोक साहित्य में उपलब्ध होता है। लोक संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को देखने के लिए हमें लोक साहित्य का ही अनुसन्धान करना होगा। ग्रामीण कवि ने समाज में जिस समता या विषमता का अनुभव किया है उसका उसी रूप में चित्रांकन भी किया है। पारिवारिक जीवन के जो मर्मस्पर्शी दृश्य यहाँ उपलब्ध हैं उसके दर्शन अन्यत्र कहाँ? ऐसा ज्ञात होता है कि जन-जीवन को चित्रित करने वाले 'चतुर चितेरे' ने बड़े संयम से अपनी तूलिका का प्रयोग किया है। सुन्दर तथा दिव्य दृश्यों को चित्रांकित करने में उसकी तूली उतनी ही सफलीभूत दिखाई पड़ती है जितना भोंडे तथा भद्दे चित्रों के प्रदर्शन में। लोक साहित्य में जहाँ आदर्श पतिव्रता नारियों का उल्लेख है वहाँ ऐसी कर्कशा स्त्रियों का भी वर्णन पाया जाता है जो विधवा होने के लिए सूर्य भगवान् से प्रार्थना करती हैं। जहाँ माता और पुत्री का दिव्य प्रेम दिखलाया गया है वहाँ सास-बहू तथा भावज-ननद के कटु एवं विषाक्त व्यवहार का वर्णन भी है। भाई और बहन के निस्पृह, पवित्र और दिव्य प्रेम का वर्णन करने के लिए जो भी विशेषण प्रयुक्त किया जाय वह थोड़ा ही है।

भाई-भाई के घनिष्ठ प्रेम के उल्लेख के साथ ही देवर और भावज का जो संबंध दिखलाया गया है वह कुछ प्रशंसनीय नहीं है। कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि लोक-कवि ने जन-जीवन के उभय पक्षों —सुन्दर तथा असुन्दर—को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसीलिए वह समाज के सच्चे दृश्य को स्वाभाविक रूप में उपस्थित करने में सफली भूत हुआ है।

सामाजिक जीवन के साथ ही साथ धार्मिक जीवन का चित्रण भी लोक साहित्य में पाया जाता है। व्रत के गीतों में कहीं सूर्य की पूजा उपलब्ध होती है तो कहीं शीतला माता की। गङ्गा माता और तुलसी माता के गीतों की भी संख्या कुछ कम नहीं है। शिव-पार्वती और राम-कृष्ण की अर्चना भी की गई है।

लोक साहित्य में सामान्य जनता की आर्थिक परिस्थिति का भी चित्रण बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। झूमर के सभी गीत 'सोने की

थाली में जेवना परोसलों' से प्रारम्भ होते हैं। प्रियतम के भोजन करने की थाली तो सोने की बनी ही है उसका जल-पात्र भी सुवर्णमय है। वह चन्दन की लकड़ी के बने पलग पर सोता है जो रेशम की रस्सियों से बुना गया है। भोजन की वस्तुयें भी बड़ी सुन्दर तथा स्वादिष्ट है। परन्तु जहाँ धन-धान्य तथा वैभव एव ऐश्वर्य का वर्णन उपलब्ध होता है वहाँ साधारण किसान की गरीबी का वर्णन श्रोताओं के हृदय को अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहता।

कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि लोक साहित्य में सामान्य जनता की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के उभय पक्षों का रमणीय चित्रण उपलब्ध होता है।

(क)-सामाजिक जीवन का चित्रण

हिन्दू परिवार सयुक्त परिवार का आदर्श उदाहरण है जहाँ पिता-पुत्र माता-पुत्री, भाई बहन, सास-बधू, पति-पत्नी, ननद और भावज सभी आनद से एक साथ निवास करते हैं। पति पत्नी के आदर्श प्रेम की बाँकी झाँकी हमें लोक-गीतों में देखने को मिलती है। लोक-गीतों में आदर्श सती स्त्रियों का जैसा चित्रण पाया जाता है वैसा ससार के अन्य साहित्य में मिलना दुर्लभ है। पति परदेस चला जाता है, बारह वर्षों के सुदीर्घ काल को वह विदेश में बिताता है। अपनी सती स्त्री की तनिक भी खोज नहीं करता। परन्तु इन दुःखद दिनों को बिताती हुई उसकी स्त्री, अनेक प्रलोभनों के सामने आने पर भी अपने सतीत्व की रक्षा करती है। पति जब 'पूरबी बनिजिया' से बारह वर्षों के पश्चात् लौटता है तब वह अपनी स्त्री के चरित्र पर सन्देह करता है और उसकी अग्नि-परीक्षा के बाद ही उसे ग्रहण करता है। परन्तु उसकी स्त्री सती सीता के समान इसके लिए तनिक भी बुरा नहीं मानती और अपने पातिव्रत धर्म से विचलित नहीं होती।

आदर्श सतीत्व

सतीत्व की यह भावना मानव समाज का अतिक्रमण कर पशु जगत् में भी व्याप्त दिखाई पड़ती है। किसी अनमनी (उदासीन) हरिणी को देख कर हिरन उसकी उदासीनता का कारण पूछता है जिसके उत्तर में हरिणी कहती है कि आज राजा दशरथ के घर में पुत्र जन्म के कारण छट्ठी का उत्सव है जिसमें तुम्हें मारकर तुम्हारा मांस पकाया जायेगा। हिरन के मारे

जाने पर हरिणी रानी कौशल्या से प्रार्थना करती है कि हिरन का खाल मुझे देने की कृपा कीजिए जिसे मैं पेड़ पर टाँग कर अपने दुःखी हृदय को सान्त्वना प्रदान करूँ। परन्तु उसकी विनम्र प्रार्थना अस्वीकृत हो जाती है। रानी हिरन की खाल से खँजड़ी बनवाती है और बालक राम उसे बजा-बजा कर खेलते हैं। जब जब खँजड़ी बजती है तब तब उसकी आवाज सुन-कर बिचारी दुःखिया हरिणी चौंक उठती है। वह ढाक वृक्ष के नीचे खड़ी होकर अपने प्यारे हिरन की याद करती रहती है। अवधी का यह लोक गीत निम्नांकित है:—

"छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहबर।
अरे रामा, तेहि तर ठाढ़ि हरिनियां त मन अति अनमनि।
चरतै चरन हरिनवां त हरिनि से पूँछई।
हरिनी ! की तोर चरहा झुरान कि पानी बिनु मुरझिउ।
नाहीं मोर चरहा झुरान न पानी बिनु मुरझेउँ।
हरिना ! आज राजा जी के छट्ठी तुमहिं मारि डरि हैं।
मचियै बैठी कौसल्या रानी, हरिनि अरज करइ।
रानी, मांसवा त सिझहिं करहिया,
खलरिया हमें देतेऊ।
पेड़वा से टँगतिऊँ खलरिया, त हेरि हेरि देखतिऊँ
रानी देखि देखि मन समुझउतिउँ,
जनुक हिरना जियतइँ।
जाहु हरिनि घर अपने खलरिया नाहीं देबइ।
हरिनि, खलरी के खँजड़ी मढ़उबइ,
त राम मोर खेलिहइँ।
जब जब बाजै खँजड़िया सबद सुनि अनकइ।
हरिनी ठाढ़ि ढंकुलिया के नीचे हिरन के बिसूरइ।

इस गीत में पत्नी के आदर्श पातिव्रत धर्म का वर्णन अत्यन्त मनो-हर है। साथ ही दुःखिनी हरिणी की दशा देखकर पाषाण हृदय भी पिघल उठता है।

सतीत्व के रक्षा के लिए स्त्रियों ने किन-किन कष्टों को नहीं उठाया। इन्होंने अपनी काञ्चन काया को धधकती हुई आग में जलाकर जौहर व्रत के द्वारा अपने सतीत्व का जौहर दिखलाया, प्रत्यक्ष जल-समाधि लेकर अपने कुल को कलंकित होने से बचाया, दुराचारी आततायियों को छलकर

अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा की और अनेक कष्टों तथा यातनाओं को भोगते हुए भी ये अपने पवित्र पथ से विचलित नहीं हुईं। इन्होंने संसार की सम्पदा को अपने पैरों से ठुकरा दिया तथा संसार की कोई भी शक्ति इन्हें चाँदी और सोने के जाल में नहीं फँसा सकी। कुसुमा देवी और भगवती देवी के लोकोत्तर चरित्र से कौन परिचित नहीं है जिन्होंने अपनी अलौकिक चातुरी तथा साहस के द्वारा आततायी मुगल सरदारों से अपना पिण्ड छुड़ाकर, अपने प्राणों को निछावर कर, दिव्य चरित्र का परिचय दिया है।

प्रोषितपतिका किसी सुन्दरी स्त्री को देखकर कोई बटोही उस पर मोहित हो जाता है और उसे बहुमूल्य सोना, मोती आदि देकर उसके सतीत्व को खरीदना चाहता है। परन्तु वह सुन्दरी कहती है कि ए बटोही! तुम्हारे सोने में आग लग जाय और मोतियों में वज्र पड़े। दुनियां 'सत' (सतीत्व) छोड़ने से 'पत' (प्रतिष्ठा) नहीं रहती।[1]

बटोही धन का लालच देते हुए कहता है कि :—

"डाल भरि सोना लेहु, मोतिया से माँग भरू,
जाति छाड़ि मोरे संग लागहु रे की।"

इस पर सती स्त्री उसका मुँहतोड़ जवाब देती हुई कहती है कि :—

"आगि लागो सोनवा बजर परे मोतिया रे,
सत छोड़े कइसे पत रहिहँ नु रे की।"

पुत्र जन्म के एक गीत में स्त्री की सतीत्व रक्षा के साथ ही उसका अदम्य उत्साह एवं अलौकिक पराक्रम दिखलाया गया है। नदी के पार जाने के लिए किसी स्त्री द्वारा नाव माँगने पर कोई कामुक मल्लाह उसे हार और अँगूठी देने का लालच देकर व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। वह सती स्त्री इस प्रस्ताव को पैरों से ठुकरा कर, नदी को तैर कर, पार चली जाती है। लौटती बार वह अपने भाई को इस दुष्ट मल्लाह की खाल खींच कर उसमें भूसा भरवा देने का आदेश देती है। :—

"अगिया लगाऊँ तोरो, मुदरी बजर परे तिलरो,
× × ×
जाते हि दइया अकेलिन लौटन पिरन संग
केवटा खालवा कढ़ाय भूसा भरतेऊँ जबन मुंग मागेऊँ।"

---

1 डा० उपाध्याय —भो० लो० सा० का अध्ययन

इसी प्रकार सती स्त्रियों की अमर कहानी लोक-गीतों में पाई जाती है। उनके अलौकिक सतीत्व के ज्वलन्त उदाहरणों से लोक-कथायें भरी पड़ी हैं।

माता और पुत्री

यद्यपि माता का स्नेह पुत्र के प्रति असीम होता है परन्तु पुत्री भी उसे कुछ कम प्यारी नहीं होती। लोक गीतों में माता का प्रेम पुत्र की अपेक्षा पुत्री में अधिक दिखाई पड़ता है। पुत्री के पैदा होने तथा उसके विवाह में कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, माँ का प्रेम से परिपूर्ण हृदय इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करता और वह पुत्री से बड़ा प्रेम करती है।

गवना के गीतों में पुत्री के बिदा होते समय माता के प्रेम का फौवारा फूटता हुआ दिखाई देता है। बिदाई के समय पुत्री के लिए माता की व्याकुलता और उसके वियोग के कारण अनवरत रोदन करने की चर्चा का उल्लेख करुण रस के प्रसग में किया जा चुका है।

पुत्री को जब ससुराल में कष्ट होता है, उसका जी वहाँ नहीं लगता तब वह माता के अतिरिक्त किसी से भी अपने दुःख का प्रकाशन नहीं करती। पार्वती जी ससुराल के कष्टों को अपनी माता से निवेदन करती हुई कहती हैं कि ए माता! शिव जी के लिए भाँग पीसते पीसते मेरा हाथ घिस गया है और धतूर मलते मलते हृदय व्याकुल हो गया है।[१]

"भँगिआ पीसत ए आमा, हथवा खिअइले
धतूर मलत ए आमा जियरा अकुलइले।"

भाई और बहन

भाई और बहन के विशुद्ध, सात्विक, दिव्य और अलौकिक प्रेम का जो वर्णन लोक गीतों में उपलब्ध होता है वैसे आदर्श प्रेम की प्राप्ति अन्यत्र दुर्लभ है।

भाई बहन के घर गया है। वह अपनी सास से पूछती है कि मैं अपने भाई के लिए क्या क्या भोजन बनाऊँ? दुष्टा सास कदन्न (कोदों, साँवा) का नाम लेती है। इस पर क्रोधित होकर वह कहती है कि तुम्हारे कोदो, साँवा में आग लग जाय और अपनी सास की इच्छा के विरुद्ध वह रामती चावल का भात और मूँग की दाल बनाती है। वह पूड़ी और

१ डा० उपाध्याय भो० लो० सा० अध्ययन

पालक का शाक भी बनाती है तथा सारी सामग्री को सोने के थाल में परोसकर भाई को भोजन कराती है।[1]

भाई का आगमन बहन के लिए उत्सव का अवसर होता है। कोई बहन कहती है कि आज मेरा भाई आया है। अतः मेरे हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता है। ए मालिन! तुम गीत गावो। ए मेरी सास! तुम मेरे भाई के भोजन के लिए पूड़ी बनाओ।[2]

"ग्रारे ग्रारे जोगिन मालिन सब कोई गावहु हो।
मोरा जियरा भइल बा हुलास, बीरन मोर आवेले हो।
ग्रारे ग्रारे सासु बड़इतिन करहिया चढावहु हो।
आजु मोरा जियरा हिलोरे,
बीरन मोर आवेले हो।"

बहन का भ्रातृस्नेह सच्चा और सक्रिय है। दासी के द्वारा जब उसे समाचार मिलता है कि उसका भाई आ रहा है तब वह अत्यन्त उत्कण्ठित होकर अटारी पर चढ़ जाती है। काठे के झरोखे से वह अपने भाई को देखती है जो बेला के नीचे खड़ा है। वह अपनी सास से चादर माँगकर भाई से मिलने के लिए चल पड़ती है।—

"खिरकी से बहिनी जे चितवे,
बीरन बेइलि नीचे ठाढ़।
देहु न सासु मोरी अपनी चदरिया
बीरन मिलन हम जाइबि॥"

भोजपुरी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'भाइ के चोट अवरु केहुनी के घाव न सहाला" अर्थात् भाई और कुहनी का चोट असह्य होता है। इससे पता चलता है कि बहन के हृदय में भाई के प्रति कितनी करुणा, कितना प्रेम और कितना स्नेह है।

भाई और बहन का प्रेम अन्योन्याश्रय है। भाई भी अपने प्रेम की अञ्जलि बहन को अर्पण करता हुआ दिखाई पड़ता है। राजा गोपीचन्द जब संसार को छोड़कर जोगी हो जाते हैं तब उनकी माता कहती है कि बेटा! तुम सब जगह जाना परन्तु अपनी बहन के पास मत जाना। इस पर वे उत्तर देते हैं कि माँ! मैं कहीं भले ही न जाऊँ परन्तु बहन के यहाँ

---

१ डा० उपाध्याय भो० लो० गी० भाग १ पृ० ४४४

२ वही ,, , पृ० ४०६

अवश्य जाऊँगा। इससे गोपीचन्द के, अपनी बहन के प्रति, प्रगाढ़ प्रेम का पता चलता है। बहिन के विदाई के अवसर भाई के लगातार रोने से उसके आँसुओं से पैर तक धोती के भींगने का उल्लेख गत पृष्ठों में किया जा चुका है।

सचमुच ही लोक गीतों में भाई और बहन के अलौकिक प्रेम का जो चित्रण किया गया है वह अनुपम और अद्वितीय है।

सास-पतोहू

लोक साहित्य में जहाँ पिता-पुत्र, माता-पुत्री, पति-पत्नी और भाई-बहन का लोकोत्तर प्रेम दिखाई पड़ता है वहाँ सास-पतोहू, ननद-भावज और विभिन्न सपत्नियों का पारस्परिक व्यवहार अत्यन्त कटु और विषमय उपलब्ध होता है। लोक-गीतों में सास सदा 'दरुनियाँ' (दारुण) विशेषण से सम्बोधित की गई है। सास अपनी पतोहू से कटु बचन बोला करती है जो विष में बुझे बाणों के समान हृदय में प्रवेश करते हैं। वह पतोहू से कहती है कि तुम किसकी कमाई खाओगी? क्योंकि तुम्हारा पति परदेस चला गया है।

"सासु मोर बोलेली बिरहिया,
तू केकर कमइया खइबू ए राम।'

सास केवल कटु बचन ही नहीं बोलती बल्कि वह पतोहू को शारीरिक कष्ट भी देती है। वह बधू से इतना अधिक घर का काम करवाती है जिसे वह करने में असमर्थ है। वह उससे बर्तन मँजवाती है और वह गहरे कुयें से पानी भरवाती है।[1] बधू की यह गाथा कितनी मर्मस्पर्शिनी है।

कई मन कूटो भइया, कई मन पीसीला हो ना।
भइया कइ रे मन रीन्हीला रसोइया हो ना॥
सासू खाँची भर बासना मँजावेले हो ना।
सासू पनिया पताल से भरावेले हो ना॥"

सास अनेक छोटी छोटी बाता को लेकर बहू क चरित्र पर सन्देह भी करने लगती है इस प्रकार वह अपने 'दरुनियाँ' विशेषण को चरितार्थ करती हुई दिखाई पड़ती है।

---

१ दुर्गाशंकर सिंह—भोजपुरी लोक गीतों में करुण रस पृ० ४४९

ननद और भावज

ननद और भावज का सम्बन्ध भी सास और पतोहू की अपेक्षा कुछ कम विषाक्त नहीं है। ननद अपनी माँ और भाई से भावज की शिकायत करती हुई पाई जाती है। वह बात बात में भावज पर व्यङ्ग बाण छोड़ती है जो मर्म को भेदने वाले हैं। ननद और भावज का यह झगड़ा कुछ नया नहीं है। यह चिर काल से चला आ रहा है। सस्कृत के किसी कवि ने दुष्टा सास और मर्म-भेदन में पटु ननद का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। कोई स्त्री अपने दु.खों का वर्णन करती हुई अपनी सखी से कहती है कि :—

"श्वश्रू: पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रू भंगवक्रेक्षणा,
मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसौ ब्रूते ननान्दा वच ।
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चारितं स्मृत्वा मनो वेपते,
कान्त' स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदाग: सखि ।।"

इस श्लोक में ननद को कटु वचनों के द्वारा हृदय रूपी मर्मस्थल को भेदन करने में चतुर कहा गया हैं। यह विशेषण ननद के लिए उपयुक्त ही है। इसकी पुष्टि लोक-गीतों से पूर्ण रूप से होती है।

सौतिया डाह

सौतिया डाह बड़ी बुरी चीज होती है। एक देहाती कहावत है कि काठ की भी सौत अच्छी नहीं लगती। फिर यदि सजीव सौत घर में आ जाय तो कहना ही क्या ? गृह की शान्ति नष्ट हो जाती है और घर सौतों के लड़ने का अखाड़ा बन जाता है। लोक-गीतों में एक सौत के द्वारा दूसरी को विष खिलाने का भी उल्लेख पाया जाता है। आज भी इस सम्बन्ध में अनेक हत्यायों की कथा सुनने में आती है जो कुछ अस्वाभाविक नहीं है।

सौत की कल्पना भी दूसरी स्त्रियों को दु:खदायी होती है। वह उसके प्रतीक से भी घृणा करने लगती हैं। प्रियतम के अधरों को स्पर्श करने के कारण वशी सपत्नी की प्रतिनिधि हैं। कोई स्त्री कहती है कि :—

"राजा के वंशी सेजरिया पर बाजे,
सवतिया होके सुनबि राउर वंशी।"

एक झूमर में सपत्नी की चिन्ता के कारण नींद न लगने का उल्लेख पाया जाता है।[1]

---

1 दुर्गाशंकर सिंह—भो० लो० गी० क० र० पृ० २१२

"लागति नाहीं निनिया ए राजा जी
बायें सूतलि बा सवतिया ए राजा जी,
लागति नाहीं निनिया ए राजा जी।"

सौतिया डाह कभी कभी उग्र रूप भी धारण कर लेता है। पहिले तो सौतें आपस में वाग्वाणों का ही व्यवहार करती है परन्तु जब यह शस्त्र सफल सिद्ध नहीं होता तब हाथा-पायी की भी नौबत आ जाती है। निरवाही के एक गीत में दो सौतों के आपस में झोंटा-झोंटौवल (सिर के बालों को पकड़ कर जोरों से खीचना) करने का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है जिसकी केवल एक दो पक्तियाँ ही यहाँ पर्याप्त है।[1]

उढ़री वियहि करे झोंटी क झोंटा हो ना,
रामा राजा वैठि डेहरी झँखे हो ना।"

एक दूसरे गीत में कोई बहू अपनी सौत—जो सुनारिन है—की हत्या करने के लिए सास से छूरी और कटारी माँग रही है।[2]

"देहु ना सासु हो छुरिया कटरिया,
कतल कइ घलबों सोनारिन हो।"

(ख) आर्थिक पक्ष का चित्रण

लोक साहित्य में साधारण जनता के सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ ही आर्थिक पक्ष का चित्राकन भी उपलब्ध होता है। जहाँ ग्रामीण जीवन में सुख और समृद्धि का सागर हिलोरें मार रहा है वहाँ घोर निर्धनता, हीनता और दीनता का वीभत्स ककाल सामने दिखाई पड़ता है जहाँ देहात की दुनिया मे धन-धान्य और वैभव का साम्राज्य दिखाई पड़ता है वहाँ दुःख, गरीबी और भूख का भैरव नाद भी सुनाई पड़ता है। जहाँ झूमर के गीतों में सोने की थाली में भोजन करन और सुवर्णमय पात्रों से जल पीने का वर्णन उपलब्ध होता है वहाँ टूटी हुई खाट और टपकते हुए छप्पर का मर्मस्पर्शी चित्रण हमारे हृदय को आकर्षित कर लेता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि सुख-दुःख, आशा-निराशा, विलास-वैभव और दैन्य-दीनता के उभय पक्षों का वर्णन लोक-साहित्य में पाया जाता है।

---

१ त्रिपाठी—कविता कौमुदी भाग ५ पृ० ४०३
२ दुर्गाशंकर सिंह—भो० लो० गी० क० र० पृ० २०६

निर्धनता का वर्णन

कोई निर्धन तथा दुःखिया स्त्री गीतों के माध्यम से अपने दुःख तथा गरीबी का वर्णन करती हुई कहती है कि मेरा छप्पर टूटा हुआ है और वर्षा की बूंदें टपक रही है। मेरी सुधि लेने वाला कोई नहीं है। मेरा जेठ अपना बँगला छवाता है और मेरा देवर चौपाल छवाता है। उस स्त्री के घर को भला कौन छवायेगा जिसका पति परदेस में है। इस गीत में दुःखिया स्त्री के निर्धन जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह अवधी लोक-गीत निम्नांकित है।[1]

"टुटही मड़इया बुनिया टपकइ रे।
के सुधि लेवै हमार?
जेठा छवावइ आपन बँगलवा,
देवरा छवावै चौपार।
हमरा मंदिलवा केऊ न छवावै
जेकर पियवा विदेस॥"

इसी प्रकार कोई भोजपुरी गरीब स्त्री विलाप करती हुई कहती है कि मेरा पति तो पूर्व देश—बंगाल—में व्यापार करने के लिए जा रहा है अब मेरे ऊँजडे हुए घर को कौन छवावेगा?[2]

"पियवा जे चलेले पुरुब बनिजरिया
से केइ रे छइहैं ना, मोरा उजड़ल बंगलवा
से केइ रे छइहैं ना।"

गाँवों में गरीबों के लिए न रहने को झोपड़ी है और न पहनने को वस्त्र। उपर्युक्त गीत की स्त्री ऐसी ही गरीबी की मूर्तिमान् प्रतिनिधि है। हमारे गाँवों में निवास करने वाली अगणित अभागिन स्त्रियाँ इसी प्रकार थोड़ी-थोड़ी सी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तड़प तड़प कर रह जाती है। उनके दिल के अरमान दिल में ही रह जाते हैं।

महर्घता के कष्टों से पीड़ित कोई ग्रामीण युवा कह रहा है कि मँहगी के कारण पेट की ज्वाला से पीड़ित होने से 'बिरहा' का गाना भूल गया। अब कजरी और कबीर का गाना भी अच्छा नहीं लगता। सुन्दरी युवती के उभरे हुए यौवनों को देखकर अब मेरे हृदय में पीड़ा नहीं होती :—

---

१ श्रीकृष्णदास—लो० गी० सा० व्याख्या

२ डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ३६४

'मँहगी के मारे विरहा बिसरिगा,
भूलि गइली कजरी, कबीर।
देखि के गोरी के उभरल जोबनवा,
अब उठे ना करेजवा में पीर ॥"

सचमुच पेट की मार बड़ी जबरदस्त मार होती है। जब पेट खाली होता है तब साहित्य-सगीत की चर्चा सूखी मालूम पड़ती है। इसी तत्थ की अभिव्यक्ति आभीर युवक ने बड़ी स्पष्टता से की है।

संस्कृत के किसी कवि ने ग्रामीण जीवन की गरीबी का चित्रण सहृदयता की तूलिका से किया है जिससे उसका जीता जागता चित्र हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है।

"वृद्धोऽन्ध' पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहम्,
कालोऽभ्यर्ण जलागम कुशलिनी पुत्रस्य वार्ताऽपि नो।
यत्नात्संचिततैलविन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला;
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधू श्वश्रूः चिर रोदति ॥"

गँवई की गरीबी का नगा चित्र हमें उस निरवाही के अवधी गीत में दिखलाई पड़ता है जिसमें कोई बहन अपने कष्टों का हृदय विदारक वर्णन अपने प्यारे भाई से करती है। वह कहती है कि "भैया! मुझे न मालूम कितना मन धान कूटना पड़ता है, कितना मन गेहूँ पीसना पड़ता है और कितने मन की रसोई बनानी पड़ती है। इसके बाद बहुत सा वर्तन माँजना पड़ता है तथा बहुत दूर के कुयें से पानी खींच कर लाना पड़ता है। सब लोगों के भोजन करने के पश्चात् जब खाने की मेरी पारी आती है तब मुझे सबसे छोटी रोटी खाने को मिलती है। इसमें से भी ननद के लिए कलेवा रखना पड़ता है, कुछ अंश देवर को देना पड़ता है। फिर कुत्ते और बिल्ली को भी कुछ भाग देना जरूरी है। कपड़ों की भी दशा यही है। दूसरों के द्वारा व्यवहार में लाया गया वस्त्र मुझे पहिनने को मिलता है। इसमें से भी ननद के लिए ओढ़नी देनी पड़ती है। देवर का लँगोटा इसी कपडे से बनाया जाता है। शेष कपडे से मैं किसी प्रकार अपना तन ढकती हूँ।"[1]

उपर्युक्त गीत ग्रामीण जीवन की निर्धनता की पूर्ण रूप से व्याख्या ही नहीं करता अपितु भाष्य का भी काम करता है।

१—त्रिपाठी—क० कौ० भाग ५ (ग्राम गीत)

किसान-जीवन की साध

भारतीय किसान का जीवन बड़ा सीदा-साधा और सरल होता है। वह थोड़े ही में सन्तोष प्राप्त कर लेता है। अतएव उसका जीवन सुखी होता है। विद्वानों ने कहा है कि 'सन्तोष परम सुखम्' अर्थात् सन्तोष ही सबसे बड़ा सुख है। कृषक का जीवन सन्तोष का उत्कृष्ट तथा मूर्तिमान् उदाहरण है। एक मारवाड़ी गीत इस प्रकार है—

"उठे ही पीरो होय उठे ही सासरो
अथूणें होय न खेत चवे न आसरो।
नाड़ा खेत नजीक अड़े खोलणा
इतना दे करतार फेर नहीं बोलणा॥

जिसका भाव यह है कि किसान केवल यह चाहता है कि उसके पिता का घर और उसकी ससुराल एक ही गाँव में हो, खेत पश्चिम में हो, झोपड़ी वर्षा के दिनों में चूने (टपकने) वाली न हो। तालाब खेत के पास ही हों जिससे बैलों को पानी पीने के लिए दूर न जाना पड़े। यदि भगवान् इतना दे दे तो उससे और कुछ नहीं माँगना है। इस गीत से पता चलता है कि किसान के जीवन की साध, उसके जीवन का उद्देश्य क्या है। उसकी आवश्यकतायें कितनी सीमित हैं। 'सुत्तनिपात' में इसी प्रकार का एक गीत (गाथा) पाया जाता है :—

"पक्कदनो दुद्धखीरोहमस्मि
अनुतीरे महिया समानवासो।
छन्ना कुटि आहितोगिनि
अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥"

अर्थात् मेरे यहाँ भोजन प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध है। मेरे घर में दूध देने वाली गायें हैं। मैं नदी के किनारे अपने कुटुम्बियो के साथ एक घर में रहता हूँ। मेरा घर अच्छी तरह से छाया गया है जिससे चूने का डर नहीं है। मेरे यहाँ जलती हुई आग भी मौजूद है। अतः हे देव! तुम जितना चाहो वरस लो। इस गीत में जो अलौकिक ओज, जो अदम्य उत्साह, संतोष की ज्वलन्त भावना, विपत्तियों के प्रति चुनौती और जीवन के प्रति जो सच्ची आस्था विद्यमान है वही लोकगीतों की आधार-शिला है।

ग्रामीण जीवन की सादगी और सरलता की प्रशंसा सस्कृत साहित्य

में भी उपलब्ध होती है। देहाती दुनिया की सरलता पर मुग्ध होकर कोई कवि कहता है कि हे सुन्दरी! गवँई के लोग बड़े सुखी हैं। वे साठी के चावल का मीठा भात खाते हैं, सरसों का शाक और मीठी सजाव दही का स्वाद लेते हैं। इस प्रकार वे थोड़े से ही व्यय में मीठा तथा स्वादिष्ट भोजन करते हैं। हिन्दी के किसी कवि ने ग्रामीण जीवन का वर्णन करते हुए ठीक ही कहा है कि —

"थोड़े में निर्वाह यहाँ है
ऐसी सुविधा और कहाँ है।"

किसान का जीवन सचमुच ही बड़ा सीधा और सरल है तथा उसका संसार न्यूनतम आवश्यकताओं से बना हुआ है।

धार्मिक जीवन की झलक

लोक साहित्य—विशेषकर लोकगीतों—में सामान्य जनता की धार्मिक परिस्थिति का चित्रण उपलब्ध होता है। यद्यपि नयी सभ्यता तथा शिक्षा के चाकचिक्य के कारण हमारी प्राचीन धारणाओं और विश्वासों में परिवर्तन होने लगा है परन्तु लोक संस्कृति की सरिता आज भी अपनी अक्षुण्ण गति से प्रवाहित हो रही है। ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी उसी प्रकार से व्रत रखतीं हैं और अपनी अभीष्ट कामनाओं की सिद्धि के लिए देवताओं की पूजा करती हैं जिस प्रकार से प्राचीन काल में की जाती थी। पुरुष वर्ग भी अपनी धार्मिक भावनाओं और विधि-विधानों को सँजोकर थाती के समान सुरक्षित रखे हुए हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष में अनेक राजनैतिक उथल-पुथल हुए, अनेक क्रान्तियाँ हुई परन्तु हमारी धार्मिक विचार-धारा में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। फलतः लोक-साहित्य में जनता के धार्मिक जीवन का सजीव चित्रण अंकित किया गया है।

विभिन्न देवताओं की पूजा

लोक गीतों में जिन प्रधान देवताओं की पूजा का उल्लेख पाया जाता है उनमें शिव जी सबसे अधिक प्रचलित हैं। भगवान् शिव देवता के रूप में ही चित्रित नहीं किये गये हैं बल्कि वे एक साधारण पति के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं। इनकी पूजा प्रति गाँव में की जाती है। कोई भक्त स्त्री कहती है कि ए सखी! शिव के मन्दिर में दर्शन करने के लिए चलो। कोई इनके मन्दिर में अक्षत चन्दन चढ़ाता है और कोई लाल चूनरी

चढ़ाकर अपनी अभीष्ट सिद्धि की प्रार्थना करता है।[1] स्त्रियाँ षष्ठी माता की पूजा कार्तिक मास में किया करती हैं। यह वास्तव में सूर्य की ही उपासना है। पुत्राभिलाषिणी कोई स्त्री भगवान् सविता से प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे भगवन्! मैं आपको अर्घ्य प्रदान करने के लिए कब से खड़ी हूँ। अतः मेरा पैर दुखने लगा है और कमर में पीड़ा हो रही है। अत: आप शीघ्र उदय लीजिए जिससे मैं अर्घ्य प्रदान कर सकूँ।[2]

"गोंढवा दु-खइले रे डाढ़वा पिरइले,
कबसे जे बानी हम ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल,
अरघ दिआउ ॥"

कोई स्त्री कहती है कि हे भगवन्! मैं अधिक पुत्रों को नहीं चाहती। केवल पाँच पुत्रों को प्राप्त कर ही सन्तुष्ट हो जाऊँगी। वह सूर्य की पूजा के लिए अक्षत और शीतल जल लिए हुए है जिससे सूर्य को अर्घ्य दे सके।[3]

'खोंइछा अछतवा गडुववा जुड पानी,
चलली कवन देई अदित मनावे।
थोरा नाहीं लेबों आदित बहुत ना माँगिले,
पाँच पुतर आदित हमरा के दिहितो ॥"

मारवाड़ में अनेक देवी-देवताओं के गीत गाये जाते हैं जिनमें हनुमान् और भैरव (भैरूँजी) अधिक प्रसिद्ध हैं। कोई मारवाड़ी भक्त कहता है कि बाबा बजरंग की मूर्ति बड़ी भव्य है। कमर में लाल लँगोटा और माथे पर सिन्दूर का तिलक है। बाबा बजरंग आसन लगाकर बैठे हैं। अपने ब्रह्मचर्य के प्रताप से बजरंग जी ने रावण की अशोक-वाटिका को विध्वस्त कर डाला और राजा रामचन्द्र जी के कार्य को सिद्ध किया। माता अंजनी की कोख धन्य है जिसने हनुमान् जैसे पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया।[4]

"लाल लँगोटो तिलक सिन्दूर को
बैठ बजरंग आसण ढ़ाल।

---

१ डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १ पृ० २६८
२ वही . भो० लो० गी०
३ वही . भो० लो० गी० १ पृ० २४१
४ पारीक रा० लो० गी० भाग १ (पूर्वार्द्ध) पृ० १२-१३

बाग विधूंस्या, लंका दलमली
सार्‌या राजा रामचन्द्र का काम।
धन माता अजनी की कूख,
थ्रुणा जायो हणवंत पूत।'
बावा बजरंग री बँगलो हद बण्यो॥''

लोक कथाओं में देवी-देवताओं की पूजा का वर्णन बहुशः हुआ है। इन कथाओं में पुत्र की प्राप्ति, धन क लाभ तथा बच्चे की नीरोग-कामना के निमित्त काली माई, हनुमान् (महावीर) और सत्यनारायण बाबा की अनेक मनौतियाँ मनाई जाती हैं। भूत-दूत की पूजा का उल्लेख भी स्थान-स्थान पर किया गया है। ग्रामीण जनता का जीवन धर्म से ओत प्रोत है जिसका दर्शन लोक-गीत और कथाओं मे सर्वत्र पाया जाता है।

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना

लोक साहित्य में सर्वभूतहिताय और सर्वजनसुखाय की भावना प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। गाँवों में परोपकार के लिए कुवाँ खोदवाने, तालाब बनवाने और बाग लगवाने की प्रथा चिरकाल से चली आ रही है। ऐसा कार्य जिससे दूसरे मनुष्यों को सुख मिले ग्रामीण लोगों को अधिक प्रिय होता है। एक लोकगीत में यह भाव व्यक्त किया गया है कि कुआँ खोदने का फल यह है कि पानी भरने वाली पनिहारिनों की भीड़ लगे।[1] आम के पेड़ो को लगवाने का उद्देश्य यह है कि बटोही मन चाहा फल तोड़ कर खाया करें। तालाब बनाने की सार्थकता इसमे है कि मनुष्य, पशु, पक्षी सभी इसके शीतल का जल का उपयोग कर आनन्द लाभ करें। स्त्री जन्म की सफलता इसी में मानी जाती है कि उसकी गोद पुत्र-रत्न से सुशोभित होती रहे।

इस गीत मे ग्रामीण सस्कृति का सुन्दर चित्रण किया गया है। हमारी ग्राम-सस्कृति इन्हीं आदर्शों के सहारे सहस्त्रों वर्षों से अक्षुण्ण रीति से चली आरही है। ऊपर उल्लिखित गीत में सर्वजनसुखाय की भावना व्याप्त है जो हमारे हृदय में 'सर्वेऽत्र सुखिन सन्तु, सर्वे सन्तु निरामया.' की उदात्त भावना को जागरित करती है। लोक गीतों में अन्तर्निविष्ट मगल की यह प्रवृत्ति ससार के कल्याण की आधार-शिला है।

---

१ श्रीकृष्णदास . लो० गी० सा० व्या० पृ० ७० ७१

राष्ट्रीय जीवन में लोक-साहित्य की महत्ता

किसी देश के राष्ट्रीय जीवन में लोक-साहित्य का महत्त्व अत्यधिक है। यदि इसका सम्यक् सरक्षण एवं अनुशीलन किया जाय तो हमारे साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। इस मौखिक साहित्य में धर्म, समाज तथा सदाचार सबघी अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है। इसके साथ ही स्थानीय इतिहास और भूगोल संबघी बातें भी उपलब्ध होती है। भाषा शास्त्री के लिए तो यह साहित्य रत्नाकर के समान है जिसमें गोता लगाने पर उसे अनेक अनमोल मोती प्राप्त हो सकते हैं। जिन देशों या जातियों में लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं होता वे अपने मौखिक साहित्य पर ही गर्व करते हैं।

लोक साहित्य के महत्त्व को हम साधारणतया छः भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१ ऐतिहासिक महत्त्व
२. भौगोलिक-आर्थिक महत्त्व
३. सामाजिक महत्त्व
४. धार्मिक महत्त्व
५. नैतिक महत्त्व
६ भाषा-शास्त्र-सबधी महत्त्व

इनका वर्णन सक्षेप में क्रम-पूर्वक यहाँ उपस्थित किया जाता है।

१—ऐतिहासिक महत्त्व

लोक साहित्य में इतिहास की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है जिनके सम्यक् अध्ययन तथा अनुसन्धान से हमारा ऐतिहासिक भाण्डार भरा जा सकता है। लोक-गीतों तथा गाथाओं मे स्थानीय इतिहास का पुट बड़ा गहरा है जिनके उद्घाटन से हमारे विलुप्त तथा विस्मृत इतिहास पर पूर्ण प्रकाश पड़ सकता है तथा बिखरी हुई इतिहास की अनेक कड़िया जोड़ी जा सकती हैं। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में हल्दी एक छोटा सा गाँव है जहाँ कुछ काल पूर्व हैहय-वशी क्षत्री राज्य करते थे, जिनके वशज आज भी मौजूद हैं। इन राजाओं की बिहार राज्य के शाहाबाद जिले के डुमराँव के राजघराने से बड़ी तना-तनी रहती थी। बलिया जिले के बैरिया नामक गाँव के निवासी एक भूमि-हार जमींदार थे जिनका नाम बहोरन पाण्डेय था। ये डुमराँव के राजा के

मैनेजर थे। एक बार बहोरन पाण्डे पालकी में बैठकर हल्दी गाँव से होते हुए कहीं जा रहे थे। उस समय ग्रामीण बालकों को खेल में गाते हुए इन्होंने यह सुना कि :—[1]

"राजा भइले रजुली, बहोरन भइले धुनिया।
मारेले दलगंजनदेव, दलकेले दुनिया॥

अर्थात् डुमराव के राजा रजुली—बहुत छोटा—हैं और बैरिया के जमींदार बहोरन पाण्डे जुलाहा—धुनियाँ—हैं। हल्दी के राजा दलगजनदेव के प्रताप के कारण सारी पृथ्वी काँपती है। लड़कों के इस गीत को सुनकर बहोरन पाण्डे बडे ही क्रुद्ध हुए और उन्होंने डुमराँव के राजा से बच्चों के गीत की कथा कह सुनाई। इस गीत को सुनते ही डुमराँव के राजा अत्यन्त क्रोधित हो गये और उन्होंने हल्दी के राजा के ऊपर आक्रमण कर उनको परास्त कर दिया।

यह एक स्थानीय घटना है जिसमें हल्दी और डुमराँव के राजाओं के पारस्परिक सघर्ष का पता चलता है।

जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव के पास चाँदा नामक एक गाँव है जहाँ सन् १८५७ ई० में सिपाही-विद्रोह के अवसर पर अंग्रेजी फौजों के साथ प्रतापगढ़ जिले के काला काँकर स्थान के बिसेनवशी राजा से घोर युद्ध हुआ था।[2] अब भी इस गाँव के आस पास इस युद्ध के सबध में लोक गीत गाये जाते है जिसकी एक कडी इस प्रकार है —

"काले काँकर क बिसेनवा,
चाँदे गाड़े बा निसनवा'

मुगलों के शासन काल में किस प्रकार इस देश में अशान्ति एव दुर्व्यवस्था थी इसका चित्रण अनेक लोक-गीतों में पाया जाता है। तुर्कों की विषय लोलुपता तथा स्वेच्छाचारिता की गूंज इन गीतों में खूब सुनाई पड़ती है। किस प्रकार कुसुमा देवी ने मिर्जा साहब के अत्याचारों को सहकर भी अपने सतीत्व की रक्षा की थी और अपने चरित्र की ओजस्विता को प्रकट किया था यह गाँवों में आज भी बडे उत्साह के साथ गाया जाता है। सती कुसुमा देवी का नाम इन गीतों में अमर है। मिर्जा नामक किसी तुर्क सरदार की कुदृष्टि कुसुमा देवी के लावण्य मण्डित शरीर पर पड़ी।

---

१. लेखक का निजी संग्रह
२. त्रिपाठी—क० कौ० भाग ९ (ग्रामगीत) पृ० ६७

वह उसे पाने के लिए बेचैन हो उठा। मिर्जा ने सती कुसुमा के पिता को कैदखाने की काली कोठरी में डाल दिया और कुसुमा को जबरदस्ती पालकी में बैठा कर अपने स्थान को ले चला। पितृ-परायणा पुत्री जब रास्ते में जा रही थी तब उसने मिर्जा से अपने पिता के द्वारा बनवाये गये तालाब में पानी पीने की इच्छा प्रकट की। जब वह तालाब के किनारे जल पीने के लिए लाई गयी तब उसने जल में कूद कर अपनी आत्म-हत्या कर ली और इस प्रकार पापी मिर्जा के कलुषित हाथों से अपने को छुड़ा लिया। कुसुमा देवी का यह दिव्य चरित्र हमारे लिए आज भी नारीत्व के उत्कृष्ट महत्त्व को प्रदर्शित करता है।

इस सुप्रसिद्ध गीत की कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं[1] :—

"तनियक डोलिया थमाओ मिरजवा,
बाबा के सगरवा मुँहवा धोइत हो ना।
बाबा के सगरवा सुन्दर बढ़इल पनियाँ
हमरे सगरवा पनियाँ पीयो हो ना॥
तोहरा सगरवा मिरजा नित उठि होइहैं,
बाबा के सगरवा दुरलभ होइहै हो ना।
एक घूंट पियली दूसर घूंट पियली,
तिसरे में गई है तराई हो ना॥
रोइ रोइ जालावा डलावे राजा मिरजा,
फँसि आवे घोंघिया सेवरिया हो ना।
मुँहवा पटुका देके रोवे राजा मिरजा,
मोरे मुंह करिखा लगवलू हो ना॥
सिर पै पगड़िया बाँधि हँसे भैया बाबा,
दूनो कुल राखेउ बहिनी कुसुमा हो ना॥"

इसी प्रकार से अनेक गीत ऐसे हैं जिनमें मुगलकालीन शासन की ढिलाई और दुराचार एवं दुर्व्यवस्था का वर्णन पाया जाता है।

भोजपुरी मण्डल सदा से अपने 'वीर बाँकुड़ों' के लिए विख्यात है। अतः शत्रुओ का मान मर्दन करने वाले वीरों की अनेक कहानियाँ गीतों में गाई जाती हैं। सन् ५७ की क्रान्ति की चर्चा—जिसमें भोजपुरी सिपाहियों का विशेष हाथ था—इन गीतों में बिखरी पाई जाती हैं। वीराग्रणी बाबू

---

१ डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ९१

कुँवर सिंह ने जिस पराक्रम के साथ अंग्रेजों से युद्ध किया था वह इतिहास वेत्ताओं से अविदित नहीं है। गीतों में वर्णित इनके उत्कृष्ट बाहु-बल की कहानी सुनकर आज भी हमें रोमाञ्च हो जाता है। कुँवर सिंह की वीरता से परिपूर्ण इस गीत में उनकी बहादुरी का जीता जागता चित्र उपस्थित किया गया है।[1] इसके साथ ही सिपाही विद्रोह सम्बन्धी अनेक घटनाओं पर भी इससे प्रकाश पड़ता है।

"लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुँवरसिंह,
ए सुन अमर सिंह भाय हो राम॥
चमड़ा के टोटवा दाँत से हो काटे कि
छतरी के धरम नसाय हो राम॥
बाबू कुंवर सिंह भाई अमर सिंह,
दोनों अपने हैं भाय हो राम॥
बलिया के कारण से बाबू कुँवरसिंह,
फिरंगी से रेढ़ बढ़ाय हो राम॥
दानापुर से जब सजलक हो कम्पू
कोइलवर में रहे छाय हो राम॥
लाख गोला तुहुँ कै गनि के हो मरिहौं
छोड़ वरहरवा के राज हो राम॥

उपर्युक्त गीत में जन-विद्रोह के एक प्रमुख कारण की ओर संकेत किया गया है। साथ ही कुँवर सिंह की सेना का दानापुर (पटना) से चल कर कोइलवर में आने का उल्लेख पाया जाता है।

सिपाही-विद्रोह सम्बन्धी अनेक गीत उपलब्ध होते हैं जिनमें कहीं तो मेरठ के सदर बाजार में होने वाली लूट का वर्णन है तो कहीं अवध की बेगमों पर अंग्रेजों के द्वारा किये गये अत्याचार का उल्लेख है। अंग्रेजों ने सन् ५७ में वाजिद अली शाह से अवध की गद्दी छीनकर उसे लखनऊ से निर्वासित कर दिया था। इस दुःख से दुःखी उसकी बेगमों का यह विलाप कितना हृदय-द्रावक है[2] :—

"गलियन गलियन रैयत रोवे
हटियन बनिया बजाज रे।

---

१. डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ५२
२. इण्डियन एण्टिक्वेरी भाग X L (४०) सन् १९११ पृष्ठ १६५

महल में बैठी बेगम रोवैं,
ड्योढ़ी पर रोवै खवास रे।
मोती महल की बैठक छूटी,
छूटी है मीना बजार रे।
बाग जमनिया की सैरैं छूटी,
छूटे मुलुक हमार रे।
जो मैं ऐसी जानती,
मिलती लाट से जाय रे।
हा हा करती, पैयाँ परती,
लेती सँइयाँ छोड़ाय रे ॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस गीत में वर्णित घटनायें सच्ची हैं। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जो राष्ट्रीय आन्दोलन हुए हैं उनका वर्णन भी लोक-गीतों में उपलब्ध होता है। गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को समान अधिकार दिलाने के लिए जो अहिंसात्मक युद्ध किया था उसकी प्रतिध्वनि नीचे की इन पंक्तियों में सुनिये[1]।

"ए देश के दुलारे प्यारे परम पिता के,
प्रह्लाद नव समय के गौरव निधान गाँधी।
होकर अचल हिमाचल ए बीर! तू खड़ा था
जब अफ्रीका में बहती थी आपदा की आँधी।
गोरों गरूर वालों का गर्व खर्व करके,
ए देशभक्त! तूने मर्याद मेड़ बाँधी ॥"

इसी प्रकार से प्रिन्सिपल मनोरंजन प्रसाद सिनहा के प्रसिद्ध 'फिरंगिया' में सन् १९१९ में होने वाले पंजाब हत्याकाण्ड का व[...] करुण चित्रण किया गया है। सन् १९३० ई० में नमक सत्याग्रह के [...] के अनेक लोकगीत उपलब्ध हैं जिनमें नमक-कर हटाने के लिए क[...] संघर्ष का वर्णन पाया जाता है। सन् १९४२ ई० के 'भारत छोड़ो[...] लन के समय अनेक स्थानों पर अंग्रेजों द्वारा निरीह जन[...] अत्याचार हुए इसका पता गीतों से लगता है।

इस प्रकार लोक-गीतों में इतिहास संबंधी बहुमू[...] भरी पड़ी है।

---

[1] [...] के निजी संग्रह से।

उत्तरी भारत में गोपीचन्द की गाथा बहुत प्रसिद्ध है। बहुत दिनों तक लोग इन्हें अनैतिहासिक व्यक्ति समझते थे और इनकी कथा को कवि कल्पना की उपज मानते थे। परन्तु डा० ग्रियर्सन ने प्रवल प्रमाणों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि ये ऐतिहासिक व्यक्ति थे[1]। उन्होंने इनके निवास स्थान का पता लगाकर इनके सबध में बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री की खोज की है।

महोबा के परमार राजा परमर्दिदेव की सेना के शूरमा आल्हा और ऊदल की वीरता से कौन परिचित नहीं है। जगनिक ने अपने 'आल्हखण्ड' में इन ऐतिहासिक वीरों की गाथा गायी है। जगनिक की यह कृति आज उपलब्ध नहीं है। यदि यह ग्रन्थ मूल रूप में प्राप्त होता तो परमार तथा चौहान राजाओं के इतिहास की बहुत सी सामग्री प्रकाश में आ सकती थीं। यद्यपि आधुनिक काल में वर्तमान कवियों द्वारा रचित जो आल्हखण्ड मिलता है उसमें बहुत सा अश 'भट्ट भणन्त' के रूप मे है फिर भी उस कथा की ऐतिहासिकता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। आल्हा की कथा का निर्माण इतिहास की ठोस आधार-शिला पर हुआ है।

२—भौगोलिक महत्त्व

लोक साहित्य में भूगोल सबधी किसी विषय का साङ्गोपाङ्ग बिवेचन तो उपलब्ध नहीं होता परन्तु स्थानीय भूगोल के सम्बन्ध में बहुत सी बातो का पता चलता है। लोक-गीतों मे बहुत सी नदियों और नगरों के नाम पाये जाते हैं। भोजपुरी लोकगीतों में गगा, यमुना, सरयू (घाघरा) और सोन आदि नदियों के नाम बारम्बार आते हैं। शहरो मे काशी, प्रयाग, अयोध्या, मिर्जापुर, पटना और जनकपुर का नाम अधिक मिलता है। पूर्व देश (बगाल) और मोरग देश का उलेल्ख भी कुछ कम नहीं हुआ है। 'ढोला मारू रा दूहा' से अनेक नगरों की स्थिति का पता चलता है।[2] 'आल्हखण्ड' में तत्कालीन भूगोल सबधी बहुत सी सामग्री उपलब्ध होती हैं। इसमें अनेक शहरों के नाम मिलते हैं जो किसी वीर या राजा से सबधित हैं।[3] उदाहरण के लिए दिल्ली, कन्नौज, महोबा, उरई, कालपी,

---

१ डा० ग्रियर्सन—जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल भाग LIV सन् १८८५ पार्ट १ पृ० ३५

२ सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादित

३ त्रिपाठी—आल्हा पृ० ३७-४२

माड़ौगढ़, बबुरीबन, दसहर पुरवा, बनरस, गाँजर, नरवरगढ़, नैनागढ़, पैरीगढ़, पथरीगढ, खजुहागढ़, कजरीबन, बिठूर, और बौरीगढ आदि स्थानों का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है।

इनके अतिरिक्त हरद्वार, हिंगलाज, गया, गोरखपुर, पटना, बूँदी, राजगृह और बंगाल का नाम भी इसमें आया है। 'आल्हखण्ड' में कुछ ऐसे छोटे छोटे गाँवों के भी नाम मिलते हैं जो अब या तो समय के प्रवाह में लुप्त हो गये अथवा इनका अब पता नहीं चलता। वास्तव में इस लोक-गाथा में इतने अधिक भौगोलिक नामों का उल्लेख हुआ है कि इनके विषय में खोज करने पर एक पुस्तक का कलेवर भर सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि भूगोल के शोधी विद्वान् आल्हा-कालीन भूगोल का अध्ययन कर इस गाथा में वर्णित स्थानो का पता लगावें।

बिहुला में गीत में भी अनेक स्थानों का उल्लेख पाया जाता है जो भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

आर्थिक महत्त्व

लोक-गीतों में जन-जीवन के आर्थिक पक्ष की झाँकी भी दिखाई पड़ती है। गीतों और कथाओं में सोने की थाली मे भोजन करने और आभूषणों की प्रचुरता का वर्णन उपलब्ध होता है। भोजपुरी झूमर के गीतों में सोने की थाली में भोजन परोसने का उल्लेख अनेक बार हुआ है। कोई स्त्री परदेस गये हुए पति को लक्षित करती हुई कहती है कि :—

"सोने के थाली में जेवँना परोसलो,
जेवना ना जेवें अलबेला,
बलमु कलकत्ता निकल गयो जी।"

बाल साफ करने की कघी भी सोने की बनी हुई बतलाई गई है। चन्दन की लकड़ी के बने हुये पलग का वर्णन पाया जाता है जो रेशम से बुना गया है। बच्चों को झुलाने के लिए जो पालना है वह चाँदी का बना हुआ है जिसमें रेशम की डोर लगी हुई है। खाने के लिए बासमती चावल, मूँग की दाल, पुड़ी, पुआ आदि विभिन्न प्रकार के पकवानों का वर्णन है। एक गीत में तो बारात के खाने के लिए बनायी गई सैकड़ों मिठाइयों की लम्बी लिस्ट दी गई है जो सचमुच ही बड़ी आकर्षक और लुभावनी है[१]।

---

१ त्रिपाठी—ग्रामगीत

भोजपुरी का एक मुहावरा है--दूध से पैर धोना और घी से स्नान करना। इससे ज्ञात होता है कि देश में दूध और घी की प्रचुरता थी तथा लोग इसका अधिक परिमाण में प्रयोग करते थे।

लोक-गीतों की स्त्रियाँ धानी रग की चूनरी (अनेक रगों से रजित साड़ी) पहिनती थीं जिसमें इत्र लगा रहता था। अतः उससे सुगन्ध का फौवारा सदा छूटता रहता था। रेशम की साड़ी का प्रयोग पहिनने के लिए किया जाता था। आभूषण सोने और चाँदी दोनों के बने होते थे। गहनों की जो लम्बी सूची गीतों में मिलती है उससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज बड़ा समृद्ध था। जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी थी और सभी लोग धन, धान्य से पूर्ण थे।

गीतों के अध्ययन से यह पता चलता है कि भोजपुरी प्रदेश के लोग व्यापार करने के लिए पूर्व देश (बगाल या वर्मा) को जाया करते थे और बारह वर्ष के सुदीघ काल के पश्चात् लौटकर आते थे। कोई स्त्री कहती है कि मेरा पति वाणिज्य करने के लिए पूर्व देश को जा रहा है। अब मेरे ऊजडे हुए घर को कौन छावेगा[1] ?

"पियवा जे चलेले उत्तर बनिजरिया, कि केइ रे छइहें ना,
मोरा उजड़ल बॅगलवा, कि केह रे छइहें ना।"

अधिक तो क्या, भगवान् शिव भी 'पूरवी बनिजिया' के लिए निकल पड़ते हैं।

गीतों मे आर्थिक भूगोल भी पाया जाता है। शौकीन लोग खाने के लिए मगह का पान ही प्रयोग में लाते हैं। आ[illegible]ाहिया' पान अपने स्वाद और सुन्दरता में प्रसिद्ध हैं। बहू के प[illegible] लिए बनारस से साड़ी मॅगवायी जाती है जिसमें जरी का काम किया गया होता है। विवाह में वर को परीछने के लिए मिर्जापुर मे बने हुए लोढे का प्रयोग किया जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मिर्जापुर में आज भी पत्थर के सील और लोढे बडे मजबूत और सुन्दर बनते हैं। विवाह में बरातियों के चढने के लिए हाथी गोरखपुर से आता है और पटने से उसकी झूल आती है। यह सभव है कि पहिले पटने में हाथियों के झूल बनाने का

---

[1] डा० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १

व्यवसाय होता हो। एक गीत में बुटवल की नारंगी का उल्लेख पाया जाता है जो अपनी प्रसिद्धि आज भी बनाये हुए हैं।

३—समाज का चित्रण

लोक साहित्य में जन-जीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है उतना अन्यत्र नहीं। सच तो यह है कि यदि किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना अभीष्ट हो तो उसके लोक साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। लोक कवि मानव-समाज को जिस रूप में देखता है वह उसका उसी रूप में वर्णन करता है। अत. उसका वर्णन सत्य से दूर नहीं होता। इतिहास की बड़ी बड़ी पोथियों में लड़ाई, झगड़ों और संघर्षों का विस्तृत विवरण भले ही मिल जाय परन्तु समाज के याथातथ्य चित्रण के लिए लोक साहित्य का अनुसंधान वाञ्छनीय ही नहीं अनिवार्य भी है। इन लोक गीतों, गाथाओं और कथाओं में मनुष्यों के रहन-सहन आचार-विचार, खान-पान और रीति-रिवाज का सच्चा चित्र देखने को मिलता है। मध्य प्रदेश में करमा नामक जाति निवास करती है। उनके एक गीत का भाव यह है कि "यदि तुम मेरे जीवन की सच्ची कहानी जानन[illegible] चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो।"[1]

लोक साहित्य में समाज का जो चित्रण किया गया है वह उच्च, शि[illegible] और सभ्य है। पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पुत्री, पिता-पुत्र, ननद-भा[illegible] और सास-बहू का जो वर्णन हमारे सामने उपलब्ध होता है उससे स[illegible] का सारा चित्र हमारे हृदय-पटल पर अंकित हो जाता है। भाई और [illegible] के जिस शुद्ध [illegible] त्र प्रेम का वर्णन भोजपुरी लोक-गीतों में उ[illegible] होता है उसक[illegible] अन्यत्र कहाँ ? यह निष्कपट प्रेम सचमुच ही अ[illegible] णीय है। कोई दुष्ट पति जब अकारण अपनी सती स्त्री का परित्याग [illegible] है तब अपनी दुःखी बहिन को उसका भाई अपने घर ले जाता है [illegible] आदर के साथ रखता है। लोक-गीतों मे पुत्री की विदाई के अ[illegible] माता का प्रेम-पारावार हिलोरे मारता हुआ दिखाई देता है। [illegible] रो रही हैं तो कहीं भाई चिल्ला रहा है। पिता के आँसुओं [illegible] गंगा में बाढ़ सी आ जाती है। इस प्रकार माता-पिता तथा भा[illegible] ममता पुत्री के प्रति इन गीतों में दिखाई पड़ती है।

[1] — आफ मैकल हिल्स भूमिक[illegible]

जब पुत्री बड़ी होने लगती है तब उसके पिता को उसके विवाह की चिन्ता सताने लगती है और उसे रात-दिन कभी चैन नहीं पड़ती। वह पुत्री के लिए उपयुक्त वर खोजने के लिए उड़ीसा और जगन्नाथ धाम तक की यात्रा करता है। विवाह की चिन्ता से न तो उसे दिन में चैन पड़ता है न रात में नींद लगती है। संस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही लिखा है कि :—

'पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्त्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति,
कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम्।।"

लोक-गीतों में वर्णित पिता की दशा भी बहुत कुछ ऐसी ही होती है।

इन गीतों में जहाँ प्रेम और वात्सल्य दिखलाया गया है वहाँ विरोध और संघर्ष का चित्रण भी हुआ है। ननद और भावज का शाश्वतिक विरोध इन गीतों में पाया जाता है। ननद अपने भाई से भावज की सदा निन्दा करती हुई दिखाई पड़ती है। एक गीत में शान्ता राम से सीता की शिकायत करती हुई कहती है कि यह रावण का चित्र उरेह रही थी। इसके फलस्वरूप राम के द्वारा सीता का परित्याग कर दिया जाता है।

सास और बहू का संबंध भी इन गीतों में कुछ सुन्दर नहीं है। दुष्टा सास अपनी बहू को अनेक प्रकार का कष्ट देती है। वह दिनभर उससे काम करवाती है परन्तु खाने के लिए भर पेट भोजन तक नहीं देती। यही कारण है कि गीतों में उसे 'दरूनिया'—दारुण—कहकर सम्बोधित किया गया है। सौतिया डाह का बड़ा ही सजीव चित्रण इन गीतों में पाया जाता है। इसके साथ ही बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह का वर्णन भी उपलब्ध होता है।

समाज-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए बहुत सी उपयोगी समग्री लोक-साहित्य में पाई जा सकती है। बहुत से स्थानीय रीति रिवाज और प्रथाओं का उल्लेख इन गीतों में हुआ है। भोजपुरी समाज में पुत्र जन्म के अवसर पर थाली बजाने की प्रथा है। यह प्रथा बड़ी वैज्ञानिक है। परन्तु विज्ञान के इस युग में इस प्रथा को लोग भूलते चले जा रहे हैं। विवाह के अवसर पर परीछन, द्वारपूजा, गुरहथी, लावा मेराई, भाँवर, सुमंगली और कोहबर आदि अनेक प्रथाओं का उल्लेख मिलता है। प्राचीन कालीन वैदिक विवाह पद्धति को समझने के लिए इन प्रथाओं जानना आवश्यक है।

इस विशाल देश में बहुत सी जंगली पार्वत्य और आदिम जातियाँ निवास करती हैं। इन सभी जातियों की सामाजिक प्रथायें भिन्न-भिन्न हैं। इन का उल्लेख उनके लोक-साहित्य में पाया जाता है। अतः मानव-शास्त्र-वेत्ता के लिए यह मौखिक-साहित्य अत्यन्त उपयोगी तथा लाभदायक है—

४—धार्मिक महत्त्व

किसी जाति के धार्मिक जीवन का पता भी लोक साहित्य से लगता है। लोक-गीतों में गंगा माता, तुलसी माता, शीतला माता तथा षष्ठी माता का गायन हुआ है। गंगा जी में स्नान करने से तन तथा मन के पापों के धुलने की बात कही गई है। भजनों में संसार की अनित्यता, मानव-जीवन की क्षण-भंगुरता तथा वैभव की निःसारता का उल्लेख अनेक बार हुआ है। ग्रामीण जन किन-किन देवताओं की पूजा करते हैं, उनकी प्रसन्नता के लिए कौन कौन से उपाय करते हैं तथा पूजा में जो जो विधि-विधान सम्पादित किये जाते हैं उन सबका वर्णन यहाँ पाया जाता है।

बहुरा, पिड़िया, भइया दूज, जीउतिया (जीवि पुत्रिका) आदि व्रत संबंधी कथाओं में धर्म के अनेक गूढ़ रहस्य छिपे पड़े हैं। समाज में मनु के वचनों या आदेशों का प्रभाव भले ही न पड़े परन्तु इन कथाओं का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। अतः धर्म और नीति की शिक्षा देने के लिए लोककथाओं का बड़ा महत्त्व है।

लोक गीतों के अध्ययन करने से पता चलता है कि हिन्दू समाज में शिव पूजा की प्रधानता थी। लोग शिवमन्दिरों में पूजा के लिए जाया करते थे। साथ ही सूर्य की पूजा का भी कुछ कम प्रचार नहीं था। षष्ठी माता का व्रत वास्तव में सूर्य का ही व्रत है। यह व्रत पुत्र-प्राप्ति के लिए किया जाता है। इस दिन भगवान् सूर्य के उदय होने पर स्त्रियाँ अर्घ्य देती हैं और पक्वान्न तथा फल उन्हे समर्पित करती हैं।

गंगा और तुलसी का महत्त्व हमारे धार्मिक जीवन में अत्यधिक है। इसकी पुष्टि लोक-गीतों के वर्णन से होती हैं। शीतला माता चेचक की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती है। अतः इनका आवाहन इस रोग से पीड़ित बालक को नीरोग करने के लिए किया जाता है।

धार्मिक जीवन की झाँकी के अतिरिक्त हिन्दू पुराणशास्त्र (माइथोलाजी) के अनेक ज्ञातव्य विषयों पर इन गीतों से प्रचुर प्रकाश पड़ता है। यहाँ केवल एक ही उल्लेख पर्याप्त होगा। भोजपुरी गीतों में तुलसी के सपत्नी होने

का उल्लेख अनेक बार हुआ है। परन्तु किसी पुराण में सभवतः इसकी चर्चा नहीं पाई जाती। अतः पुराण-शास्त्र (माइथोलोजी) के लिए यह मौलिक कल्पना है। अत. तुलनात्मक पुराणशास्त्र के विद्यार्थी के लिए लोक-साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है।

(५) नैतिक महत्त्व

लोक साहित्य में जिस नैतिक अवस्था का वर्णन मिलता है वह लोकोत्तर और दिव्य है। जन साहित्य के विविध अवयवों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय समाज का नैतिक स्तर बहुत ही ऊँचा था। तत्कालीन लोगों का चरित्र सदाचार और सन्निष्ठा का निकषग्रावा था। सतीत्व का जो आदर्श इस साहित्य में उपलब्ध होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भारत में सती-धर्म का पालन बड़ी कठोरता के साथ किया गया है। अनेक ललनाओं ने सतीत्व की रक्षा के लिए अपने कोमल कलेवर को हँसते हुए अग्निदेव को समर्पित कर दिया है। राजपूताने में प्रचलित पद्मिनी के 'जौहर' की अमर कहानी से कौन परिचित नहीं है। परन्तु लोकसाहित्य में अनेक पद्मिनियाँ अपने सतीत्व की रक्षा अथवा अपने को पवित्र प्रमाणित करने के लिए अग्नि मे प्रवेश करती हुई दिखाई पड़ती है। अनेक वरुणदेव की शरण लेती हैं। सती शिरोमणि कुसुमा देवी ने किस प्रकार तालाब में डूबकर दुष्ट मुगलो के हाँथों से अपने सतीत्व की रक्षा की इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इसी प्रकार साध्वी चन्दा देवी अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए खौलते हुए तेल की कड़ाही में कूद पड़ती है।[१]

सतीत्व की कसौटी पर स्त्रियाँ खरी उतरती दिखाई पड़ती हैं। कोई पुरुष परदेस से लौट रहा है। रास्ते में अपनी धर्मपत्नी से उसकी भेंट होती है। वह उसके सतीत्व की परीक्षा के लिए उसे लालच दिखलाता है और हार, मोती तथा 'डाल' भर सोना देकर विवाह का प्रस्ताव करता है। स्त्री अपने पति को अधिक दिनो पर घर लौटने के कारण पहिचानती नहीं। वह उसके इस दुष्ट प्रस्ताव का उत्तर देती हुई कहती है कि मै तुम्हारे धन (सोना, हार आदि) में आग लगा दूँगी और मेरा पति जब परदेस से लौट कर आयेगा तब तुम्हें कठोर दण्ड दिलाऊँगी। एक भोजपुरी गीत में कोई

---

[१] डा० उपाध्याय—भो० ग्रा० गी० भाग २

देवर अपनी भावज से मज़ाक करता हुआ उससे विवाह का अनुचित प्रस्ताव करता है। इस पर सती भावज क्रोधित होकर उत्तर देती है कि यदि मेरा पति परदेस से लौट आया तब तुम्हारी इन लम्बी भुजाओं को इस दुष्टता के कारण कटवा डालूँगी[1]।

भोजपुरी लोक-गीतों में दिव्य की प्रथा का उल्लेख अनेक स्थानों में हुआ है। स्त्रियाँ अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए, अपने को पूत एव पवित्र सिद्ध करने के लिए अनेक प्रकार के दिव्य को ग्रहण करती हैं। कोई आग में प्रवेश करती है तो कोई जल-समाधि लेती है। इसी प्रकार वे अनेक कष्टों को सहनकर अपने को निर्दोष प्रमाणित करती हैं।

भोजपुरी में एक कहावत प्रचलित है जिसमें कोई स्त्री पर-पुरुष को लक्षित कर कहती है कि तुम्हारे आगे भी कूबड़ है और पीछे भी कूबड़ है। क्या तुम मेरे पति से अधिक सुन्दर हो ?

"आगे कुब्बर, पीछे कुब्बर।
हमरा भतार से बाड़ा सुन्नर॥"

इससे पता चलता है कि लोक-गीतों में वर्णित ये स्त्रियाँ कितनी पति-परायणा हैं।

अंग्रेजी में एक कहावत प्रचलित है कि सीज़र की पत्नी सन्देह से परे है।[2] लोक साहित्य में जिस नारी का चित्रण हुआ है उसके विषय में भी यही बात कही जा सकती है कि वे सन्देह से परे हैं और उनका चरित्र लोकोत्तर है।

६—भाषा-शास्त्र-सम्बन्धी महत्त्व

भाषा विज्ञान की दृष्टि से लोक साहित्य का महत्त्व सर्वाधिक है। लोक-साहित्य भाषा-शास्त्री के लिए अमूल्य निधि है, अक्षय भाण्डार है। सुप्रसिद्ध भाषातत्ववेत्ता डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इन पंक्तियों के लेखक से बात चीत के दौरान में एक बार कहा था कि जो लोग लोक साहित्य का संग्रह कर रहे हैं वे भावी भाषा-शास्त्रियों के लिए अमूल्य सामग्री उपस्थित कर रहे हैं। लोक गीतों, गाथाओं और कथाओं में व्यवहृत शब्दों की निरुक्ति का पता लगाने पर भाषा-शास्त्र-सम्बन्धी अनेक गुत्थियाँ सुलझायी

---

१ डा० उपाध्याय . भो० लो० गी०, भाग १

2 Ceazer's wife is above suspicion.

जा सकती हैं। इनमें प्रचलित शब्दों द्वारा हिन्दी के अनेक शब्दों की विकास-परम्परा को हम वैदिक संस्कृत से जोड़ सकते हैं। बहुत से ऐसे शब्द वेद में पाये जाते हैं जो सस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी में नहीं है परन्तु उनका समानार्थी शब्द भोजपुरी में उपलब्ध होता है। एक उदाहरण लीजिए :—

गाय के सद्यो जात—तत्काल पैदा हुए—शिशु को वेद में 'धरुण' कहते हैं। भोजपुरी में यह 'लेरुआ' के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु खड़ी बोली हिन्दी में इस भाव का द्योतक कोई शब्द प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार वेद में गर्भ-घातिनी गाय को 'वेहद' और बाँझ (वन्ध्या) गाय को 'वशा' कहते हैं। भोजपुरी में इसके लिए क्रम से 'लड़ाइल' और 'बहिला' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। भोजपुरी का 'बहिला' शब्द वैदिक 'वशा' शब्द से विकसित हुआ है। हिन्दी में इन दोनों भावों को प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं है। यदि 'धरुण' और 'वशा' शब्दों की निरुक्ति के विकास की परम्परा लिखनी हो, यदि इन शब्दों की जीवनी का पता लगाना हो तो भोजपुरी लोक-साहित्य में प्रयुक्त इन शब्दों से परिचित हुए बिना हमारी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। यह एक विशेष बात है कि अनेक वैदिक शब्दों के अपभ्रंश रूपों की सत्ता भोजपुरी में विद्यमान है परन्तु संस्कृत और हिन्दी में उनका सर्वथा अभाव है।

अनेक शब्दों की ऐतिहासिक परम्परा को जानने के लिए लोक-साहित्य का अध्ययन अत्यन्त उपादेय है। उदाहरण के लिए 'जुगवत' शब्द को ही लीजिए। लोक गीतों में इसका प्रयोग बड़ी सावधानी के साथ किसी वस्तु की रक्षा करने के अर्थ में हुआ है।[1] इस शब्द की उत्पत्ति सस्कृत 'गुपु रक्षणे' धातु से हुई है जिसका भूत कालिक रूप 'जुगोप' बनता है। इसी 'जुगोप' से 'जुगवत' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। एक दूसरा शब्द लीजिए। लोक गीतों में सौभाग्यवती स्त्री के लिए 'सुहवा' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। भाषा-शास्त्र के विद्वानों से यह बात छिपी नहीं है कि यह शब्द संस्कृत के 'सुभगा' का तद्भव रूप है।

लोक-साहित्य के अध्ययन से हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि होगी।

---

१ गोस्वामी तुलसीदास ने निम्न चौपाई में इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है।

"अमिय मूरि जिमि जुगवत रहऊँ।
दीप बाति ना टारन कहऊँ॥"

उसका भाषा-भाण्डार समृद्ध होगा। नये नये शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों के ग्रहण से हमारी भाषा की भाव-प्रकाशिका शक्ति बढ़ेगी। ग्रामीण घरों में, प्रतिदिन अनेक नूतन शब्द व्यवहार में आते हैं। इसी प्रकार विभिन्न व्यवसाय करने वाली जातियाँ—लोहार, सोनार, कुम्हार आदि—अनेक पारिभाषिक पदावली का व्यवहार करती हैं। डा० ग्रियर्सन ने इन शब्दों का संग्रह 'बिहार पीजेन्ट लाइफ' नामक अपने ग्रन्थ में किया है। इन शब्दों का व्यवहार राष्ट्रभाषा हिन्दी की वृद्धि के लिए अत्यन्त उपादेय है।

लोक-साहित्य के कोष में कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके भावों के समुचित प्रकाशन के लिए हमारी खड़ी बोली असमर्थ है। भोजपुरी में 'बिराना' एक क्रिया है जिसका अर्थ हिन्दी में मुँह चिढ़ाना है। परन्तु 'बिराना' का भाव मुँह चिढ़ाने से कुछ भिन्न है। इसी प्रकार 'डाहना' शब्द है जिसके लिए हिन्दी में जलाना या दुःख देना का प्रयोग किया जाता है। परन्तु 'डाहना' का भाव इन दोनों शब्दों से कहीं अधिक व्यापक और गंभीर है। जलाने में केवल शुष्कता है परन्तु 'डाहना' शब्द में क्रोध, प्रतिवाद और विक्षोभ के साथ उलाहने का भाव भी सम्मिलित है। एक दूसरा शब्द 'बराना' है जिसके दो अर्थ हैं—बचकर चलना और चुनना। जैसे 'राह बरा कर चलो।' परन्तु 'राह बराने' का भाव बचकर चलने से कहीं अधिक व्यापक है। 'निहुरना' का अर्थ झुकना है। झुकने का प्रयोग किसी भी वस्तु के लिए किया जा सकता है परन्तु 'निहुरना' का प्रयोग विशेष कर मनुष्यों की कमर झुकने के लिए प्रयुक्त होता है।

लोक-साहित्य में हजारों कहावतें और मुहावरें भरे पड़े हैं। इनमें भावाभिव्यजन की बड़ी शक्ति होती है। वाक्यों में इनका प्रयोग करने से शैली सुगठित एवं चुस्त बन जाती है। कुछ मुहावरों में भावों की बड़ी सघनता एवं तीव्रता होती है। उदाहरण के लिए 'आग में मूतना' को लीजिए। अधिक अन्धेर या अत्याचार करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। दूसरा मुहावरा 'खराई मारना' है जिसका अर्थ प्रातःकाल अधिक देर तक जलपान या भोजन न करने से शरीर में विकार उत्पन्न होता है। इन दोनों भावों को व्यक्त करने के लिए खड़ी बोली में मुहावरों का अभाव है।

ग्रामीण लोकोक्तियों में प्रचुर भाव भरे पड़े हैं। उनमें अर्थ प्रकाशन की विचित्र शक्ति है। एक भोजपुरी कहावत है—'बेटी चमारे के नाम रजरनिया' अर्थात् वह चमार की लड़की है परन्तु उसका नाम राजरानी है।

इसका प्रयोग उस समय किया जाता है जब किसी असुन्दर वस्तु' को सुन्दर नाम प्रदान किया गया हो। एक दूसरी लोकोक्ति है 'अगिया लगाइ छउढ़ी बर तर ठाढ़' अर्थात् दो आदमियों में झगड़ा लगाकर स्वय तटस्थ हो जाना।[1] यह लोकोक्ति भवभूति की निम्नांकित उक्ति से बहुत कुछ मिलती जुलती है :—

"तटस्थः स्वान् अर्थान्
घटयति च मौनं च भजते।"

लोक-गीतों, गाथाओं और कथाओं में जो विशाल शब्द-सम्पत्ति छिपी पड़ी है वह भाषा-शास्त्रियों के लिये अमूल्य निधि है। वह एक ऐसा अक्षय्य है स्रोत जिसका प्रवाह कभी सूख नहीं सकता। डा० ग्रियर्सन ने भोजपुरी लोक गीतों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि ये लोक-गीत उस खान के समान हैं जिसके खोदने का कार्य अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है। इन गीतों की प्रत्येक पक्ति में ऐसी विशेषता है जिससे भाषा-शास्त्र सबधी अनेक समस्यायें हल की जा सकती हैं।[2]

लोक-साहित्य की महत्ता पर विद्वानों का मत

सुप्रसि मानवशास्त्रवेत्ता डा० वैरियर एलविन ने लोक गीतों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि[3] "लोकगीत केवल अपने संगीत, स्वरूप और वर्ण्य विषयों के कारण ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं प्रत्युत इनकी

---

1. विशेष के लिए देखिए—

डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग 1

2. The Bhojpuri folk songs are a mine almost entirely unworked and there is hardly a line in one of them which, if published now, will not give valuable ore, in the shape of an explanation of some philological difficulty

ज० रा० ए० सो० बं० भाग LII पार्ट १ (सन् १८८३) पृष्ठ ३२

3 The folksongs are important not only because the music, form and the content of verse is itself part of a people's life but even more because in songs, in charms, in actually fixed and established documents we have the most authentic and unshakable witnesses to ethnographic fact

In making up his (ethnologist's) mind he can have no better evidence than songs.

डा० एलविन : फोक साङ्स ऑफ् मैकल हिल्स (इन्ट्रोडक्शन)

महत्ता इससे भी अधिक है। इन गीतों में, इन व्यवस्थित लेख-पत्रों (documents) में हमें मानव-विज्ञान-शास्त्र संबंधी तथ्यों की प्रमाणभूत सामग्री उपलब्ध होती है। × × × मानव-विज्ञान-शास्त्री को अपने सिद्धान्तों की सत्यता प्रमाणित करने के लिए लोक गीतों की अपेक्षा कोई दूसरा सच्चा साक्षी उपलब्ध नहीं हो सकता है। करमा जाति के लोगों के एक गीत का भाव यह है कि यदि तुम मेरे जीवन की कथा जानना चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो।[1]

एन्ड्रू फ्लेचर ने लिखा है कि यदि किसी मनुष्य को समस्त लोक-गीतों की रचना की आज्ञा मिल जाय तो उसे इस बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं कि उस देश के कानून को कौन बनाता है।[2] भाव यह है कि लोक गीतों तथा गाथाओं में कानून से भी अधिक शक्ति और प्रभाव है।

एमेलिन मार्टिनेङ्गो का मत है कि लोक कथायें कहानियों के जनक है और लोक-गीत समस्त कविताओं की जननी हैं।[3] इसी लेखिका ने आगे चल कर लोक साहित्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि "लोक-काव्य व्यक्तिगत या सामूहिक तीव्र भावों के प्रकाशन हैं। लोक कविता और कथाओं का स्रोत राष्ट्रीय जीवन के अन्तरतम से निःसृत होता है। जनता का हृदय इन गीतों और गाथाओं में ओत-प्रोत रहता है। ऐसा भी समय आता है जब कि जाति या राष्ट्रीयता की अतिशय भावना ने सम्पूर्ण राष्ट्र को लोक-कवि के रूप में परिणत कर दिया है।[4]

---

1. "If you want to know the story of my life,
Then listen to my (Karama) songs"

वही—(इन्ट्रोडक्शन)

2 "If a man is permitted to make all the ballads, he need not care who should make the laws of nation"
Andrew Flacher

3. The Folk-tale is the father of all fiction and the folk—song is the mother of all poetry.

दि स्टडी ऑव् फोक साङ्ग्स पृ० २

4. Popular poetry is the reflection of moments of strong collective or individual emotion The springs of legend and poetry issue from the deepest wells of national life ; the very heart of a people is laid bare in its sagas and songs There have been times when a profound feeling of race or patriotism has sufficed to turn a whole nation into poets.

Countess Evelyn Martinengo—Essays in the study of folksongs Page—3

सुप्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे की सम्मति में राष्ट्रीय गीतों और गाथाओं का विशेष महत्त्व यह है कि प्रकृति से इनको प्रेरणा प्राप्त होती है। इनमें किसी प्रकार से मिश्रण नहीं होता। वे एक निश्चित स्रोत से प्रवाहित होते हैं।[1]

जे० एफ० कैम्पवेल ने लोक-कथाओं की विशेषताओं को प्रतिपादित करते हुए अपना यह मत व्यक्त किया है कि "लोक-कथायें उन लोगों के वास्तविक दैनिक जीवन का सटीक चित्रण करती है जो उन कथाओं को सचाई के साथ कहते हैं। अनन्त काल से वे ऐसा करती आ रही हैं। वर्तमान युग के विषय में यह बात भले ही सच्ची न हो परन्तु अतीत के सबध में तो बिल्कुल ठीक है। भूत की विस्मृत जीवन-यावेत्रा ` वषय में इनसे बहुत कुछ सीखा जा सकता है"[2]

उपर्युक्त विवरण एव उद्धरणों से लोक-साहित्य के विविध अगों के महत्त्व का पता चलता है। किसी देश के राष्ट्रीय जीवन में लोक साहित्य का महत्त्व बहुत अधिक है। लोक साहित्य से राष्ट्रीय जीवन को गति और प्रगति प्राप्त होती है। यह राष्ट्रीय जीवन का बल और सम्बल है।

---

1 "The special value" wrote Goethe "of what we call national songs and ballads is that their inspiration comes fresh from Nature, they are never got up, they flow from a sure spring"

'दी स्टडी आफ फोक साङ्ग्स' में गेटे का उद्धृत वचन।

2 "The tales represent the actual everyday life of those who tell them with great fidelity They have done the same, in all likelihood, time out of mind, and that which is not true of the present is, in all probability, true of the past, and therefore something must be learned of forgotten ways of life." I. F. Campbell—Highland Tales

लोक-साहित्य की धार्मिक पृष्ठ-भूमि

भारतवासियों का जीवन धर्ममय है। धर्म ही हमारे जीवन का प्राण है। यदि यह कहा जाय कि हमारी संस्कृति धर्म के ताने-बाने से बुनी गई है तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। हमारी संस्कृति, समाज और साहित्य में धर्म का स्वर सबसे ऊँचा है। चार पुरुषार्थों में इसे प्रधान स्थान दिया गया है। इसी के द्वारा अर्थ तथा काम की उपलब्धि होती है। इसीलिए महाभारत के रचयिता ने हाथ ऊँचा उठाकर तारस्वर से घोषित किया है कि—

"ऊर्द्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चित् शृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥"

प्राचीन भारतीय साहित्य का अनुशीलन करने से पता चलता है कि उसके निर्माण में धर्म की ही प्रेरणा रही है। धार्मिक भावनाओं से भावित होकर तथा धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही हमारी श्रुतियों का निर्माण किया गया था। आर्यों के धार्मिक उद्‌गारों ने वैदिक ऋचाओं का स्वरूप ग्रहण किया। धर्म संबधी (यज्ञ, यागादि) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों की रचना की गई। यज्ञीय विधि-विधानों का समुचित रीति से सम्पादित करने के लिए श्रौत-सूत्रों की सृष्टि हुई। किम्बहुना धर्म-शास्त्र की रचना हमारे आर्यों ने समाज में धर्म की स्थापना के लिए ही की थी।

लोक-साहित्य के संबध में भी ठीक यही बात कही जा सकती है। लोक-साहित्य के प्रासाद का निर्माण धर्म की सुदृढ नींव पर ही हुआ है। धर्म-जन-साहित्य का बल और सम्बल है। धर्म की प्रेरणा से ही लोक-साहित्य की सृष्टि हुई है। धर्म ने इस साहित्य के निर्माण में पृष्ठ-भूमि का काम किया है। जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है धर्म ही भारतीय जन-जीवन का प्राण है। अतः उसके साहित्य में इसका प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ना स्वाभाविक ही है। व्यक्ति और जाति में जो संबध है वही संबध लोक-साहित्य और धर्म में उपलब्ध होता है। ये दोनों अन्वय-व्यतिरेक रूप में सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। लोक-साहित्य धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है। क्या लोक-गीत, क्या लोक-गाथा और क्या लोक-कथा सभी में धर्म का

कोई न कोई तत्त्व अनुस्यूत है। दैनिक प्रयोग में आने वाली लोकोक्तियों, सूक्तियों तथा मुहावरों में भी धर्म सबधी किसी न किसी भाव या विचार का प्रकाशन हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं लोक-साहित्य के सभी अगों में धर्म उसी प्रकार से वर्तमान है जिस प्रकार से माला की प्रत्येक मनिका में सूत्र। धर्म की अनुस्यूतता के कारण ही जनता का साहित्य इतना लोक-प्रिय हो सका है। इसी हेतु इसको इतनी स्थायिता प्राप्त हो सकी है।

लोक-गीतों—विशेषकर भजन सबधी गीतों—के अध्ययन से जनता के धार्मिक विचारों का पता चलता है। इन गीतों में शिव, सूर्य, कृष्ण, राम, देवी आदि की पूजा का वर्णन उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त शीतला माता, छठीमाता, गंगा माता और तुलसी माता की प्रार्थना के भी अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। स्त्रियों के विभिन्न व्रतों के अवसर पर देवी-देवताओं की स्तुति में गीत गाये जाते हैं। जब बच्चा अथवा घर का कोई अन्य व्यक्ति रोग विशेष से पीड़ित होता है तब किसी विशेष देवता की मनौती मानी जाती है। दुष्ट ग्रहों की पूजा की जाती है। यहाँ तक कि भूत-दूत और प्रेत-पिशाच भी पूजा का भाग प्राप्त करते हैं।

लोकगीतों में जिन प्रधान देवताओं की पूजा का उल्लेख मिलता है उनमें शिव सबसे अधिक लोक-प्रिय हैं। शिव देवता के रूप में ही केवल चित्रित नहीं किये गये हैं बल्कि एक साधारण व्यक्ति के रूप में भी इनका चित्रण हुआ है। कभी वे दूल्हे के रूप में बारात लेकर विवाह करने के लिए जाते हुए दिखाई पड़ते हैं तो कभी 'पूरबी बनिजिया' को जाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

शिव की पूजा का उल्लेख अनेक गीतों में पाया जाता है। ग्रामीण स्त्रियाँ गगा स्नान करके शिवजी की प्रतिमा के ऊपर जल चढ़ाना आवश्यक धार्मिक कृत्य समझती हैं। किसी भक्त स्त्री के शिव के मन्दिर में जाने का यह वर्णन कितना सुन्दर है :—

"चल देखि आई भोला के लाल गली।
केहू चढ़ावेला अच्छत चन्दन,
केहू चढ़ावेला सुन्दर चूनरी,
राजा चढ़ावेला अच्छत चन्दन,
रानी चढ़ावेली सुन्दर चूनरी॥"

सूर्य की पूजा का प्रचार भी कुछ कम नहीं है। स्त्रियाँ प्रतिदिन स्नान करने के पश्चात् सूर्य को अर्घ देती हैं। वन्ध्या स्त्री पुत्र की प्राप्ति के

लिए सूर्य की उपासना करती है। इसके लिए वह जिस व्रत का अनुष्ठान करती है वह "छठी माता का व्रत" कहलाता है। परन्तु वास्तव में वह सूर्य का ही व्रत है। इसीलिए इसे 'सूर्य षष्ठी व्रत' भी कहते हैं। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उनमें पुत्र की प्राप्ति के लिए सूर्य की स्तुति पाई जाती है। कोई वन्ध्या स्त्री सूर्य को अर्घ देने के लिए प्रातःकाल स्नान कर जल में खड़ी है और वह भगवान् भास्कर से प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे भगवन्! मैं जल में बहुत देर से खड़ी हूँ। इस कारण मेरा पैर दुःखने लगा है और कमर में पीड़ा हो रही है। हे सूर्य! आप शीघ्र ही उदय होइए जिससे आपको अर्घ प्रदान कर सकूँ:—

"गोड़वा दुःखइले रे डाँड़वा पिरइले, कब से जे बानी हम ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआउ॥"

एक लोकगीत में भगवान् सूर्य के स्वरूप की बड़ी सुन्दर कल्पना की गई है। उन्हें मानव का रूप प्रदान किया गया है। सूर्य भगवान् खड़ाऊ के ऊपर चलते हैं। उनके ललाट के ऊपर तिलक है तथा हाथ में सोने की छड़ी विराजमान है।[1] रूपकालंकार के द्वारा सूर्य का यह वर्णन कितना सजीव है। पुत्र-प्राप्ति की कामना करने वाली कोई स्त्री सूर्य को अर्घ देने के लिए जाती हुई कहती है कि हे भगवन्! मैं अधिक पुत्र नहीं चाहती। केवल पाँच पुत्रों को प्राप्त करके ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगी।

जिस प्रकार हिन्दी के भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के बाल रूप का ही वर्णन किया है उसी प्रकार लोक-गीतों में व्रज-वल्लभ की बाल-लीलाओं का ही उल्लेख उपलब्ध होता है। कभी तो कन्हैया किसी गोपी का रास्ता रोक लेते हैं, कभी किसी दूसरी स्त्री से छेड़खानी करते हैं और कभी दही बेचने के लिए जाती हुई किसी ग्वालिन से 'गोरस' (दूध दही तथा इन्द्रिय सुख) माँगते हैं। परन्तु इतना ही नहीं, वे उसकी दही खाकर मटका फोड़ देते हैं और मना करने पर उसकी कोमल बाँह को मरोड़ देते हैं।[2]

"आरे दही मोरा खइले हो कान्हर, मटुका दिहले हो फोर।
बहियाँ मोर मुरुकवले हो, मनवा बसेला हो मोर॥"

छोटे बच्चों को जब चेचक निकलता है और वे कष्ट से पीड़ित होते हैं तब उनकी पीड़ा को दूर करने के लिए शीतला माता की पूजा की जाती

---

१ डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भा० १

२ वही

है। शीतला देवी इस रोग की अधिष्ठातृ देवता मानी जाती हैं। ऐसा विश्वास है कि इनका निवास नीम के वृक्ष पर है। अतः इस रोग से पीड़ित बालक को नीम की टहनी से पखा किया जाता है। पुत्र वत्सला माँ बालक को पीड़ा से छटपटाती देखकर आर्त स्वर से शीतला माता से प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे मेरी पूजनीया देवी! मेरे बालक की रक्षा करो। मुझे उसके प्राणों की भिक्षा दो। नीचे की इन पंक्तियों में कितनी करुणा भरी है :—

"पटुका पसारि भीखि माँगेली बालाकावा के माई।
हामारा के बालकवा भीखि दीं।
मोरी दुलारी हो मइया
हामारा के बालकावा भीखि दीं॥"

पर्वों के अवसर पर स्त्रियाँ गङ्गा-स्नान करने के लिए जाया करती हैं। इस समय वे समवेत स्वर में गगा की स्तुति में गीत गाती हैं। इन गीतों में गगा स्नान करने से शारीरिक तथा मानसिक मल के नष्ट होने की चर्चा प्रधान रूप में की गई है। सच है गगा में गोता लगाने से शरीर की ही मैल नहीं धुलती प्रत्युत मन की मैल भी नष्ट हो जाती है।

तुलसी का पौधा बड़ा पवित्र माना जाता है। स्त्रियाँ कार्तिक मास में विशेष रूप से इसकी पूजा करती हैं। प्रातःकाल स्नान कर स्त्रियाँ तुलसी माता को अर्घ देती है और सायंकाल उसकी आरती उतारती है। उनकी स्तुति में गीत भी गाती हैं।

नीची जातियों में देवी की पूजा विशेष रूप से प्रचलित है। दुःसाध (हरिजन) जाति में यदि कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है तब उसको नीराग करने के लिए कोई डाक्टर या वैद्य नहीं बुलाया जाता बल्कि उस जाति का कोई बूढ़ा व्यक्ति बुला लाया जाता है। वह देवी—दुर्गा, भगवती—की स्तुति में 'पचरा' नामक गीत गाता है और देवी का आवाहन करता है। वह पलाश की लकड़ी और घी से देवी की आराधना के लिए हवन करता है और उनसे प्रार्थना करता है कि वे रोगी को शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ प्रदान करें। इस प्रकार वह देवी को प्रसन्न कर अपने कार्य में सफलीभूत होता है।

व्रतों का विधान

स्त्रियाँ विभिन्न व्रतों का सम्पादन करती हैं। वर्ष के विभिन्न मासों में विभिन्न कार्यों की सिद्धि के लिए वे व्रतों को करती हैं। कभी प्रिय भाई की

मंगल-कामना के लिए, कभी पुत्र की प्राप्ति के लिए और कभी पति के स्वास्थ्य-लाभ के लिए वे व्रतों का विधिवत् आचरण करती हैं। कुमारी लड़कियाँ भाई की शुभ-कामना के लिए कार्तिक के महीने में 'पिड़िया' का व्रत एक मास तक बड़े प्रेम से करती हैं।

इसी प्रकार 'छठी माता' का व्रत पुत्र की प्राप्ति के लिए किया जाता है। यह वास्तव में सूर्य का ही व्रत है और इसकी चर्चा पहिले की जा चुकी है। पुत्रवती स्त्रियों द्वारा अपने पुत्र की कुशलता तथा मंगल-कामना के लिए 'जिउतिया' का व्रत सम्पादित किया जाता है। इसे संस्कृत में "जीवित्पुत्रिका' व्रत कहते हैं। पति और पुत्र के नीरोग रहने के लिए रविवार और मंगलवार को भी व्रत किया जाता है। प्रत्येक मास की एकादशी को व्रत रखना अनेक स्त्रियों का प्रायः नियम सा है। इनके अतिरिक्त 'बहुरा' और 'तीज' के व्रत भी किये जाते हैं। इन सभी व्रतों तथा पर्वों के अवसर पर लोक-गीत गाये जाते हैं।

संस्कार-संबंधी जो गीत उपलब्ध होते हैं उनमें भी धर्म के किसी अंग का उल्लेख अवश्य पाया जाता है। सोहर के गीतों में राजा दशरथ पिता के प्रतीक हैं और रामचन्द्र पुत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। होली के गीतों में राधा और कृष्ण का वर्णन प्रेमिका तथा प्रेमी के रूप में किया गया है। कहने का आशय यह है कि लोक-कवि की,काव्य-प्रतिभा धर्म को केन्द्र बिन्दु मानकर ही विकसित होती दिखाई पड़ती है। वह जिस किसी भी वस्तु का वर्णन करता है उसमें किसी देवी-देवता का स्वरूप लाकर हमारे सामने खड़ा कर देता है।

धार्मिक विश्वास

लोक-गीतों में जनता के धार्मिक विश्वासों का चित्रण उपलब्ध होता है। बात बात में ग्रामीण जन भाग्यवाद और कर्मवाद की दुहाई देते हैं। जगत् में जो विषमता दिखाई पड़ती है उसका मूल कारण कर्मों का फल बतलाया जाता है। लोक-गीतों में भाग्यवाद की अमिट रेखा दृष्टि-गोचर होती है। भाग्य की प्रबलता और कर्म की दुर्निवारता की अभिव्यक्ति इन गीतों में बड़ी मार्मिक रीति से की गई है। इनमें कर्म और भाग्य शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। कोई बाल विधवा पुत्री अपने दुःखों का वर्णन पिता से करती है। उसका पिता उत्तर देता है कि मेले में जाकर मैं तुम्हारे भाग्य को—अन्य वस्तुओं की भाँति—बदल दूँगा। इस पर वह चतुर पुत्री

उत्तर देती है कि ए पिता जी! काँसा और पीतल की वस्तुयें तो मेले में बदली जा सकती हैं परन्तु मेरा कर्म (भाग्य) कैसे बदला जा सकता है?

"बाबा काँसावा पीतर सब बदली,
करम कइसे बदली ए राम।"

इन पंक्तियों में लोक-कवि ने कर्म की दुर्निवारता की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि संसार कर्म प्रधान है और जो जैसा करता है उसका फल उसे अवश्य ही मिलता है :—

"कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करे सो तस फल चाखा॥"

गोस्वामी जी की उपर्युक्त चौपाई लोगों के जीवन का महामन्त्र है। इस भाव की प्रतिध्वनि अनेक गीतों में उपलब्ध होती है। कोई बहिन अपने भाई से ससुराल के कष्टों को निवेदन करती हुई कहती है कि ए भइया! मेरी दुःखभरी इस गाथा को तुम अपने मन ही में रखना किसी से भी मत कहना। मेरे कर्म में जैसा लिखा होगा वैसा फल मुझे तो भोगना ही पड़ेगा।[1] :—

"इ दु:ख तुम भैया मन ही मे राखेउ रे ना।
भैया करम लिखा तस भोगब रे ना॥"

शास्त्रकारों ने भी लिखा है कि :—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्

राजा गोपीचन्द के जन्म के अवसर पर ज्योतिषी आकर उनकी जन्मकुण्डली का फल बतलाते हुए कहता है कि यह योगी हो जायेगा। इस समाचार को सुनकर जब उनकी माता क्रोधित होकर कहती है कि तुम्हारे पोथी-पत्रे में आग लग जाय तब वह उत्तर देता है कि कागज को तो फाड़कर फेंका जा सकता है परन्तु कर्म को कौन मेटने वाला है? :—

"कागज होई राजा फारि के फेकौं।
कर्म न मेटो जाय हो राम॥"

लोक-कथाओं में अनेक प्रकार के धार्मिक विचार, विश्वास, रूढ़ियों और परम्पराओं की उपलब्धि होती है। लोक-गीतों में कर्मवाद की चर्चा

---

१ त्रिपाठी : ग्रामगीत, पृ० २४७

अभी की जा चुकी है। लोक कथाओं में भाग्यवाद की अमिट छाप दिखायी पड़ती है। मानिकचन्द्र की कथा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। दुर्दिन के चक्कर में पड़कर मानिकचन्द्र नामक व्यक्ति अपने राज्य से च्युत होकर भड़भूजा का काम करने लगता है। परन्तु फिर उसके दिन पलटते हैं और वह राज्य को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार लोक-कथाकार ने भाग्य के परिवर्तन का चित्रण बड़ी सुन्दर रीति से इसमें किया है।

विश्व के मंगल-कामना की भावना भी इन कथाओं में उपलब्ध होती है। लोक-कहानियाँ सदा सुखान्त होती हैं दुःखान्त नहीं। कथावस्तु के भीतर कितनी ही दुःखान्त घटनायें क्यों न वर्णित हों परन्तु उन सबका पर्यवसान सुख में ही होता है। लोक-कथाओं का अन्त सदा इस प्रकार होता है :—"जैसे अमुक व्यक्ति का कल्याण हुआ वैसे ही ससार के सभी लोगों का मगल हो।" सार्वजनीन मंगल की यह भावना उस धर्म-बुद्धि से प्रेरित होती है जो ससार में सबका कल्याण चाहती है। लोक कथाओं में वर्णित 'सर्वजनहिताय' की यह कामना हमें संस्कृत की इस सूक्ति का स्मरण दिलाती है जिसमें मानव मात्र के सुख की घोषणा की गई है।

"सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु;
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चित् दु खमाप्नुयात् ॥

लोक-कथाओं में सत्य की विजय और असत्य की पराजय दिखलाई गई है। इससे ज्ञात होता है कि लोक-कथाकार 'सत्यमेव जयते नानृतम्' के शाश्वतिक सिद्धान्त को स्वीकार करता है। इन कथाओं के अध्ययन से पाठकों के हृदय पर धर्म का प्रभुत्व स्थापित होता है।

जन साधारण अनेक प्राचीन रूढ़ियों, परम्पराओं तथा विश्वासों पर अमिट आस्था रखता है। सच तो यह है कि उसका समस्त जीवन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से घिरा हुआ है। इन विभिन्न विश्वासों और रूढ़ियों का वर्णन लोक-कथाओं में पाया जाता है।

देहाती कहावतों और मुहावरों में भी धर्म के अनेक तत्त्व उपलब्ध हो सकते हैं। किम्बहुना बच्चों के निरर्थक कहे जानेवाले गीतों में भी भगवान् से जल की वर्षा करने के लिए प्रार्थना की गई है "राम जी राम जी पानी द, घोड़वा पियासल बा" इस पंक्ति के अर्थ को न समझता हुआ भी, इसकी

आवृत्ति करके वाला बालक, भगवान् से संसार के कल्याण के लिए जल देने की प्रार्थना करता है।

गत पृष्ठों में यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि लोक-साहित्य के प्रत्येक अंग में धर्म अनुस्यूत है। जिस प्रकार धर्म की जिज्ञासा वृत्ति ने भारतीय दर्शन की, सृष्टि की उसी प्रकार धर्म के प्रति हमारी दृढ़ भक्ति से लोक-साहित्य को केवल प्रेरणा ही नहीं प्राप्त हुई प्रत्युत उसने आधार शिला का कार्य किया है। हमारी धार्मिक वृत्ति के फलस्वरूप ही गंगा माता, तुलसी माता और शीतला माता के गीतों की रचना संभव हो सकी है। इसी वृत्ति ने भजन तथा निर्गुन जैसे भक्ति-भाव प्रधान गीतों को जन्म दिया है। लोक गीतों तथा गाथाओं में सतीत्व, सदाचार तथा सत्य के प्रति जो प्रगाढ़ दृढता की झलक दिखाई पड़ती है उसकी सतत प्रेरणा धर्म से ही मिली है। इन गीतों में अनेक विषम परिस्थितियों में पड़कर भी सत् आचरण से विचलित न होने की जो अलौकिक शक्ति दृष्टि गोचर होती है उसका मूल स्रोत धर्म ही है। भजन और निर्गुन के गीतों में भक्ति की जो मन्दाकिनी अमन्द गति से प्रवाहित होती है उसका उद्गम-स्थान धर्म ही है। जिस प्रकार प्राचीन भारतीय तक्षण कलाकारों ने धार्मिक भावनाओं से प्रभावित होकर पाषाण की प्रतिमाओं में जान डाल दी उसी प्रकार इन कुशल लोक-कवियों ने भी भक्ति के आवेश में आकर जो रचना की है उससे निष्प्राण शब्दों में प्राण का संचार हो गया है।

लोक-कथाओं में विश्वबन्धुत्व की भावना उपलब्ध होती है। जगत् में समस्त मानव की मंगल-कामना ही इन लोक-कथाओं का एक मात्र उद्देश्य है। क्या ऐसी दिव्य तथा स्वर्गीय कामना धर्म की भावना से अनुप्राणित नहीं है? क्या ऐसे उत्तम विचारों का मन में उदय होना धर्म की प्रेरणा के बिना संभव है? कदापि नहीं। सच तो यह है कि धर्म की आधार शिला पर ही लोक-साहित्य की प्रतिष्ठा हुई है। जनता के इस लोक-प्रिय साहित्य में वर्णित विधि-विधानों, रीति-रिवाजों, विश्वास परम्पराओं तथा रहन-सहन का अनुशीलन किया जाय तो इससे ज्ञात होगा है कि उनको धर्म से कितनी प्रेरणा प्राप्त हुई है, कितना बल मिला है। किम्बहुना यदि लोक साहित्य के निर्माण में धर्म का आधार न प्राप्त होता तो उसका इतना सजीव, स्वस्थ तथा सबल होना संभव न था।

उपसंहार

गत पृष्ठों में लोक-साहित्य के विभिन्न अंगों की विशेषताओं को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। लोक-साहित्य की महत्ता का ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दृष्टियों से प्रतिपादन विगत अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है। भाषा-शास्त्र के अनुसन्धान कर्ताओं के लिए लोक-साहित्य में उपलब्ध शब्दावली किस प्रकार इसे वैदिक संस्कृत से जोड़ने वाली कड़ी का काम करती है यह भी दिखलाया गया है।

लोक-साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है जिसमें जनता-जनार्दन का अखिल तथा विराट् स्वरूप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है। लोक संस्कृति का जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिम्ब इस साहित्य में उपलब्ध होता है उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ? जन-साहित्य की निर्मल निर्झरिणी में अवगाहन कर केवल शरीर ही पवित्र नहीं होता प्रत्युत आत्मा भी पूत और पावन बन जाती है। इसमें जिस समाज का चित्रण किया है वह स्वस्थ, सदाचारी एवं धर्मभीरू है, जिस नीति की प्रतिष्ठा की गई है वह कल्याण मार्ग की ओर ले जाने वाली है, वह मगलमय पथ की प्रदर्शिका है; जिस धर्म का वर्णन किया गया है वह संसार में शान्ति तथा प्रेम का उपदेश देता है, जिस आर्थिक सघटन का उल्लेख हुआ है वह पीड़ित तथा दलित मानवता के शोषण के ऊपर अवलम्बित नहीं है, जिस राजनीति का दिग्दर्शन कराया गया है वह दलीय संघर्ष और विषाक्त वातावरण से कोसों दूर है। धर्म, समाज और नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चाँद लगा देता है।

लोक-साहित्य में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का बड़ा ही सुन्दर सामञ्जस्य उपलब्ध होता है। लोकगीतों में जहाँ भाई-बहन, माता-पुत्री और पति-पत्नी के आदर्श चरित्र का चित्रण किया गया है वहाँ लोक-कवि यथार्थवाद के वर्णन की ओर भी जागरूक दिखायी पड़ता है। ननद-भावज, सास-बहू और सपत्नियों के शाश्वतिक विरोध के सम्यक् विवेचन करने में उसने कुछ उठा नहीं रखा है। लोक-गीतों में सुखी समाज के धन, धान्य, ऐश्वर्य और विभूति के वर्णन के साथ ही साथ कठिन गरीबी, अकाल तथा

आवृत्ति करके वाला बालक, भगवान् से संसार के कल्याण के लिए जल देने की प्रार्थना करता है।

गत पृष्ठों में यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि लोक-साहित्य के प्रत्येक अंग में धर्म अनुस्यूत है। जिस प्रकार धर्म की जिज्ञासा वृत्ति ने भारतीय दर्शन की, सृष्टि की उसी प्रकार धर्म के प्रति हमारी दृढ़ भक्ति से लोक-साहित्य को केवल प्रेरणा ही नहीं प्राप्त हुई प्रत्युत उसने आधार शिला का कार्य किया है। हमारी धार्मिक वृत्ति के फलस्वरूप ही गंगा माता, तुलसी माता और शीतला माता के गीतों की रचना सभव हो सकी है। इसी वृत्ति ने भजन तथा निर्गुन जैसे भक्ति-भाव प्रधान गीतों को जन्म दिया है। लोक गीतों तथा गाथाओं में सतीत्व, सदाचार तथा सत्य के प्रति जो प्रगाढ़ दृढ़ता की झलक दिखाई पड़ती है उसकी सतत प्रेरणा धर्म से ही मिली है। इन गीतों में अनेक विषम परिस्थितियों में पड़कर भी सत् आचरण से विचलित न होने की जो अलौकिक शक्ति दृष्टि गोचर होती है उसका मूल स्रोत धर्म ही है। भजन और निर्गुन के गीतों में भक्ति की जो मन्दाकिनी अमन्द गति से प्रवाहित होती है उसका उद्गम-स्थान धर्म ही है। जिस प्रकार प्राचीन भारतीय तक्षण कलाकारों ने धार्मिक भावनाओं से प्रभावित होकर पाषाण की प्रतिमाओं में जान डाल दी उसी प्रकार इन कुशल लोक-कवियों ने भी भक्ति के आवेश में आकर जो रचना की है उससे निष्प्राण शब्दों में प्राण का संचार हो गया है।

लोक-कथाओं में विश्वबन्धुत्व की भावना उपलब्ध होती है। जगत् में समस्त मानव की मंगल-कामना ही इन लोक-कथाओं का एक मात्र उद्देश्य है। क्या ऐसी दिव्य तथा स्वर्गीय कामना धर्म की भावना से अनुप्राणित नहीं है? क्या ऐसे उत्तम विचारों का मन में उदय होना धर्म की प्रेरणा के बिना सभव है? कदापि नहीं। सच तो यह है कि धर्म की आधार शिला पर ही लोक-साहित्य की प्रतिष्ठा हुई है। जनता के इस लोक-प्रिय साहित्य में वर्णित विधि-विधानों, रीति-रिवाजों, विश्वास परम्पराओं तथा रहन-सहन का अनुशीलन किया जाय तो इससे ज्ञात होगा है कि उनको धर्म से कितनी प्रेरणा प्राप्त हुई है, कितना बल मिला है। किम्बहुना यदि लोक साहित्य के निर्माण में धर्म का आधार न प्राप्त होता तो उसका इतना सजीव, स्वस्थ तथा सबल होना सभव न था।

उपसंहार

गत पृष्ठों में लोक-साहित्य के विभिन्न अंगों की विशेषताओं को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। लोक-साहित्य की महत्ता का ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दृष्टियों से प्रतिपादन विगत अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है। भाषा-शास्त्र के अनुसन्धान कर्ताओं के लिए लोक-साहित्य में उपलब्ध शब्दावली किस प्रकार इसे वैदिक संस्कृत से जोड़ने वाली कड़ी का काम करती है यह भी दिखलाया गया है।

लोक-साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है जिसमें जनता-जनार्दन का अखिल तथा विराट् स्वरुप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है। लोक संस्कृति का जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिम्ब इस साहित्य में उपलब्ध होता है उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ? जन-साहित्य की निर्मल निर्भरिणी में अवगाहन कर केवल शरीर ही पवित्र नहीं होता प्रत्युत आत्मा भी पूत और पावन बन जाती है। इसमें जिस समाज का चित्रण किया है वह स्वस्थ, सदाचारी एवं धर्मभीरू है, जिस नीति की प्रतिष्ठा की गई है वह कल्याण मार्ग की ओर ले जाने वाली है, वह मंगलमय पथ की प्रदर्शिका है, जिस धर्म का वर्णन किया गया है वह संसार में शान्ति तथा प्रेम का उपदेश देता है, जिस आर्थिक संघटन का उल्लेख हुआ है वह पीड़ित तथा दलित मानवता के शोषण के ऊपर अवलम्बित नहीं है, जिस राजनीति का दिग्दर्शन कराया गया है वह दलीय संघर्ष और विषाक्त वातावरण से कोसों दूर है। धर्म, समाज और नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चाँद लगा देता है।

लोक-साहित्य में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का बड़ा ही सुन्दर सामञ्जस्य उपलब्ध होता है। लोकगीतों में जहाँ भाई-बहन, माता-पुत्री और पति-पत्नी के आदर्श चरित्र का चित्रण किया गया है वहाँ लोक-कवि यथार्थवाद के वर्णन की ओर भी जागरूक दिखायी पड़ता है। ननद-भावज, सास-बहू और सपत्नियों के शाश्वतिक विरोध के सम्यक् विवेचन करने में उसने कुछ उठा नहीं रखा है। लोक-गीतों में सुखी समाज के धन, धान्य, ऐश्वर्य और विभूति के वर्णन के साथ ही साथ कठिन गरीबी, अकाल तथा

घोर दरिद्रता का दृश्य भी दिखाई पड़ता है। जो काव्य मानव जीवन के केवल एक ही पहलू का वर्णन उपस्थित करता है वह सच्चा काव्य नहीं कहा जा सकता। जिस काव्य में जन-जीवन की आशा निराशा, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आदि सभी भावनाओं का सजीव चित्रण हो वही सच्चा, अमर और लोक-प्रतिनिधि काव्य है। इस दृष्टि से लोक-साहित्य अमर साहित्य की कोटि में रखा जा सकता है।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक-गीतों के महत्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि "ग्राम-गीतों का महत्त्व उनके काव्य-सौन्दर्य तक ही सीमित नहा है। इनका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है—एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूब गई है या गलत समझ ली गयी है। × × × × × × ग्राम गीत इस (आर्यों के आगमन के पूर्व की) सभ्यता के वेद—श्रुति—हैं। वेद भी तो अपने आरंभिक युग में 'श्रुति' कहलाते थे। वेद भी आर्यों की महान् जाति के गीत थे और ग्राम-गीतों की भाँति सुन सुन कर याद किये जाते थे। सौभाग्य वश वेद ने बाद में श्रुति से उतरकर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्राम-गीत अब भी 'श्रुति' ही हैं। जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है उसी प्रकार ग्राम-गीतों द्वारा आर्य-पूर्व सभ्यता का ज्ञान होता है। ईंट-पत्थर के प्रेमी विद्वान् यदि धृष्टता न समझें तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्राम-गीतों का महत्त्व मोहेन्जो-दाड़ो से भी कहीं अधिक हैं। मोहेन्जोदाड़ो सरीखे भग्न स्तूप ग्राम गीतों के भाष्य का काम दे सकते हैं[1]।"

आचार्य द्विवेदी जी ने लोक-गीतों के सम्बन्ध में उपर्युक्त विचार प्रकट किये हैं इनसे इनकी महत्ता पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। सुप्रसिद्ध विद्वान् राल्फ विलियन्स ने इनके महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए ठीक ही लिखा है कि "लोक-गीत न पुराना होता है और न नया। वह तो उस जगली पेड़ की तरह होता है जिसकी जड़ें अतीत की गहराइयों में घुसी होती हैं परन्तु जिसमें नित नयी शाखाएँ, नयी पत्तियाँ और नये फल निकलते रहते हैं।"[2]

---

१ छत्तीसगढ़ी लोक-गीतों का परिचय

२ श्रीकृष्णदास : लो० गी० सा० व्या० पृ० २१ में उद्धृत

लोक-गीत धरती के गीत हैं, ये जीवन के गीत हैं, ये विजय के गीत हैं, ये मंगल के गीत हैं और ये हमारी आशा के गीत हैं। जनता के द्वारा रचे गये जनता के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले ये गीत जनता की ही सम्पत्ति हैं। इसी कारण सुप्रसिद्ध विद्वान् ग्रिम ने लोक गीतों की परिभाषा बतलाते हुए इसे 'जनता का, जनता के लिए रचा गया जन काव्य' कहा है।[१]"

लोक गीतों की स्वाभाविकता, अकृत्रिमता और सरलता के सम्बन्ध में फ्रान्सिस गूमर का कथन कितना समीचीन है कि "लोकगाथाओं का महत्त्व केवल इसी बात में नहीं है कि उनमें अकृत्रिम काव्य-भावना उपलब्ध होती है। वे परम्परा की भाषा में ही अपनी अभिव्यक्ति नहीं करते प्रत्युत जन समूह की वाणी द्वारा प्रकाशन करते हैं। उनमें किसी प्रकार भी गोपनीयता नहीं पायी जाती। जो वस्तु जैसी है उसका याथातथ्य रूप में वे वर्णन करते हैं। वे स्वतन्त्र हैं तथा खुली हवा की भाँति ताजे हैं। वायु और सूर्य का प्रकाश उनमें खेल करता है।[२]"

भारतीय लोक-कथाओं का महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। डा० डी० सी० सेन ने अपनी पुस्तक में यह दिखलाने का प्रयास किया है कि बंगाल की बहुत सी लोक-कथाएँ 'इसाप्स फेबुल्स' में वर्णित कहानियों से समानता रखती हैं।[3] लोक-कथाओं की परम्परा बड़ी प्राचीन है जिसका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है। भारतीय लोक-कथाएँ वृहत्कथा, कथा-सरित्सागर तथा जातक कथाओं की उत्तराधिकारिणी हैं। विद्वानों ने इस

---

1. "A ballad is the poetry of the people by the people for the people"

गूमर द्वारा उद्धृत

2 The abiding value of the ballads is that they give a hint of primitive and unspoiled poetic sensation They speak not only in the language of tradition, but also with the voice of the multitude There is nothing subtle in their working and they appeal to things as they are From one vice of modern literature they are free. ××× They can tell a good tale They are fresh with the open air Wind and sunshine play through them"

F. B Gummere : The Popular Ballad पृ० ४१७

३. डा० डी० सी० सेन : फोक लिट्रेचर ऑव् बंगाल

सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि भारत ही संसार के कथा-साहित्य का स्रोत है। भारतीय कथाएँ संसार के विभिन्न देशों में विभिन्न रूप में पायी जाती हैं। यदि अनुसन्धान किया जाय तो पता लगाया जा सकता है कि भारतीय लोक-कथाओं का प्रसार कहाँ और कैसे हुआ? वे किस देश में किस रूप में आज प्रचलित हैं इसका अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक सिद्ध होगा। कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए लोक-कथाओं का अनुसन्धान महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों में समाज का चित्रण उपलब्ध होता है। मृत्यु गीतों के अध्ययन से विभिन्न प्रथाओं से परिचय प्राप्त होता है। पालने के गीत तथा बालकों के खेल सम्बन्धी गीतों में बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों की शृङ्खला की कड़िया छिपी हैं। किम्बहुना, गालियों में भी अनेक रीति-रिवाजों और प्रथाओं की ओर संकेत हुआ है। लोक-साहित्य के इन सभी अंगों तथा उपांगो का अध्ययन और मनन समीचीन ही नहीं उपादेय भी है।

लोक साहित्य जनता जनार्दन की सम्पत्ति है। यह भगवान् के विराट् स्वरूप की ही भाँति विराट् और अनन्त है। संसार के सभी सभ्य देशों में लोक साहित्य के संकलन, सम्पादन और प्रकाशन के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना की गई है। स्वतन्त्र भारत में लोक साहित्य की समुन्नति और संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। अतः आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास है कि हमारे देश के नवयुवक इसके सम्यक् संकलन और सम्पादन में जुट जायेंगे तथा काल के गाल में जाती हुई लोक-संस्कृति तथा लोक-साहित्य की रक्षा प्राण पन से करेगें। लोक साहित्य की रक्षा करना हमारा सामान्य कर्तव्य ही नहीं प्रत्युत राष्ट्रीय धर्म भी है।

परिशिष्ट (क)

भारत में लोक-संस्कृति (फोकलोर) सम्बन्धी अनुसन्धान का विवेचन*

किसी देश की जनता के धार्मिक विश्वासों तथा सामाजिक प्रथाओं के अध्ययन के लिए लोक संस्कृति (फोकलोर) की जानकारी अत्यत आवश्यक है। यूरोप के प्रायः प्रत्येक देश में 'फोकलोर सोसाइटी' की स्थापना की गई हैं जिनका उद्देश्य उस देश के लोक-साहित्य तथा लोक-संस्कृति का संकलन, संरक्षण तथा प्रकाशन है। फिनलैण्ड जैसे छोटे से देश में भी इस दिशा में प्रचुर कार्य किया गया है। अमेरिका के प्रायः प्रत्येक राज्य (State) में इस प्रकार की समितियाँ स्थापित हैं जो वहाँ की लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयत्न कर रही हैं। इस सम्बन्ध में 'अमेरिकन फोकलोर सोसाइटी' का नाम उल्लेखनीय है जिसने लगभग ७०—८० वर्षों से लोक-साहित्य-सेवियों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देने के अतिरिक्त फोकलोर सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री को प्रकाशित किया है। परन्तु भारतवर्ष में यह कार्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित अवश्य हुआ है लेकिन अखिल भारतीय संगठन के रूप में अभी तक किसी संस्था की स्थापना नहीं हुई है जो इस कार्य को सुचारु रूप से कर सके।

भारतवर्ष में लोक-संस्कृति (फोकलोर) सम्बन्धी सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। इस महान् देश में अनेक सभ्यताओं तथा संस्कृतियों का संमिलन हुआ है। उदाहरण के लिए आर्य तथा द्रविड़ वंश (Race) के लोग इस देश में पाये जाते हैं। मातृ-प्रधान तथा पितृ-प्रधान कुल भी यहाँ दिखायी पड़ते हैं। जहाँ भारत के समस्त राज्यों में पितृप्रधान कुल की

---

* यह लेख अमेरिका की इण्डियाना यूनिवर्सिटी, (ब्लूमिंग्टन) की 'मिडवेस्ट फोक्लोर' नामक सुप्रसिद्ध त्रैमासिक शोध पत्रिका के भाग ४ संख्या ४ (१६५४ ई०) में 'A General Survey of Folklore Research in India' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

सत्ता है वहाँ केरल राज्य के मालाबार नामक स्थान में आज भी मातृ-प्रधान वंश-परम्परा चली आ रही है। इस देश में एक पति की प्रथा सम्मानित तथा प्रतिष्ठित मानी जाती है परन्तु उत्तर प्रदेश के देहरादून जिले के जौनसार-भावर स्थान में बहु-पतित्व की प्रथा आज भी पायी जाती है। यही कारण है कि यहाँ जनता की संस्कृति के अनेक स्तर पाये जाते हैं तथा एक जाति या वंश की धार्मिक परम्परा, रीति-रिवाज, खान-पान, और आचार-व्यवहार दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

भारत में अनेक पार्वत्य तथा जंगली जातियाँ भी निवास करती हैं जो सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था की सूचना देती हैं। उदाहरण के लिए आसाम राज्य में नागा, अबोर, मिशमी, खसिया और दफला आदि अनेक जातियाँ पाई जाती हैं जिनकी संस्कृति आर्य जातियों से सर्वथा पृथक् है। कुछ वर्ष पहले नागा लोग जंगलों में मनुष्यों का भी शिकार किया करते थे। कहने का आशय यह है कि इस देश में लोक संस्कृति की अनन्त सामग्री उपलब्ध होती है जिसका अध्ययन मानव-विज्ञान-वेत्ता के लिए अत्यन्त लाभदायक है।

(१)

भारतवर्ष में लोक-संस्कृति के अध्ययन तथा अनुसन्धान का समस्त श्रेय उन अंग्रेज पदाधिकारियों को प्राप्त है जो इस देश में शासन करने के लिए सिविलियन के रूप में आये थे। ये अंग्रेज बड़े ही गुणग्राही तथा विद्वान् थे। इनका ध्यान यहाँ बिखरी हुई लोक-संस्कृति-सम्बन्धी सामग्री की ओर गया और इन्होंने तन, मन, धन से इनका संकलन तथा सम्पादन किया।

कर्नल टॉड संभवतः सबसे पहिला अंग्रेज सिविलियन था जिसको इस देश में फोकलोर सम्बन्धी अनुसन्धान तथा संग्रह करने का श्रेय प्राप्त है। यह राजस्थान के वीरतापूर्ण इतिहास से बहुत प्रभावित था। यह राजस्थान के अनेक राज्यों में 'रेजिडेण्ट' का कार्य करता रहा। अतः इसे यहाँ की लोक संस्कृति से परिचय प्राप्त करने का ~~अधिक अवसर~~ मिला था। इसने "एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑव् राजस्थान" नामक अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में राजपूतों का इतिहास प्रस्तुत करने के अतिरिक्त वहाँ के लोगों के धार्मिक विश्वास, रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेश-भूषा तथा खान-पान पर भी प्रचुर प्रकाश डाला है।

एल० पी० टेसीटोरी (Tessitory) इटालियन विद्वान् था जिसने राजस्थान की डिंगल भाषा तथा लोक-साहित्य का अध्ययन किया था। इसने 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' पत्रिका में अपने अनुसन्धानों के सम्बन्ध में अनेक लेख प्रकाशित किये। इसने राजस्थान के चारण गीतों तथा लोक-गीतों का सग्रह कर उन्हें काल-कवलित होने से बचाया।

गत शताब्दी के अन्तिम दशक में बहुत से विदेशी मिशनरी तथा सिविलियन लोगों ने पंजाब के फोकलोर के संग्रह में दिलचस्पी दिखलायी। स्विनर्टन ने पंजाब की शृङ्गार तथा वीररस पूर्ण कहानियों का संग्रह "रोमेन्टिक टेल्स फ्राम दि पजाब" में किया। पजाब की 'राजा रसालू' की लोकप्रिय गाथा के विभिन्न पाठों का इन्होंने सग्रह भी किया। सर आर० सी० टेम्पुल—जो इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य थे—ने पजाब की अर्द्ध-ऐतिहासिक कथाओं का सकलन किया। सी० एफ० ओसबर्न ने पंजाबी लोक गीतों तथा लोकक्तियों का सग्रह "पंजाबी लिरिक्स एण्ड प्रोवर्ब्स" में किया है। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एफ० ए० स्टील ने "दि टेल्स आफ दि पंजाब" प्रकाशित कर लोक-साहित्य के प्रेमियों का बड़ा उपकार किया। सर आरेल स्टाइन ने काश्मीर की लोक कहानियों का एक सुन्दर संग्रह प्रकाशित किया है जिसे इन्होंने वहाँ के लोगों से सुनकर लिपिबद्ध किया था। यह संग्रह "हातिम्स टेल्स" के नाम से अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित हुआ है।

सर जार्ज ग्रियर्सन सुप्रसिद्ध भाषावेत्ता थे। इनकी अध्यक्षता में भारतीय भाषाओं का सर्वे केन्द्रीय सरकार के द्वारा कराया गया था जिससे इनकी गंभीर विद्वता का परिचय मिलता है। संभवतः डा० ग्रियर्सन पहले अंग्रेज थे जिन्होंने हिन्दी लोकगीतों के महत्व को समझा। आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व हिन्दी लोक गीतों का सग्रह कर इंगलैंड की 'रायल एसियाटिक सोसाइटी' की पत्रिका और भारत की 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' में प्रकाशित किया। इन्होंने भोजपुरी तथा बिहारी लोक गीतों का संकलन अंग्रेजी अनुवाद और टिप्पणियों के साथ प्रकाशित किया। इन्होंने गोपीचन्द की ऐतिहासिकता को सिद्ध किया और गोपीचन्द के गीत के विभिन्न पाठों को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया। इसी प्रकार से इन्होंने 'बुन्देलखण्ड' के सुप्रसिद्ध वीर आल्हा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में प्रचलित बहुत सी भ्रान्त धारणाओं का निराकरण किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने लेखों तथा व्याख्यानों द्वारा भारतीय फोकलोर का प्रचार किया। इन्होंने विभिन्न

पत्र पत्रिकाओं में इस संबंध में अनेक लेखों को लिखा है जिनकी सूची इस प्रकार है :—

(१) सम बिहारी फोक सांङ्ग्स
(ज० रा० ए० सो० भाग १६, १८८४)

(२) सम भोजपुरी फोक सांङ्ग्स
(ज० रा० ए० सो० भाग १८, २ ८८६)

(३) फोकलोर फ्राम इस्टर्न गोरखपुर
(ज० रा० ए० सो० आफ बंगाल भाग ५२, १८८३)

(४) टू वर्शन्स ऑव् दि स्टोरी आफ गोपीचन्द्र
(ज० रा० ए० सो० बं० भाग ५४, १८८५)

(५) दि सांङ्ग ऑव् विजयमल
(ज० रा० ए० सो० बं० भाग ५३, १८८४)

(६) दि सांग ऑव् आल्हाज् मैरेज
(इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग १४, १८८५)

(७) ए समरी ऑव् दि आल्हा खण्ड
(इण्डियन एन्टीक्वेरी भाग १४, १८८५)

(८) सेलेक्टेड् स्पेसीमेन्स ऑव् दि बिहारी लैंगवेज भाग २—
दि भोजपुरी डाइलेक्ट-दि गीत नैकवा बनजारा
(जेड० डी० एम० जी० भाग ४३, १८८६)

(९) दि पापुलर लिट्रेचर ऑव् नार्दन इण्डिया
(बु० स्कू० ओ० स्ट० भाग १, १६२०)

(१०) दि सांङ्ग ऑव् मानिकचन्द्र
(ज० रा० ए० सो० बं० भाग ४३, १८७८)

इसके अतिरिक्त डा० ग्रियर्सन ने "बिहार पीजेन्ट लाइफ" ग्रन्थ में ग्रामीण-परिभाषिक-पदावली का संग्रह किया है जो बहुत ही उपयोगी है।

भारतीय फोकलोर के वैज्ञानिक रीति से अनुसन्धान का श्रेय विलियम क्रुक को प्राप्त है जिन्होंने "एन इन्ट्रोडक्शन टू दि पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर ऑव् नार्दर्न इण्डिया" नामक ग्रन्थ में इस विषय का गम्भीर विवेचन किया है। इस ग्रन्थ से इनकी अगाध विद्वत्ता का पता चलता है। क्रुक की पुस्तक अपने विषय का प्रमाणभूत पुस्तक है तथा टेलर एवं फ्रेज़र जैसे सुप्रसिद्ध मानवशास्त्र-वेत्ताओं ने इसे प्रमाण कोटि में स्वीकार किया है। क्रुक ने कई वर्षों तक 'नार्थ इण्डियन नोट्स एण्ड क्वेरीज़' नामक पत्रिका

का प्रकाशन किया था जिसमें भारतीय फोकलोर की बहुमूल्य सामग्री निहित है। इन्होंने उत्तर प्रदेश के विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में 'ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑव् नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्स' पुस्तक में अनेक उपयोगी तथ्यों का उल्लेख किया है। क्रुक के उपर्युक्त ग्रन्थ आज भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

शेरिफ उत्तर प्रदेश के सिविलियन थे जिन्होंने कुछ हिन्दी लोक गीतों का अनुवाद अंग्रेजी पद्य में किया है।

(२)

इस विषय के प्रतिपादन की सुविधा इसी में होगी कि हम प्रत्येक राज्य में होने वाले फोकलोर-अनुसंधान पर क्रमशः प्रकाश डालें। भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश एक बड़ा राज्य होने के नाते सरल रीति से ही महत्त्व पूर्ण स्थान ग्रहण कर लेता है। यहाँ की जन भाषा हिन्दी है जो सम्पूर्ण देश की राष्ट्रभाषा है। हिन्दी की बहुत सी बोलियाँ है जो प्रमुखतः ये है :—
१. ब्रजभाषा २ अवधी ३ बुन्देल-खण्डी ४. छत्तीस गढ़ी ५. भोजपुरी।

कुछ वर्षों पूर्व ब्रजभाषा के प्रेमियों ने एक 'साहित्य अकादमी' ब्रजभाषा के पुनरुत्थान एव लोक साहित्य को प्रश्रय प्रदान करने के लिये स्थापित की।

ब्रज-साहित्य-मण्डल की स्थापना सन् १९४० में की गई। यह संस्था ब्रज के लोक-साहित्य और सस्कृति की रक्षा कर रही है। इसकी देख-रेख में बहुत से विद्वान् लोक-गीत, लोक-कथाओं और लोक-गाथाओं का संग्रह कर रहे हैं। डॉ० सत्येन्द्र ने अपनी थिसिस 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' में ब्रज के मौखिक साहित्य का अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया है। पं० शिवसहाय चतुर्वेदी ने 'ब्रज की कहानियाँ', 'गौने की विदा' और 'पापण नगरी' में ब्रज की कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया है। ब्रज-साहित्य-मण्डल के द्वारा 'ब्रज भारती' का प्रकाशन भी हो रहा है। कुछ वर्ष पूर्व 'हिन्दी जनपदीय परिषद्' के तत्वावधान में वाराणसी से 'जनपद' नामक पत्र भी प्रकाशित होता था। परन्तु किन्ही कारणों से यह पत्रिका आज कल बन्द हो गई है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० डी० एन० मजुमदार ने 'लोक संस्कृति परिषद्' की स्थापना की है। इस संस्था की ओर से 'इस्टर्न एन्थ्रोपोलाजिस्ट' नामक त्रैमासिक शोध पत्रिका का प्रकाशन होता है। 'प्राच्य मानव वैज्ञानिक' के नाम से इसका हिन्दी रूपान्तर भी प्रकाशित होता है।

पत्र पत्रिकाओं में इस संबंध में अनेक लेखों को लिखा है जिनको सूची इस प्रकार है :—

(१) सम विहारी फोक साङ्ग्स
(ज० रा० ए० सो० भाग १६, १८८४)

(२) सम भोजपुरी फोक साङ्ग्स
(ज० रा० ए० सो० भाग १८,१८८६)

(३) फोकलोर फ्राम इस्टर्न गोरखपुर
(ज० रा० ए० सो० आफ बंगाल भाग ५२, १८८३)

(४) टू वर्शन्स ऑव् दि स्टोरी आफ गोपीचन्द्र
(ज० रा० ए० सो० ब० भाग ५४, १८८५)

(५) दि साङ्ग ऑव् विजयमल
(ज० रा० ए० सो० ब० भाग ५३, १८८४)

(६) दि सांग ऑव् आल्हाज् मैरेज
(इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग १४, १८८५)

(७) ए समरी ऑव् दि आल्हा खण्ड
(इण्डियन एन्टीक्वेरी भाग १४, १८८५)

(८) सेलेक्टेड् स्पेसीमेन्स ऑव् दि विहारी लैंगवेज भाग २—
दि भोजपुरी डाइलेक्ट-दि गीत नैकवा बनजारा
(जे० डी० एम० जी० भाग ४३, १८८६)

(९) दि पापुलर लिट्रेचर ऑव् नार्दन इण्डिया
(बु० स्कू० ओ० स्ट० भाग १, १९२०)

(१०) दि साङ्ग ऑव् मानिकचन्द्र
(ज० रा० ए० सो० ब० भाग १३, १८७८)

इसके अतिरिक्त डा० ग्रियर्सन ने "विहार पीजेन्ट लाइफ" ग्रन्थ में ग्रामीण-परिभाषिक-पदावली का संग्रह किया है जो बहुत ही उपयोगी है।

भारतीय फोकलोर के वैज्ञानिक रीति से अनुसन्धान का श्रेय विलियम क्रुक को प्राप्त है जिन्होंने "एन इन्ट्रोडक्शन टू दि पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर ऑव् नार्दर्न इण्डिया" नामक ग्रन्थ में इस विषय का गंभीर विवेचन किया है। इस ग्रन्थ से इनकी अगाध विद्वत्ता का पता चलता है। क्रुक की पुस्तक अपने विषय का प्रमाणभूत पुस्तक है तथा टेलर एवं फ्रेज़र जैसे सुप्रसिद्ध मानवशास्त्र-वेत्ताओं ने इसे प्रमाण कोटि में स्वीकार किया है। क्रुक ने कई वर्षों तक 'नार्थ इण्डियन नोट्स एण्ड क्वेरीज़' नामक पत्रिका

का प्रकाशन किया था जिसमें भारतीय फोकलोर की बहुमूल्य सामग्री निहित है। इन्होंने उत्तर प्रदेश के विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में 'ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑव् नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्स' पुस्तक में अनेक उपयोगी तथ्यों का उल्लेख किया है। क्रुक के उपर्युक्त ग्रन्थ आज भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

शेरिफ उत्तर प्रदेश के सिविलियन थे जिन्होंने कुछ हिन्दी लोक गीतों का अनुवाद अंग्रेजी पद्य में किया है।

(२)

इस विषय के प्रतिपादन की सुविधा इसी में होगी कि हम प्रत्येक राज्य में होने वाले फोक्लोर-अनुसंधान पर क्रमशः प्रकाश डालें। भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश एक बड़ा राज्य होने के नाते सरल रीति से ही महत्त्व पूर्ण स्थान ग्रहण कर लेता है। यहाँ की जन भाषा हिन्दी है जो सम्पूर्ण देश की राष्ट्रभाषा है। हिन्दी की बहुत सी बोलियाँ है जो प्रमुखतः ये है :— १. ब्रजभाषा २ अवधी ३ बुन्देल-खण्डी ४. छत्तीस गढ़ी ५. भोजपुरी।

कुछ वर्षों पूर्व ब्रजभाषा के प्रेमियों ने एक 'साहित्य अकादमी' ब्रजभाषा के पुनरुत्थान एव लोक साहित्य को प्रश्रय प्रदान करने के लिये स्थापित की।

ब्रज-साहित्य-मण्डल की स्थापना सन् १९४० में की गई। यह संस्था ब्रज के लोक-साहित्य और स स्कृति की रक्षा कर रही है। इसकी देख-रेख में बहुत से विद्वान् लोक-गीत, लोक-कथाओं और लोक-गाथाओं का संग्रह कर रहे हैं। डॉ० सत्येन्द्र ने अपनी थिसिस 'ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन' में ब्रज के मौखिक साहित्य का अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया है। प० शिवसहाय चतुर्वेदी ने 'ब्रज की कहानियाँ', 'गौने की विदा' और 'पाषाण नगरी' में ब्रज की कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया है। ब्रज-साहित्य-मण्डल के द्वारा 'ब्रज भारती' का प्रकाशन भी हो रहा है। कुछ वर्ष पूर्व 'हिन्दी जनपदीय परिषद्' के तत्वावधान में वाराणसी से 'जनपद' नामक पत्र भी प्रकाशित होता था। परन्तु किन्ही कारणों से यह पत्रिका आज कल बन्द हो गई है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० डी० एन० मजुमदार ने 'लोक सस्कृति परिषद्' की स्थापना की है। इस संस्था की ओर से 'इस्टर्न एन्थ्रोपोलाजिस्ट' नामक त्रैमासिक शोध पत्रिका का प्रकाशन होता है। 'प्राच्य मानव वैज्ञानिक' के नाम से इसका हिन्दी रूपान्तर भी प्रकाशित होता है।

डा० मजुमदार ने इस परिषद् की ओर से निम्नांकित पुस्तकों का प्रकाशन किया है जो उत्तर-प्रदेश के लोक-साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं।

१—स्नो गर्ल्स ऑव् गढ़वाल।

२—फील्ड साङ्गस ऑव् छत्तीसगढ़।

३—दी लोनली फरोज़ ऑव् दी बार्डर लैंड।

४—फोक साङ्ग्स ऑव् मिरज़ापुर।

व्यक्तिगत रूप से लोक सस्कृति के क्षेत्र में काम करने वालों में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। चतुर्वेदी जी की प्रेरणा से आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व ओरछा नरेश के तत्वावधान में 'लोक-वार्ता परिषद्' की स्थापना हुई थी। इस परिषद् की ओर से "लोक-वार्ता" नामक एक त्रैमासिक प्रकाशित होता था जिसमें बुन्देलखण्ड की लोक-सस्कृति के विभिन्न अवयवों की विस्तृत मीमांसा रहती थी। इस पत्र के यशस्वी सम्पादक श्री कृष्णानन्द गुप्त ने "ईसुरी की फागें" नामक पुस्तक में ईसुरी नामक लोक कवि के गीतों का सुन्दर सग्रह किया है। परन्तु ओरछा राज्य के भारतीय सघ में विलयन के साथ ही इस संस्था का भी विघटन हो गया।

बिहार के पं० गणेश चौबे और आरा के श्री दुर्गाशकर प्रसाद सिंह ने इस दिशा में प्रशसनीय प्रयास किया है। वर्तमान पक्तियों का लेखक अनेक वर्षों से भोजपुरी-लोक-संस्कृति के संग्रह तथा सम्पादन का कार्य कर रहा है। भोजपुरी लोक-संस्कृति का अध्ययन तथा लोकगीतों का सकलन कर उसने भोजपुरी लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। हिन्दी की अन्य बोलियों की अपेक्षा भोजपुरी में समधिक कार्य हुआ है।

राजस्थान के विद्वानों ने 'शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की है जिसके तत्वावधान में "राजस्थान भारती" का प्रकाशन होता है। अनेक लोकसाहित्य के प्रेमियों ने राजस्थान और मारवाड़ी लोकगीतों तथा कथाओं का सग्रह कर इस मौखिक साहित्य को नष्ट होने से बचाया है।

बिहार राज्य में मैथिली, मगही और भोजपुरी बोलियाँ बोली जाती हैं। पटना की "राष्ट्र-भाषा परिषद्" ने कई हजार मगही लोकगीतों का सग्रह करवाया है। पटना से 'मगही' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित होती है जिसमें लोकसाहित्य की सामग्री पायी जाती है। आरा से प्रकाशित 'भोजपुरी' पत्रिका भोजपुरी क्षेत्र के मौखिक साहित्य की रक्षा कर रही है। डब्लू० जी० आर्चर ने बिहार के छोटा नागपुर में निवास करने वाली

सथाल तथा ओरांव जातियों के लोकसाहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है। इनकी पुस्तक "ब्लू ग्रोम" आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से प्रकाशित हुई है। इन्होंने संथालों के लोकगीत और लोकोक्तियों का संग्रह दरभंगा से प्रकाशित किया है। इनकी "भोजपुरी ग्राम्य-गीत" में विवाह-संस्कार सम्बन्धी गीतों का अच्छा सग्रह हुआ है। राँची के शरद्चन्द्र राय एक प्रसिद्ध मानवशास्त्रवेत्ता थे जिन्होंने संथाल, मुण्डा तथा ओरॉव नामक जातियों के रहन-सहन और रीति-रिवाजों का बड़ी गम्भीरता के साथ विवेचन किया है। राम इक्बाल सिंह 'राकेश' की 'मैथिली लोक-गीत' अपने क्षेत्र में अकेली पुस्तक है।

अवधी-भाषा के लोक साहित्य पर अभी कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने प्रतापगढ तथा गोंडा ज़िलों से अवधी के लोक-गीतों का संग्रह किया है। डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने "अवधी और उसका साहित्य" में इस बोली के लोक कवियों का अच्छा परिचय दिया है।

मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग में 'छत्तीसगढ़ी' बोली जाती है। डा० श्यामाचरण दूबे ने 'छत्तीसगढी लोक-गीतों का परिचय' लिखकर एक बडे अभाव की पूर्ति की है। डा० एलविन मध्यप्रदेश के ख्यातिनामा मानव-विज्ञान-शास्त्र-वेत्ता हैं जिन्होंने स्थानीय गोंड जातियों की लोक-संस्कृति का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है। "लोक साङ्ग्स ऑव् छत्तीसगढ" में इन्होंने छत्तीसगढ में प्रचलित लोकगीतों का सुन्दर अनुवाद अंग्रेजी में किया है। "साङ्ग्स ऑव् दी फारेस्ट" में गोंडो के गीत सग्रहीत हैं। इनकी "फोक टेल्स आफ महाकोशल" में लोक कहानियाँ सग्रहीत हैं। डा० एलविन ने "ट्राइबल आर्ट" में मध्यप्रदेश की जगली जातियों में प्रचलित लोक-कला का अच्छा विवेचन किया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने निम्नांकित पुस्तकें भी लिखी हैं जो मध्यप्रदेश के विभिन्न जातियों की लोक-संस्कृति से सम्बद्ध हैं।

(१) लीव्ज़ फ्राम दि फोरस्ट
(२) दि एबारिजिनल्स
(३) दि वैगा
(४) दि अगारिया
(५) दि मरिया मर्डर एण्ड सुसाइड
(६) दि मरिया एण्ड देअर घोटुल
(७) मिथ्स ऑव् मिडिल इण्डिया

डा० मजुमदार ने इस परिषद् की ओर से निम्नांकित पुस्तकों का प्रकाशन किया है जो उत्तर-प्रदेश के लोक-साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं।

१—स्नो वाल्स ऑव् गढ़वाल।
२—फील्ड साङ्गस ऑव् छत्तीसगढ़।
३—दी लोनली फरोज़ ऑव् दी बार्डर लैंड।
४—फोक साङ्गस ऑव् मिरजापुर।

व्यक्तिगत रूप से लोक संस्कृति के क्षेत्र में काम करने वालों में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। चतुर्वेदी जी की प्रेरणा से आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व ओरछा नरेश के तत्वावधान में 'लोक-वार्ता परिषद्' की स्थापना हुई थी। इस परिषद् की ओर से "लोक-वार्ता" नामक एक त्रैमासिक प्रकाशित होता था जिसमें बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति के विभिन्न अवयवों की विस्तृत मीमांसा रहती थी। इस पत्र के यशस्वी सम्पादक श्री कृष्णानन्द गुप्त ने "ईसुरी की फागें" नामक पुस्तक में ईसुरी नामक लोक कवि के गीतों का सुन्दर संग्रह किया है। परन्तु ओरछा राज्य के भारतीय संघ में विलयन के साथ ही इस संस्था का भी विघटन हो गया।

बिहार के पं० गणेश चौबे और आरा के श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह ने इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयास किया है। वर्तमान पंक्तियों का लेखक अनेक वर्षों से भोजपुरी-लोक-संस्कृति के संग्रह तथा सम्पादन का कार्य कर रहा है। भोजपुरी-लोक-संस्कृति का अध्ययन तथा लोकगीतों का संकलन कर उसने भोजपुरी लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। हिन्दी की अन्य बोलियों की अपेक्षा भोजपुरी में समधिक कार्य हुआ है।

राजस्थान के विद्वानों ने 'शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की है जिसके तत्वावधान में "राजस्थान भारती" का प्रकाशन होता है। अनेक लोकसाहित्य के प्रेमियों ने राजस्थान और मारवाड़ी लोकगीतों तथा कथाओं का संग्रह कर इस मौखिक साहित्य को नष्ट होने से बचाया है।

बिहार राज्य में मैथिली, मगही और भोजपुरी बोलियाँ बोली जाती हैं। पटना की "राष्ट्र-भाषा परिषद्" ने कई हजार मगही लोकगीतों का संग्रह करवाया है। पटना से 'मगही' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित होती है जिसमें लोकसाहित्य की सामग्री पायी जाती है। आरा से प्रकाशित 'भोजपुरी' पत्रिका भोजपुरी क्षेत्र के मौखिक साहित्य की रक्षा कर रही है। डब्लू० जी० आर्चर ने बिहार के छोटा नागपुर में निवास करने वाली

संथाल तथा ओरॉव जातियों के लोकसाहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है। इनकी पुस्तक "ब्लू ओम" आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से प्रकाशित हुई है। इन्होंने संथालों के लोकगीत और लोकोक्तियों का संग्रह दरभंगा से प्रकाशित किया है। इनकी "भोजपुरी ग्राम्य-गीत" में विवाह-संस्कार सम्बन्धी गीतों का अच्छा संग्रह हुआ है। राँची के शरद्चन्द्र राय एक प्रसिद्ध मानवशास्त्र वेत्ता थे जिन्होंने संथाल, मुण्डा तथा ओरॉव नामक जातियों के रहन-सहन और रीति-रिवाजों का बड़ी गम्भीरता के साथ विवेचन किया है। राम एक-बाल सिंह 'राकेश' की 'मैथिली लोक-गीत' अपने क्षेत्र में अकेली पुस्तक है।

अवधी-भाषा के लोक साहित्य पर अभी कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने प्रतापगढ़ तथा गोंडा ज़िलों से अवधी के लोक-गीतों का संग्रह किया है। डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने "अवधी और उसका साहित्य" में इस बोली के लोक कवियों का अच्छा परिचय दिया है।

मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग में 'छत्तीसगढ़ी' बोली जाती है। डा० श्यामाचरण दूबे ने 'छत्तीसगढ़ी लोक-गीतों का परिचय' लिखकर एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। डा० एलविन मध्यप्रदेश के ख्यातिनामा मानव-विज्ञान-शास्त्र-वेत्ता हैं जिन्होंने स्थानीय गोंड जातियों की लोक-संस्कृति का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है। "लोक साङ्ग्स ऑव् छत्तीसगढ़" में इन्होंने छत्तीसगढ में प्रचलित लोकगीतों का सुन्दर अनुवाद अंग्रेजी में किया है। "साङ्ग्स ऑव् दी फारेस्ट" में गोंडो के गीत संग्रहीत हैं। इनकी "फोक टेल्स आफ महाकोशल" में लोक कहानियाँ संग्रहीत हैं। डा० एलविन ने "ट्राइबल आर्ट" में मध्यप्रदेश की जंगली जातियों में प्रचलित लोक-कला का अच्छा विवेचन किया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने निम्नांकित पुस्तकें भी लिखी हैं जो मध्यप्रदेश के विभिन्न जातियों की लोक-संस्कृति से सम्बद्ध हैं।

(१) लीव्ज फ्राम दि फोरस्ट
(२) दि एबारिजिनल्स
(३) दि बैगा
(४) दि अगारिया
(५) दि मरिया मर्डर एण्ड सूसाइड
(६) दि मरिया एण्ड देअर घोटुल
(७) मिथ्स ऑव् मिडिल इण्डिया

डा० मजुमदार ने इस परिषद् की ओर से निम्नांकित पुस्तकों का प्रकाशन किया है जो उत्तर-प्रदेश के लोक-साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं।

१—स्नो वाल्स ऑव् गढ़वाल।
२—फील्ड साङ्गस ऑव् छत्तीसगढ़।
३—दी लोनली फरोज़ ऑव् दी बार्डर लैंड।
४—फोक साङ्गस ऑव् मिरजापुर।

व्यक्तिगत रूप से लोक संस्कृति के क्षेत्र में काम करने वालों में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। चतुर्वेदी जी की प्रेरणा से आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व ओरछा नरेश के तत्वावधान में 'लोक-वार्ता परिषद्' की स्थापना हुई थी। इस परिषद् की ओर से "लोक-वार्ता" नामक एक त्रैमासिक प्रकाशित होता था जिसमें बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति के विभिन्न अवयवों की विस्तृत मीमांसा रहती थी। इस पत्र के यशस्वी सम्पादक श्री कृष्णानन्द गुप्त ने "ईसुरी की फागें" नामक पुस्तक में ईसुरी नामक लोक कवि के गीतों का सुन्दर संग्रह किया है। परन्तु ओरछा राज्य के भारतीय संघ में विलयन के साथ ही इस संस्था का भी विघटन हो गया।

बिहार के पं० गणेश चौबे और आरा के श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह ने इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयास किया है। वर्तमान पंक्तियों का लेखक अनेक वर्षों से भोजपुरी-लोक-संस्कृति के संग्रह तथा सम्पादन का कार्य कर रहा है। भोजपुरी लोक-संस्कृति का अध्ययन तथा लोकगीतों का संकलन कर उसने भोजपुरी लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। हिन्दी की अन्य बोलियों की अपेक्षा भोजपुरी में समधिक कार्य हुआ है।

राजस्थान के विद्वानों ने 'शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की है जिसके तत्वावधान में "राजस्थान भारती" का प्रकाशन होता है। अनेक लोकसाहित्य के प्रेमियों ने राजस्थान और मारवाड़ी लोकगीतों तथा कथाओं का संग्रह कर इस मौखिक साहित्य को नष्ट होने से बचाया है।

बिहार राज्य में मैथिली, मगही और भोजपुरी बोलियाँ बोली जाती हैं। पटना की "राष्ट्र-भाषा परिषद्" ने कई हजार मगही लोकगीतों का संग्रह करवाया है। पटना से 'मगही' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित होती है जिसमें लोकसाहित्य की सामग्री पायी जाती है। आरा से प्रकाशित 'भोजपुरी' पत्रिका भोजपुरी क्षेत्र के मौखिक साहित्य की रक्षा कर रही है। डब्लू० जी० आर्चर ने बिहार के छोटा नागपुर में निवास करने वाली

संथाल तथा ओराँव जातियों के लोकसाहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है। इनकी पुस्तक "ब्लू ग्रोभ" आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से प्रकाशित हुई है। इन्होंने संथालों के लोकगीत और लोकोक्तियों का संग्रह दरभगा से प्रकाशित किया है। इनकी "भोजपुरी ग्राम्य-गीत" में विवाह-संस्कार सम्बन्धी गीतो का अच्छा सग्रह हुआ है। राँची के शरद्चन्द्र राय एक प्रसिद्ध मानवशास्त्र वेत्ता थे जिन्होंने संथाल, मुण्डा तथा ओराँव नामक जातियों के रहन-सहन और रीति-रिवाजों का बड़ी गम्भीरता के साथ विवेचन किया है। राम एक्बाल सिंह 'राकेश' की 'मैथिली लोक-गीत' अपने क्षेत्र में अकेली पुस्तक है।

अवधी-भाषा के लोक साहित्य पर अभी कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने प्रतापगढ़ तथा गोंडा ज़िलों से अवधी के लोक-गीतों का संग्रह किया है। डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने "अवधी और उसका साहित्य" में इस बोली के लोक कवियों का अच्छा परिचय दिया है।

मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग में 'छत्तीसगढ़ी' बोली जाती है। डा० श्यामाचरण दूबे ने 'छत्तीसगढी लोक-गीतों का परिचय' लिखकर एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। डा० एलविन मध्यप्रदेश के ख्यातिनामा मानव-विज्ञान-शास्त्र-वेत्ता हैं जिन्होंने स्थानीय गोंड जातियों की लोक-संस्कृति का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है। "लोक साङ्ग्स ऑव् छत्तीसगढ़" में इन्होंने छत्तीसगढ़ में प्रचलित लोकगीतों का सुन्दर अनुवाद अंग्रेजी में किया है। "साङ्ग्स ऑव् दी फारेस्ट" में गोंडो के गीत सग्रहीत हैं। इनकी "फोक टेल्स आफ महाकोशल" में लोक कहानियाँ सग्रहीत हैं। डा० एलविन ने "ट्राइबल आर्ट" में मध्यप्रदेश की जंगली जातियों में प्रचलित लोक-कला का अच्छा विवेचन किया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने निम्नाकित पुस्तकें भी लिखी हैं जो मध्यप्रदेश के विभिन्न जातियों की लोक-संस्कृति से सम्बद्ध हैं।

(१) लीव्ज फ्राम दि फोरस्ट
(२) दि एबारिजिनल्स
(३) दि बैगा
(४) दि अगारिया
(५) दि मरिया मर्डर एण्ड सूसाइड
(६) दि मरिया एण्ड देअर घोटुल
(७) मिथ्स ऑव् मिडिल इण्डिया

बंगाल भारतवर्ष के उन राज्यों में से है, जहाँ लोक संस्कृति का अध्ययन प्रचुर परिमाण में हुआ है। बंगाल की लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का श्रेय डा० दिनेशचन्द्र सेन को प्राप्त है जिन्होंने मैमन सिंह ज़िले से प्राप्त लोक-गीतों का संकलन "मैमनसिंह गीतिका" के नाम से प्रकाशित किया है। इन गीतों का अंग्रेजी अनुवाद 'ईस्टर्न बेंगाल बैलेड्स' के नाम से चार बृहद् भागों में अँग्रेजी में प्रकाशित हुआ है। "फोक लिटेरेचर आफ बेंगाल" में डा० सेन ने प्रधानतया लोक-कहानियों की तुलनात्मक विवेचना की है। बँगला लोक साहित्य में योगपरक तथा रहस्यवादात्मक लोक-गीत भी पाये जाते हैं। मसूरुद्दीन के द्वारा सम्पादित "हारामणि" इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। दक्षिणारंजन मित्र की 'ठाकुर दादार झूली' और 'ठाकुर मार झूली' में बँगाली लोक कथाओं का अच्छा संग्रह हुआ है। लाल बिहारी डे द्वारा लिखित "दि फोक टेल्स आफ बेंगाल" अपने ढंग की अनोखी पुस्तक है। "गोपीचन्द" तथा "मानिकचन्द" के गीत भी कलकत्ता विश्व विद्यालय के प्रकाशित है। डा० ग्रियर्सन ने गोपीचन्द की लोक गाथा के दो विभिन्न पाठों का प्रकाशन बँगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में किया है। डा० दास गुप्त ने "आब्सक्योर रिलिजस कल्टस" के परिशिष्ट भाग में मानिकचन्द तथा गोपीचन्द के ऊपर प्रचुर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त मनसा—मङ्गल नाम से अनेक लोक गीतों को कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया है, जिसमें सर्पों की अधिष्ठात्री देवता मनसा की पूजा का वर्णन पाया जाता है। अभी हाल ही में कलकत्ते के श्री गोपीनाथ सेन ने "अखिल भारतीय फोकलोर सोसाइटी" की स्थापना की है जिसके तत्वावधान में 'इण्डियन फोकलोर' नामक पत्रिका प्रकाशित होती है। इस प्रकार बँगाल में फोकलोर के सम्बन्ध में बड़ा अनुसन्धान हुआ है।

उड़ीसा की लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का श्रेय डा० कुञ्ज बिहारी दास एम० ए०, पी-एच० डी० को प्राप्त है जिन्होंने अनेक वर्षों के अथक परिश्रम से कई हजार लोकगीतों तथा कथाओं का संकलन किया है। डा० दास आजकल विश्व-भारती यूनिवर्सिटी, शान्ति-निकेतन, में उड़िया विभाग के अध्यक्ष हैं। उड़िया फोकलोर के क्षेत्र में इनका शोध कार्य नितान्त मौलिक तथा उपादेय है। इन्होंने 'ए स्टडी ऑव् ओरीसन फोकलोर' नामक विद्वत्तापूर्ण पुस्तक लिखी है जिसका प्रकाशन शान्ति-निकेतन से हुआ है। इस ग्रन्थ में इन्होंने उड़ीसा की लोक-संस्कृति का सम्यक् तथा व्यापक विवेचन प्रस्तुत किया है। 'पल्ली-गीति-समुच्चय' में

डा० दास ने उड़िया भाषा के लोकगीतों का संग्रह कर लोक-साहित्य प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है। इस पुस्तक का दूसरा भाग अभी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। डा० दास की पी-एच०-डी० की थीसिस—जिसमे उड़ीसा के फोकलोर का गंभीर तथा मौलिक विवेचन किया गया है—विश्वभारती, शान्तिनिकेतन से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। कलकत्ते से प्रकाशित होने वाली 'इण्डियन फोकलोर' नामक पत्रिका में इनके कई लेख इधर प्रकाशित हुए हैं जिनसे इनकी अगाध विद्वत्ता का पता चलता है। इस प्रकार डा० दास अपने प्रदेश की लोक-संस्कृति को प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं जिसके लिए वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। आसाम के लोकगीतों का संकलन पी० डी० गोस्वामी ने किया है जिनका "बिहू साङ्गस आफ आसाम" इस दिशा में सुन्दर प्रयास है।

बम्बई राज्य में गुजरात, महाराष्ट्र और सौराष्ट्र सम्मिलित हैं। सौराष्ट्र प्राचीन भारतीय वीरता की केन्द्रस्थली है, जहाँ चारणों के द्वारा स्थानीय वीरों की कथाएं आज भी बड़े प्रेम से गायी जाती हैं। किन्केड ने अपनी पुस्तक "आउटलाज ऑव् काठियावाड़" में स्थानीय वीरों तथा लूटेरों का वर्णन किया है। एक पारसी सज्जन ने "फोकलोर ऑव् गुजरात' नामक पुस्तक लिखी है। परन्तु गुजराती फोकलोर के सम्बन्ध में ज़वेर चन्द मेघाणी का नाम सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्होंने अपना समस्त जीवन गुजराती लोक-साहित्य के अध्ययन में ही बिता दिया। इन्होंने सौराष्ट्र के विभिन्न भागों की यात्रा कर हज़ारों गुजराती लोक गीतों और गाथाओं का संग्रह किया है जिनका प्रकाशन "रढ़ियाली रात भाग १—४" और "सोरठनु बहार वटिया' तथा "सोरठ नू रसधार' आदि ग्रन्थों में हुआ है। 'हालरडाँ' नामक पुस्तक में बच्चों के खेल तथा पालने के गीतों का उल्लेख है। "लोक साहित्य नू समालोचन" नामक पुस्तक में लोक साहित्य के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। नर्मदाशंकर मेहता ने " नागर स्त्रियों माँ गवाता गीत" में विवाह सम्बन्धी गीतों का संकलन किया है। गोकुलदास रायचुरा ने भी इस कार्य में योग प्रदान किया है। गुजरात की 'वर्नाक्यूलर सोसाइटी' तथा 'गुजराती साहित्य सम्मेलन' इस दिशा में स्तुत्य कार्य कर रहे हैं।

के० एम० झावेरी ने अपने ग्रन्थ "माईलस्टोन्स ऑव् गुजराती लिट्रेचर" में गुजरात तथा काठियावाड़ के फोकलोर का संक्षिप्त रूप में सम्यक् विवेचन किया है। नारायण ठक्कर ने चन्द्रवंशी राजपूतों के इतिहास की भूमिका में इस विषय पर प्रचुर प्रकाश डाला है।

महाराष्ट्र प्रदेश में भी इस विषय पर कुछ कम कार्य नहीं हुआ है। सी० ए० एन० भागवत ने मराठी के पाँच सौ सात गीतों का प्रकाशन बम्बई विश्वविद्यालय की पत्रिका में किया है। दूसरे विद्वान् डी० एन० भागवत ने इसी पत्रिका में सत्पुड़ा घाटी के लोकगीतों की विशद् विवेचना की है। मेरी फुलर ने 'न्यू रिव्यू' पत्रिका में कुछ मराठी जाँत के गीतों का संकलन किया है।

दक्षिण भारत में चार भाषाएँ बोली जाती हैं। १—तमिल २—तेलुगु ३—कन्नड़ ४—मलयालम। ये सभी भाषाएँ बड़ी समृद्ध हैं। आन्ध्र-प्रदेश में तेलुगु भाषा बोली जाती हैं। इन्डियन एन्टीक्वेरी में "सम टेलगु फोक साङ्स" नाम से कुछ गीतों का प्रकाशन हुआ है। इसी पत्रिका में तेलुगु पालने के गीत भी प्रकाशित हुए हैं। राबिन्सन ने अपनी पुस्तक "टेल्स ऑव् साउथ इण्डिया" में और गोवर ने "फोक साङ्स ऑव् साउथ इण्डिया" नामक ग्रन्थ में दक्षिण भारत के लोक साहित्य का अच्छा परिचय दिया है। थर्सटन ने "ओमेन्स एन्ड सुपरस्टिशन्स ऑव् सदरन इण्डिया" नामक ग्रन्थ में दक्षिण भारत की लोक-संस्कृति का बड़ा ही विशद् तथा विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। बम्बई तथा मद्रास विश्वविद्या-लयों में फोकलोर के सम्बन्ध में शोधी छात्रों द्वारा अनुसन्धान कार्य किया जा रहा है। फोकलोर के अध्ययन की ओर अधिकारी विद्वानों का ध्यान आकर्षित हो रहा है।

परिशिष्ट (ख)

लोक-साहित्य-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली

लोक-साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं जिनका प्रयोग प्रचुरता से किया जाता है। लोक-कथाओं से संबंधित इन शब्दों की संख्या अधिक है, जैसे लीजेण्ड और मिथ। हिन्दी में अभी इनके लिए शब्द उपलब्ध नहीं है। अतः अगले पृष्ठों में अंग्रेजी के मूल शब्दों को ही देकर उनकी व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। इन पारिभाषिक शब्दों की संख्या अधिक है परन्तु स्थानाभाव के कारण कुछ प्रसिद्ध शब्दों का ही यहाँ विवेचन किया जाता है।

१—फेबुल (Fable)

जानवरों से सम्बन्ध रखने वाली उस कथा को फेबुल कहते हैं जिसमें कोई उपदेश दिया गया रहता है। इन कथाओं में पशु-पक्षी पात्रों के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। जानवरों की विशेषताओं को रखते हुए भी ये मनुष्य के समान बात-चीत तथा अभिनय करते हुए पाये जाते हैं। इस प्रकार की लोक कथाओं का प्रधान उद्देश्य नैतिक शिक्षा देना या उपदेश की प्रवृत्ति होती है। फेबुल के दो भाग होते हैं—(१) कथा का वह भाग जिसमें नैतिक शिक्षा को उदाहरण देकर समझाया जाता है और (२) उपदेश-कथन जो किसी लोकोक्ति के रूप में होता है। उदाहरण के लिए हितोपदेश की 'व्याघ्र-ब्राह्मण' कथा में कथानक का अंश प्रथम कोटि में आयेगा तथा निम्नांकित उपदेश द्वितीय कोटि में :—

कंकणस्य तु लोभेन, मग्नः पंके सुदुस्तरे।
वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः, दुर्बल पथिको यथा॥

फेबुल को लोक-कथाओं का सबसे प्रारम्भिक रूप समझना चाहिये। जानवर संबंधी कथाओं में जानवरों की विशेषताओं का प्रतिपादन नहीं पाया जाता प्रत्युत उनमें मानव को शिक्षा-देने की प्रवृत्ति लक्षित होती है अथवा मनुष्य के जीवन के किसी अंश को लेकर उस पर व्यङ्ग्योक्ति कही जाती है। फलस्वरूप हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उपर्युक्त प्रकार की कथायें लोक-सामान्य की रचनायें नहीं हैं प्रत्युत ये सभ्य तथा संस्कृत व्यक्तियों द्वारा निर्मित हैं, अन्यथा इनमें उच्च कोटि की बहुमूल्य नैतिक

शिक्षा का इतना प्राचुर्य नहीं होता। यह संभव है कि शिक्षित पुरुषों के द्वारा इन कथाओं का निर्माण हो जाने पर जनता ने इन्हें अपना लिया हो और इस प्रकार ये इनकी मौखिक सम्पत्ति बन गये हों।

भारतवर्ष में प्राचीनतम फेबुल्स पाये जाते हैं। कथा-सरित्सागर, पंचतन्त्र तथा हितोपदेश पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाओं का अनन्त भाण्डार हैं। "शुक-सप्तति:" नामक ग्रन्थ केवल शुक (सुग्गा) से सम्बन्धित ७० कहानियों का संग्रह है। पश्चिमी देशों में 'इसाप्स फेबुल्स' के नाम से अनेक कहानियाँ प्रचलित है। इसाप (Aesop) ईसापूर्व ६०० ई. में उत्पन्न हुआ था। परन्तु लोक कथाओं के क्षेत्र में भारत ही ससार का गुरु रहा है। इसी देश की कहानियाँ अरब से होती हुई यूरोप में फैलीं। पचतत्र की कुछ कहानियों का सग्रह मध्य युग में यूरोप में 'Fables of Bidpai' के नाम से किया गया था। इस ग्रन्थ में सग्रहीत कहानियों का प्रभाव इसाप की कहानियों में भी परिलक्षित होता है। लोक-कथाओं में पशु-पक्षी सम्बन्धी अनेक कहानियाँ उपलब्ध होती हैं। उन सब को 'फेबुल्स' की श्रेणी में रखा जा सकता है।

अंग्रेजी में चासर, हेनरीसन, ड्राइडन तथा गे ने इस प्रकार की कथायें लिखी हैं। फ्रान्स में ला फान्तेन (La Fontaine) आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ लोककथाकार है। जर्मनी में लेसिंग (Lessing) ने 'फेब्रुल्स' का सुन्दर सग्रह प्रस्तुत करने के अतिरिक्त इनके इतिहास तथा साहित्यिक महत्त्व का गभीर विवेचन भी किया है।

२—फेबलियो (Fabliau)

यह पद्यमयी वह गाथा है जिसमें हास्य तथा व्यङ्ग्य की प्रधानता होती है। इसकी रचना सरल तथा सरस शैली में की जाती है। फ्रान्स देश में १२वीं से १४वीं शताब्दी तक इस प्रकार की रचनाओं की प्रधानता थी। फ्रान्स से इनका प्रचार यूरोप के अन्य देशों में हुआ। चासर की 'केन्टरबरी टेल्स' में इस प्रकार की पद्यमयी गाथायें उपलब्ध होती हैं। अंग्रेजी लोक-गाथाओं (Ballads) में भी ऐसी रचनाएँ परिलक्षित होती है।

फेब्रलियो में जो व्यङ्ग-उक्ति पायी जाती है वह प्रधानतया किसी स्त्री, पादड़ी तथा विवाह की ओर लक्ष्य करती है। इन गाथाओं की रचना उन लेखकों के द्वारा की जाती हैं जो वर्तमान जन-जीवन तथा प्रथाओं को लेकर अपना कथानक चुनते हैं।

फेब्रलियो की रचना प्रधानतया जन-मन के अनुरजन के लिए की

जाती है। इनका प्रधान वर्ण्य-विषय चालाक पति, अविश्वासपात्र पत्नी तथा धोखा देने वाला प्रेमी होता है। इसका उदाहरण 'The Dog in the Closet' नामक गाथा है। हिन्दी में इस प्रकार की रचनाएँ प्राय, नहीं पायी जातीं।

३—फेयरी (Fairy)

यह शब्द उन अमानवीय (Supernatural) जीवों को बोधित करता है जो प्रायः अदृश्य होते हैं। ये कहीं तो उपकार करने वाले तथा सहायक के रूप में दिखायी पड़ते हैं और कहीं दुष्ट, खतरनाक, बदमाश तथा चिड़चिड़े स्वभाव वाले चित्रित किये गये हैं। इनका निवास स्थान यही धरती है जहाँ ये मनुष्यों के सम्पर्क में आते रहते हैं। फेयरी शब्द लैटिन के फेटुम (Fatum) से बना हुआ है जिसका अर्थ जादू या इन्द्रजाल होता है। इसका दूसरा अर्थ वह स्थान है जहाँ ऐन्द्रजालिक या मोह लेने जीव निवास करते हैं। ऐसे व्यक्तियों के समुदाय के लिए भी इस (फेयरी) शब्द का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में इस अन्तिम अर्थ में ही इसका सर्वाधिक प्रयोग होता है। 'फेयरी लैण्ड' उस स्थान को कहते हैं जहाँ 'फेयरी' निवास करते हैं। हिन्दी में फेयरी के लिए 'अप्सरा' या 'गन्धर्व' और 'फेयरी लैण्ड' के लिए अप्सरा-लोक या 'गन्धर्वपुरी' का व्यवहार किया जाता है। यूरोपरीय देशों में 'फेयरी' की कल्पना पुलिंग के रूप में की गई है परन्तु भारत में अप्सरा स्त्री रूप में चित्रित की गई है।

पश्चिमी देशों में 'फेयरी' की कल्पना छोटे, बौने के रूप में की गई है। वह अपनी इच्छानुसार अदृश्य हो सकता है; वह पृथ्वी के नीचे या पहाड़ की कन्दरा में अथवा पत्थरों की ढेर के बीच में रहता है। वह प्रायः हरे कपड़े पहिनता है। कभी-कभी उसकी त्वचा तथा बाल भी हरे दिखाई पड़ते हैं। फेयरी कभी किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता। जब कभी वह बच्चों को चुरा ले जाता है उस समय भी उनको वह क्षति नहीं पहुँचाता। यदि उसके साथ बुरा व्यवहार किया जाता है तब वह घर में आग लगाकर अथवा खेतों में खड़े अन्न को नष्ट कर इसका बदला चुकाता है। वह खेतों में गाय का दूध दूह लेता है, कपड़ों को गन्दा कर देता है तथा दूध को दही के रूप में परिणत कर देता है। परन्तु वह गरीबों को धन-धान्य देकर तथा बच्चों को खिलौना देकर सहायता भी करता है।

फेयरीज़ को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। (१) अप्सरा-लोक में समुदाय रूप में निवास करने वाले (२) व्यक्ति गत रूप में

किसी स्थान, घर या पेशा से सम्बद्ध। दूसरे प्रकार के फेयरीज़ अनेक प्रकार से मनुष्य की सहायता करते हैं।

भारतवर्ष में अप्सरा की कल्पना अलौकिक, दिव्य तथा अमानवीय व्यक्ति के रूप में की गई है। इनमें अलौकिक सुन्दरता होती है जिसे देखकर लोग मोहित हो जाते हैं। ये अप्सरालोक में निवास करती हैं जो आकाश में कहीं स्थित है। अप्सराओं का कार्य अपने अद्वितीय सौन्दर्य से लोगों को मोहित कर उन्हें अपने वश में करना है। इनमें मेनका का नाम बड़ा प्रसिद्ध है जिसने विश्वामित्र जैसे ऋषि को अपने मोह-जाल में फँसा लिया था।

फेयरी को साधारण बोलचाल की भाषा में 'परी' कहा जाता है तथा इनके निवास स्थान को 'परीस्तान'। भारत, अरब, तथा यूरोप में इन परियों की कथायें बड़ी प्रसिद्ध तथा लोक प्रिय हैं।

४—फेयरी टेल (Fairy Tale)

जिन लोक-कथाओं में परियों, अप्सराओं तथा अमानवीय व्यक्तियों की कथा कही गई रहती हैं उन्हें 'फेयरी टेल' कहते हैं। जर्मन भाषा में इन्हें मार्चेन (Marchen) तथा स्वेडिश भाषा में सागा (Saga) कहते हैं। हिन्दी में इनको 'परियों की कथा' से अभिहित किया जा सकता है। इन कहानियों को निम्नांकित छह श्रेणियों (Types) में विभक्त किया जा सकता है।

(१) परियों द्वारा मनुष्यों की सहायता।
(२) परियों द्वारा मनुष्यों को क्षति पहुँचाना।
(३) परियों द्वारा मनुष्यों का अपहरण।
(४) परियों द्वारा कृत्रिम पुत्र को देना।
(५) मनुष्यों द्वारा परीस्तान की यात्रा।
(६) प्रेमिका या प्रेमी के रूप में परी।

परियों द्वारा मनुष्यों के उपकार करने की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। जिन व्यक्तियों पर इनकी कृपा होती है उनको ये धन-धान्य से परिपूर्ण कर देती है। एक फ्रान्सीसी कथा में परियों द्वारा किसी अबला ^ कारागार से मुक्ति का उल्लेख पाया जाता है जिसके पति ने उसे जेल मे डाल दिया था। भारत में परियों की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें वे व्यक्ति विशेष की आर्थिक सहायता करती हैं, रोगी को रोग-मुक्त कर देती है तथा भूखे को भोजन देती हैं। परन्तु वृद्ध होने पर ये परियाँ मनुष्यों को क्षति भी पहुँचाती हैं। भोजपुरी प्रदेश में चुड़ैल की कथाएं प्रसिद्ध हैं जो रात में

सोये हुए व्यक्तियों के शरीर में विष्ठा लगाकर चुपके से चली जाती है।

परियों द्वारा मनुष्यों का अपहरण भी होता है। कभी वे मनुष्यों को अपहरण कर परीस्तान में ले जाती हैं अथवा वहाँ आने के लिए उन्हें लालच देती हैं। प्रधानतया वे बच्चों को ही चुराती हैं। कालिदास ने 'शकुन्तला' में मेनका नामक अप्सरा द्वारा शकुन्तला को उड़ाकर ले जाने का उल्लेख किया है। कुछ कथाओं में मनुष्यों द्वारा परीस्तान की यात्रा का वर्णन भी उपलब्ध होता है। परन्तु सबसे रोचक वे कहानियाँ है जिनमें कोई परी प्रेमिका के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। परियों से विवाह करने की भी कथाएँ पायी जाती हैं जिनमें प्रेमी कुछ दिनों तक परीस्तान में रहने के पश्चात् पृथ्वी पर आने की अपनी इच्छा प्रकट करता है। कुछ कथाओं में असली बच्चों को चुराकर परियों के बच्चों को उनके स्थान पर रखने का वर्णन हुआ है।

जर्मन भाषा में 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' प्रसिद्ध हैं। ग्रिम सुप्रसिद्ध भाषा-विज्ञान-वेत्ता थे जिन्होंने जर्मन भाषा में परियों की कथाओं का संग्रह तथा सम्पादन बड़े परिश्रम से किया है। इन्होंने लोक-कहानियों के सम्बन्ध में मौलिक गवेषणा भी की है। इनकी पुस्तक का अनुवाद यूरोप की अनेक भाषाओं में हो चुका है।

भारतीय लोक-कथाओं में परियों की कथाएँ प्रचुर परिमाण में पायी जाती हैं। इन कथाओं में आश्चर्य, रोमांच तथा रोमान्स की मात्रा अधिक होती है। इनमें अलौकिकता का पुट पर्याप्त होता है तथा अद्भुत रस पाया जाता है।

५—लीजेण्ड (Legend)

इस शब्द का मूल अर्थ उस वस्तु से था जो धार्मिक पूजा-पाठ के अवसर पर पढ़ी जाती थी। यह प्रधानतया किसी साधु पुरुष का जीवन चरित अथवा धर्म के नाम पर बलिदान होने वाले वीरों की गाथा होती थी। जैसे 'Golden legend of Jacobus de Voragine जिसमें सन्तों की जीवनियों का सकलन उपलब्ध होता है। कालक्रम के पश्चात् 'लीजेण्ड' उन कथाओं को कहा जाने लगा जो किसी तथ्य के ऊपर आश्रित हुआ करती थीं। किसी व्यक्ति या स्थान के विषय में कही गई इन कहानियों में मौखिक परम्परागत सामग्री का भी मिश्रण होता है। अतः लीजेण्ड लोक-कथाओं का वह प्रकार है जिसके कथानक में तथ्य घटना (Facts) तथा परम्परा (Tradition) दोनों का समन्वय पाया जाता है।

लीजेण्ड तथा मिथ (Myth) का पार्थक्य स्पष्ट नहीं है। मिथ में देवता गण प्रधान पात्रों के रूप में प्रस्तुत होते हैं तथा इसका उद्देश्य स्पष्टीकरण होता है। यूरोपीय देशों में हरकूलीज (Hercules) की कथा में मिथ तथा लीजेण्ड दोनों का अंश दिखायी पड़ता है। लीजेण्ड सत्य घटना के रूप में कही जाती हैं परन्तु मिथ की सचाई उसके श्रोताओं के देवता में विश्वास के ऊपर आश्रित होती है। राजा विक्रमादित्य की कथा 'लीजेण्ड' की श्रेणी में आती है परन्तु भगवान् वामन के द्वारा बलि के छले जाने की कहानी 'मिथ' कही जा सकती है। स्विनर्टन ने पञ्जाबी कथाओं का संग्रह 'लीजेण्ड्स ऑव् दि पञ्जाब' में किया है।

६—मिथ (Myth)

यह वह कथा है जिसको किसी प्राचीन काल में घटित दिखलाया गया हो। इन कथाओं में किसी देश के धार्मिक विश्वास, प्राचीन वीर, देवी-देवता तथा स्थानीय जनता के अलौकिक परम्पराओं का वर्णन होता है। जी० एल० गोमे (Gomme) ने लिखा है कि मिथ के द्वारा विज्ञान पूर्व—युग की घटनाओं का वैज्ञानिक रीति से स्पष्टीकरण किया जाता है। इन कथाओं को हिन्दी में 'पौराणिक कथा' कह सकते हैं। ये कथाएँ पृथ्वी तथा मनुष्य की सृष्टि-कथा (जैसे मनुष्य की उत्पत्ति कैसे हुई, पृथ्वी कैसे बनी आदि) जीव-जन्तुओं की कहानी (जैसे उल्लू को दिन में क्यों नहीं दिखायी पड़ता, कौवे की एक ही आँख क्यों है?) को कहती हैं। अमुक प्राकृतिक दृश्य ऐसा क्यों है, (चन्द्रमा में कालिमा कहाँ से आ गई तथा सूर्य के सात घोड़े आकाश में कैसे चलते हैं) विभिन्न धार्मिक विधि-विधान किस प्रकार प्रारम्भ हुए, इनका भी वर्णन इन पौराणिक कथाओं में पाया जाता है। मिथ की प्रधान विशेषताएँ निम्नांकित हैं :—

(१) इनकी पृष्ठ-भूमि प्रायः धार्मिक होती है।

(२) इनमें प्रधान पात्र देवी तथा देवता होते हैं।

(३) एक कथा का दूसरी कथा से संबंध होता है।

कोई पौराणिक कथा तभी तक 'मिथ' कही जा सकती है जब तक उसके पात्र देवी-देवता हैं अथवा उन पात्रों में देवत्व की भावना बनी रहती है। परन्तु जब ये पात्र देवत्व की कोटि से नीचे उतर कर मनुष्य की श्रेणी में आ जाते हैं तब उस कथा को 'लीजेण्ड' कहने लगते हैं। भारतीय पुराणों की सृष्टि सम्बन्धी कथाएँ, देवासुर-संग्राम तथा समुद्र-मन्थन की कथा 'मिथ' कही जा सकती है। परन्तु भरथरी और गोपीचन्द

की गाथा 'लीजेण्ड' है। किसी साधारण-कथा को 'फोकटेल' कहते हैं। 'मिथ' से सम्बद्ध शास्त्र को 'माइथोलोजी' (पुराणशास्त्र) कहते हैं जिसमें प्राचीन देवी-देवताओं, सृष्टि-कथा तथा अलौकिक घटनाओं का वर्णन होता है। वेदों तथा पुराणों में 'माइथोलोजी' की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। डा० मेकडानेल ने वेदों के सम्बन्ध में 'वेदिक माइथोलोजी' नामक गम्भीर तथा विद्वत्तापूर्ण पुस्तक लिखी है।

आदिम जातियों में प्रचलित अधिकांश कथाएँ 'मिथ' की श्रेणी में आती है। डा० एलविन ने मध्य-प्रदेश की पौराणिक कथाओं का संग्रह 'Myths of Middle India' नाम से किया है जो आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुआ है।

७—मोटिफ (Motif)

मोटिफ शब्द का अर्थ प्रधान अभिप्राय या भाव होता है जिसका प्रभाव सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। स्टिथ टामसन के अनुसार 'मोटिफ' वह अंश है जिसमें फोकलोर के किसी भाग (Item) का विश्लेषण किया जा सके। लोक कला में डिजायन के मोटिफ होते हैं। लोक-संगीत में भी मोटिफ पाये जाते हैं परन्तु लोक-कथा के क्षेत्र में ही इनका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया गया है।

साधारणतया 'मोटिफ' शब्द का प्रयोग परम्परागत-कथाओं के किसी तत्व को कहते हैं। परन्तु इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि परम्परा का वास्तविक अग बनने के लिए यह तत्व (Element) ऐसा प्रसिद्ध होना चाहिए कि इसे सर्व साधारण जनता स्मरण रख सके। अतएव यह तत्व साधारण न होकर असाधारण होना चाहिए। माता को मोटिफ नहीं कह सकते परन्तु निर्दयी माता या विमाता 'मोटिफ' की संज्ञा प्राप्त कर सकती है। लोक-गीतों में वर्णित 'दारुनिया सास' मोटिफ का अच्छा उदाहरण है। इसी विषय को इस प्रकार समझाया जा सकता है :—

राम कपड़ों को पहन कर शहर को गया। इसमें कोई उल्लेखनीय मोटिफ नहीं है। परन्तु यदि कहा जाय कि मोहन दिखायी न पड़ने वाली (अदृश्य) पगड़ी सिर पर बाँधकर, जादू के घोड़े पर सवार होकर, उस देश को गया जो सूर्य के पूर्व और चन्द्रमा के पश्चिम था। इसमें चार मोटिफ हैं (१) अदृश्य पगड़ी (२) जादू का घोड़ा (३) आकाश मार्ग से यात्रा और (४) अद्भुत देश।

भारतीय लोक-कथाओं में शृगाल या शराक को बड़ा चालाक,

धूर्त तथा 'काइयाँ' जानवर के रूप में चित्रित किया गया है। इसी प्रकार से गधा मूर्ख, मारवाही पशु के रूप में दिखायी पड़ता है। ये दोनों ही इस प्रकार की कथाओं के 'मोटिफ' है। लोक-कथाओं में हीरामन तोते का मनुष्य की बोली में बोलना, लिलही घोड़ी पर चढ़ कर किसी व्यक्ति का भगना तथा विशेष प्रकार के पक्षियों (कौवा, तोता आदि) द्वारा सन्देश भिजवाना मोटिफ के अन्तर्गत आता है।

'मोटिफ' तथा 'टेल-टाइप' (Tale Type-कथाओं के प्रकार-) में थोड़ा अन्तर है। मोटिफ का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। यह अन्तर राष्ट्रीय है। अनेक देशों की लोक-कथाओं में एक ही प्रकार के मोटिफ मिल सकते हैं तथा मिलते भी हैं परन्तु 'टाइप' का क्षेत्र किसी देश-विदेश की भौगोलिक सीमा के भीतर ही होता है।

विद्वानों ने 'मोटिफ' तथा 'टाइप' इन दोनों विषयों का बड़ा गभीर अध्ययन किया है। स्टिथ टामसन ने अपने 'Motif-Index of Folk-literature' नामक विशालकाय ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में गभीर विवेचना प्रस्तुत किया है। दूसरा ग्रन्थ आर्न तथा टामसन रचित 'Types of the Folk Tale' है जिसमें लोक-कथाओं के विभिन्न प्रकारों की प्रगाढ मीमासा की गई है। इस सम्बन्ध में ये दोनों ही ग्रन्थ पठनीय है।

८—टाइप (Type)

लोक साहित्य के विद्वान् इस शब्द का प्रयोग उन कथाओं के लिए करते हैं जो मौखिक परम्परा में अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रखने में समर्थ हैं। कोई कथा जो स्वतन्त्र कहानी के के रूप में कही जाती है 'टाइप' समझी जा सकती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अपनी कुछ विशेपताओं (Characteristics) के कारण कोई कथा का वर्ग दूसरी कथाओं से पृथक् होता है। इस वर्ग को 'टाइप' कहते हैं। लोक कथाओं के शोधी विद्वान् कथाओं के 'टाइप' का अनुसधान करने के लिए पहले उनके विभिन्न भेदों (Variants) को खोज निकालते हैं। जब अनुसन्धान-कर्ता इन विभिन्न भेदों में किन्हीं विशेष समानताओं को पाता है तब वह इनको एक श्रेणी (Category) में रख देता है। फिर वह इन समान गुणों का अध्ययन करता है और उनको नोट कर लेता है। पुनः वह इन सामान्य गुणों को रखने वाली सभी कथाओं को एकत्र करता है। इस प्रकार सामान्य-गुण-समन्वित इन कथाओं का एक पृथक 'टाइप' बन जाता है।

यूरोप तथा पश्चिमी एशिया की लोक कथाओं का वर्गीकरण विद्वानों ने बड़े परिश्रम से किया है। इस विषय में आर्न तथा टामसन की Types of the Folktale नामक पुस्तक प्रामाणिक मानी जाती है। भारतीय लोक कथाओं का वैज्ञानिक पद्धति से वर्गीकरण अभी नहीं हुआ है।

६—टङ्ग ट्विस्टर (Tongue Twisters)

जिस शब्दावली के उच्चारण करने में जीभ को तोड़ना-मरोड़ना पड़ता है उसे Tongue Twister कहते हैं। इसमें प्रायः सभी शब्द एक ही अक्षर से प्रारम्भ होते हैं। कहीं-कहीं ऐसे व्यञ्जन वर्णों की इनमें योजना की जाती है जिनका उच्चारण करना बड़ा कठिन होता है। ऐसी पदावली पद्य तथा गद्य दोनों में हो सकती है। व्यञ्जनों को इसमें इस क्रम से रखते हैं कि शीघ्रता के साथ इनको दुहराने में बड़ी कठिनता उत्पन्न होती है। छोटे बच्चों की जीभ इन शब्दों का उच्चारण करते समय लटपटा जाती है। बालक गण आपस में ऐसी कठिन पदावली का उच्चारण किसी एक बालक से करने के लिए कहते हैं परन्तु उच्चारण करते समय जब उसकी जीभ लटापटा जाती है तब सब बालक हँसने लगते हैं। एक ही उदाहरण पर्याप्त है:—

"राजा का बाग में चार काँच पाकल पाँच आम।"

इसका जल्दी जल्दी पाँच बार शुद्ध उच्चारण करना बालकों के लिए कठिन होता है।

अमेरिका में इस प्रकार के पद्य प्रचुर परिमाण में पाये जाते है जिन्हें बालक मनोरंजन के लिए कहते हैं। एक उदाहरण लीजिए—

"Amidst the mists and coldest frosts,
With barest wrists and stoutest boasts,
He thrusts his fists against the posts,
And still insists he sees the ghosts."

उपर्युक्त पद्य की प्रथम तीन पंक्तियों का उच्चारण व्यञ्जनों की विशिष्ट योजना के कारण बड़ा कठिन है।

परिशिष्ट (ग)

लोक-साहित्य-सम्बन्धी पठनीय सामग्री

हिन्दी में लोकसाहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ-सूची का अभाव है। श्री मेघनाद साहा ने सम्मेलन पत्रिका (स० २०१०, भाग ४० सख्या १) में 'लोक-साहित्य सम्बन्धी भारतीय-साहित्य की सक्षिप्त सूची' शीर्षक लेख लिखकर बड़ा शोभन कार्य किया है। श्री श्याम परमार ने 'भारतीय लोक साहित्य' में तथा श्रीकृष्णदास ने 'लोक-गीतों की सामाजिक व्याख्या' नामक ग्रन्थ में ऐसी पुस्तकों की एक लम्बी लिस्ट दी है। प्रस्तुत लेखक ने तीनों सज्जनों की सूचियों का उपयोग यहाँ किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ-सूची में विभिन्न भाषाओं की उन्हीं पुस्तकों को स्थान दिया गया है जिनका सम्बन्ध लोक-सस्कृति अथवा लोक-साहित्य के किसी न किसी अग से अवश्य है। इसमें हिन्दी की विभिन्न बोलियों में उपलब्ध ग्रन्थों का पृथक्-पृथक् निर्देश किया गया है जिससे पाठकों को यह सरलता से ज्ञात हो जाय कि हिन्दी की किस बोली में लोक-साहित्य की कितनी सृष्टि हुई है। अँग्रेजी में उपलब्ध लोकसंस्कृति सम्बन्धी ग्रन्थों को सुविधा के लिए चार भागों—भारतीय, अग्रेजी, अमेरिकन तथा यूरोपियन—में विभक्त किया गया है। सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थों तथा शोध-सम्बन्धी पत्रिकाओं की सूची भी अलग से दे दी गई है। आशा है यह ग्रन्थ-सूची पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

(क) हिन्दी

१—भोजपुरी

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग १ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। द्वितीय संस्करण सं० २०११ वि०)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी ग्राम गीत भाग २ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। स० २००६ वि०)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी और उसका साहित्य (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी)
डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-संस्कृति (फोकलोर) का अध्ययन (प्रेस में)
दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस (हि० सा० स०, प्रयाग)
दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी के कवि और काव्य (राष्ट्रभाषा परिषद् पटना)
आर्चर (डब्लू० जी०)—भोजपुरी ग्राम्य गीत (लहेरिया सराय, पटना)
डा० उदय नारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य (राष्ट्रभाषा परिषद्,पटना)। भोजपुरी लोकोक्तियाँ ('हिन्दुस्तानी') प्रयाग। अप्रैल १६३६ पृ० १५६-२१६; जुलाई १६३६ पृ० २४५-६०)
डा० उदय नारायण तिवारी—भोजपुरी मुहावरे ('हिन्दुस्तानी' प्रयाग; अप्रैल; अक्टूबर १६४०, जनवरी १६४१)
डा० उदय नारायण तिवारी—भोजपुरी पहेलियाँ (हिन्दुस्तानी, प्रयाग; अक्टूबर-दिसम्बर १६४२)

२ राजस्थानी

सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, ठाकुर रामसिंह—राजस्थान के लोक गीत प्रथम भाग—पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्ध (राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता, सन् १६३८ ई०)
सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, ठाकुर रामसिंह—ढोला मारू रा दूहा (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सन् १६३४)
ठाकुर रामसिंह—चारणी गीत
नरोत्तम दास स्वामी—राजस्थान रा दूहा भाग १,२ (राजस्थानी सीरीज, पिलाणी)
सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी लोक गीत (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० १६६६)
कन्हैया लाल सहल—राजस्थानी कहावतें
मोहन लाल मेनारिया—राजस्थानी भीलों की कहानियाँ
सूर्यकरण पारीक— राजस्थानी वार्ता

जगदीश सिंह गहलोत—मारवाड़ी-ग्राम-गीत
खेताराम माली—मारवाड़ी-गीत संग्रह
ताराचन्द ओझा—मारवाड़ी स्त्री-गीत-संग्रह
निहाल चन्द शर्मा—मारवाड़ी गीत (१६५२)
रामनरेश त्रिपाठी—मारवाड़ के मनोहर गीत
(हिन्दी मन्दिर प्रयाग, सं० १९८७ वि०)
जोशी—मेवाड़ की कहावतें (उदयपूर)
मदनलाल वैश्य—मारवाड़ी गीत माला
पुरुषोत्तम मेनारिया—राजस्थान की लोक-कथाएँ
(आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली)

३—व्रज

डा० सत्येन्द्र—व्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन
(साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा सन् १९४९)
डा० सत्येन्द्र—व्रज की लोक-कहानियाँ
(व्रज साहित्य मंडल, मथुरा १९४७)
डा० सत्येन्द्र—व्रज-लोक-संस्कृति (सम्पादित)
(व्रज साहित्य मण्डल, मथुरा)
डा० सत्येन्द्र—व्रज-ग्राम साहित्य का विवरण
(वही)
डा० सत्येन्द्र—व्रज का लोक साहित्य
(पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ)
आदर्श कुमारी यशपाल—व्रज की लोक कथाएँ
(आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली)

४—अवधी

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—अवधी लोक-गीत भाग १ (अप्रकाशित)
डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित—अवधी और उसका साहित्य
(राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)
सत्यव्रत अवस्थी—विहाग रागिनी

५—मालवी

श्याम परमार—मालवी लोक गीत (इन्दौर स० २००६)
श्याम परमार—मालवी और उसका साहित्य
(राजकमल प्रकाशन, दिल्ली स० १९५४)

श्याम परमार—मालवा की लोक-कथाएँ
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५४)
रतन लाल मेहता—मालवी कहावतें
(राजस्थान शोध संस्थान, उदयपुर)

६—बुन्देलखण्डी

कृष्णानन्द गुप्त—ईसुरी की फागें (सम्पादित)
(लोक वार्ता परिषद्, टीकमगढ़)
शिवसहाय चतुर्वेदी—बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानियाँ
शिवसहाय चतुर्वेदी—गौने की विदा
शिवसहाय चतुर्वेदी—पाषाण नगरी
हर प्रसाद शर्मा—बुन्देलखण्डी लोक-गीत

७—बघेली

लखन प्रताप 'उरगेश'—बघेली लोक-गीत
(कटिया, विन्ध्य प्रदेश, १९५४)
श्रीचन्द्र जैन—विन्ध्य प्रदेश के लोक-गीत (१९५३)
श्रीचन्द्र जैन—विन्ध्य भूमि की लोक कथाएँ
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली)

८—छत्तीसगढ़ी

श्यामा चरण दुबे—छत्तीसगढ़ी लोक-गीतों का परिचय (१९४० ई०)
चन्द्रकुमार—छत्तीसगढ़ की लोक-कथाएँ
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली)

९—मैथिली

राम एकबाल सिंह 'राकेश'—मैथिली लोक-गीत
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० १९९९ वि०)

१०—निमाड़ी

रामनारायण उपाध्याय—निमाड़ी लोक-गीत
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, जबलपुर, १९४९ ई०)
कृष्णलाल हंस—निमाड़ी लोक-कथाएँ भाग १,२
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली)

११—कुरु प्रदेश

राहुल सांकृत्यायन—आदि हिन्दी के गीत और कहानियाँ (पटना १९५२)

१२—मिश्रित-गीत-संग्रह

रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी भाग ५ (ग्रामगीत)
(हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, स० १९८६)
रामनरेश त्रिपाठी—हमारा ग्राम साहित्य
(हिन्दी मन्दिर प्रयाग, सन् १९४० ई०)
रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य भाग १
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १९५१)
रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य २ भाग (प्रकाशक—वही)
रामनरेश त्रिपाठी —ग्राम साहित्य भाग ३ (प्रकाशक —वही)
रामनरेश त्रिपाठी—सोहर (हिन्दी मन्दिर, प्रयाग)
देवेन्द्र सत्यार्थी—बेला फूले आधी रात (१९४९)
देवेन्द्र सत्यार्थी—धरती गाती है (१९४८)
देवेन्द्र सत्यार्थी—बाजत आवे ढोल
देवेन्द्र सत्यार्थी—धीरे बहो गगा (१९४८)
देवेन्द्र सत्यार्थी—दीवा बले सारी रात (१९४१)
देवेन्द्र सत्यार्थी—मैं हूँ खाना बदोश (१९४१)
देवेन्द्र सत्यार्थी—गाये जा हिन्दुस्तान (१९४६)
देवेन्द्र सत्यार्थी—चट्टान से पूछ लो
विद्यावती सिनहा 'कोकिल'—सुहाग के गीत (प्रयाग १९५३)
रामकिशोरी श्रीवास्तव—हिन्दी लोक-गीत
(साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९४६ ई०)
राहुल साकृत्यायन—किन्नर देश में
राहुल साकृत्यायन—हिमालय परिचय (गढ़वाल)
गोविन्द चातक—गढ़वाल की लोक कथाएँ
(आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली)
गोविन्द चातक—नेपाल की लोक कथाएँ
(प्रकाशक—वही)
सन्तराम वत्स्य—हिमाचल की लोक कथाएँ
(वही)

(ख) गुजराती

(लोक गीत)

झवेरचन्द मेघाणी—रढियाली रात भाग १—४
झवेरचन्द मेघाणी—चूँदडी भाग १-२
झवेरचन्द मेघाणी—ऋतु गीतों
झवेरचन्दमेघाणी—हालर डॉ

(लोक कथा)

झवेरचन्द मेघाणी—सौराष्ट्रनी रसधार (भाग १-५)
झवेरचन्द मेघाणी—सोरठी बहार वटिया (भाग १-३)
झवेरचन्द मेघाणी—सोरठी गीत-कथाओं
झवेरचन्द मेघावी—दादाजुनी वातो
झवेरचन्द मेघाणी—डोशी मानी वातो

(सिद्धान्त ग्रंथ)

झवेरचन्द मेघाणी—धरती नुं धावण (भाग १, २)
झवेरचन्द मेघाणी—लोक साहित्य-पगदंडी नो पथ
झवेरचन्द मेघाणी—चारणो अने चारणी साहित्य
झवेरचन्द मेघाणी—वतन नो साद
झवेरचन्द मेघाणी—लोक साहित्य नु समालोचन
(बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई)

(व्रत कथा)

झवेरचन्द मेघाणी—कंकावटी (भाग १, २)

(यात्रा)

झवेरचन्द मेघाणी—सौराष्ट्रनां खंडेरोमां। सोरठ ने तीरे तीरे[1]
नर्मदाशंकर लालशंकर—नागर स्त्रिओं मां गवातां गीत
(द गुजराती प्रिंटिंग प्रेस; सन् १६१०)
रणजीतराय मेहता—लोक-गीत
शाह एस० एन०—ढोला मारू (बम्बई, १६५४)

---

१. (मेघाणी के उपर्युक्त सभी ग्रन्थ गुर्जर ग्रन्थ-रत्न कार्यालय, गांधी रोड, अहमदाबाद से प्राप्त हो सकते हैं।)

दलाल—प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह
बुच (एम० ए०)—उदासी पथ ना नीति बचनो।

(ग) मराठी

अनुसूया भागवत—जानपद गीतें
कमला बाई देशपाण्डे—अपौरुषेय वाङ्मय अर्थात् स्त्री गीतें (पुणें, १९४८)
काका कालेलकर—साहित्याचें मूलधन
गोरे, पा० श्र०—वरहाड़ी लोक-गीतें (यवतमाल)
मालती दाण्डेकर—लोक साहित्याचे लेणे (सतारा, सन् १९५३)
वि० वा० जोशी—लोक-कथा व लोक-गीतें
साने गुरुजी—स्त्री जीवन (भाग १, २)
नारायण मोरेश्वर खरे—लोक संगीत

(घ) बंगला

आशुतोष भट्टाचार्य—बांगलार मंगल-काव्येर इतिहास
कांगाल हरिनाथ—बाउल गान
कांगाल हरिनाथ—बारमासेर पुँथि
कांगाल हरिनाथ—हिन्दुस्थानी ग्राम-गीत
कांगाल हरिनाथ—हिन्दुस्थानी लोक-गीत
कांजिलाल, अनिल—बांगलार प्राचीन काव्य
काशीनाथ तर्क वागीश—व्रतमाला
गुरु प्रसाद दत्त—पटुआ संगीत
गिरीशचन्द्र सेन—तापसमाला
दक्षिणारञ्जन मित्र—ठाकुर दादार झूलि
दक्षिणारञ्जन मित्र—ठाकुर मार झूलि
दिनेशचन्द्र सेन—मैमनसिंह गीतिका
दिनेशचन्द्र सेन—गोपीचन्देर गान
नरेन्द्र नाथ मजुमदार—व्रत कथा
नीलकान्त सरस्वती—व्रत कथा सार
भोलानाथ दत्त—डाकेर कथा

मन्सूर उद्दीन—हारामणि
मणीन्द्रनाथ बसु—सहजिया साहित्य
शरच्चन्द्र नाथ--चाउल गान
सुशील कुमार डे—बांगला प्रवाद

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कलकत्ता विश्वविद्यालय से 'मनसा देवी के सबंध में अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है।

(ड) पंजाबी

अमृता प्रीतम—पजाब दी आवाज (दिल्ली १९५२)
किशन चन्द्र मोगा—असली रग विरंगे गीत (अमृतसर, १९४६)
दीन मुहम्मद कुरता—पजाब दे हीरे
देवेन्द्र सत्यार्थी—गिद्धा
रामशरण - पजाब दे गीत (लाहौर)
हरभजन गियानी—पजाब दे गीत (देवनागरी, अमृतसर)



(A)—INDIAN FOLKLORE

Abbott (J.)—The keys of Power—A Study of Indian Ritual and Belief (1932).

Agarkar (A J.) Folk-dance of Maharastra (Bombay).

Agarkar (A J.)—A glossary of Castes, Tribes and Races in Baroda State (Bombay, 1912)

Aiyappan (A)—Anthropology of the Nadias (Govt Museum Bulletins N. S. Vol II, No 4, 1914)

Aiyanger (M. S.)—Tamil Studies (Madras, 1914).

Archer (W G)—The Blue Grove (George Allen and Unwin)

Archer (W G.)—Indian Primitive Architecture

Bake (A)—Indian Music.

Baring Cloud—Strange Survivals (1892).

Barlett (F C)—Psychology of Primitive Culture (Cambridge, 1923)

Basu (M M.)—Post Chaitanya Sahajiya Cult (Calcutta)

Banerjee (B)—Ethnologic du Bengal

Banerjee (U. K)—Handbook of Proverbs—English & Bengali (Calcutta, 1891)

Bhandari (N. S) Snow Balls of Garhwal (Lucknow)

Bhargava (B. S)—The Criminal Tribes

Boyd—Village Folk of India (1924)

Briggs (G W)—The Chamars (R. L. I. series)

Briggs (G W.)—Gorakhnath and the Kanphata Yogis (Calcutta, 1938).

Burton (R. F.)—Sindh and the Races that inhabit the valley of Indus (1851).

Burton (R. F.)—Sind Revisited (1877)

✓Buck (C. H.)—Faiths, Fairs and Festival of India. (1917).

Boys (F.)—Primitive Art

Chanda (R. P)—Non-Vedic Elements in Brahmanism

(Varendra Research Society, Rajshahi, East Pakistan).
Chatterji (N.)—Yatra.
Chelkesa (T)—Parralel Proverbs, Tamil and English (Madras, 1869)
Christian (J)—Bihar Proverbs (London, 1891)
Crook (W)—Religion and Folklore of Northern India (O. U. P.) 1926. Third Edition
Crook (W)—Tribes and Castes of N.W.P (Allahabad).
Dalton—Descriptive Ethnology of Bengal.
Das Gupta (S. B.)—Obscure Religious Cults (Calcutta University, 1940)
Das (S)—History of Saktas.
Devendra Satyarthi—Meet my people.
Divetia (N. B.)—Gujrati language & literature. Vol I—II (1929).
Divetia (N. B.)—Milestones in Gujrati literature
Dowson (J)—A Classical Dictionary of Hindu Mythology & Religion (1903)
Dubois (L)—Hindu Manners, Customs and Ceremonies. (1906)
Dube (S. C.)—The Kamars (Lucknow).
Dube (S. C.)—Fieldsongs of Chhattisgarh (Lucknow).
Dubash (P. N.)—Hindu Art in its Social Setting (1936)
Dyre (T.)—Folklore of Plants
De—Music of Southern India.
Ehrenfels (O. R.)—Mother Right in India (Hyderabad (Deccan), 1941).
Elliot (H. M)—Memoirs on the History, Folklore and Distribution of the Races of North Western Province of India (1869).
Elwin (V.) and Hivale—Songs of the Forest (George Allen & Unwin)
Elwin (V.) and Hivale—Folk—songs of Maikal Hills. (O U. P., Bombay, 1944)
Elwin (V.)—The Baiga (Murray, London, 1939)

Elwin (V.)—The Agaria (O. U P., Bombay, 1942)
Elwin (V.) Maria Murder and Suicide, Bombay, 1943 (O U P)
Elwin (V.)—The Maria and their Ghotul Bombay, 1947 (O. U. P)
Elwin (V.)—Folk-tales of Mahakoshal. Bombay, 1944 (O. U P)
Elwin (V)—Folk-Songs of Chhattisgarh, Bombay, 1946 (O. U. P.)
Elwin (V.)—The Tribal Art of Middle India (O U P.)
Elwin (V.)—Bondo Highlander (O U P.)
Elwin (V.)—Myths of Middle India (O. U P)
Elwin (V)—Tribal Myths of Orissa (O U. P.)
Elwin (V) —The Religion of the Hill Saora (O. U P.)
Elwin (V.)—The Aboriginals (O U P.)
Elwin (V) —Leaves from the Jungle (Murray)
Emeneau (M. B)—Kota Texts (California, 1944 46)
Enthovon (R. E)—The Folklore of Bombay (Ox-Ford, 1924)
Fitzpatrick (W)—Folklore of Birds and Beasts of India (J. Bom. Nat. Hist. Society Vol. XXViii), 1921–22 PP 562–65
Forsyth (J)—The Highlands of Central India (London 1871)
Furer-Haimendorf (C. Von)—The Chenchus (Hyderabad, 1943)
Fallan (S W.)—A Dictionary of Hindustani Proverbs (1886)
Ganesh Narain Deshpande—A Dictionary of Marathi Proverbs (Poona, 1900)
Ganga Datt Upreti—Proverbs and Folklore of Kumaun & Garhwal (1892)
Gariola (T D)—Folklore of Garhwal (The Vishwa Bharati Quarterly, Vol, IV. 1926)
Ghure (G. S.)—Race and Caste in India (Bombay)

Gover (G)—Himalayan Village (London, 1938)
Gover (C. E.)—Folksongs of Southern India (1872)
Goswami (P. D.)—The Bihu Songs of Assam.
Griffiths (W G.)—Folklore of the Kols ('Man in India' Vol XXIV, 1944)
Grierson (G. A)—Bihar Peasant Life (Patna, 1918)
Grierson (G. A.)—Some Behari Folksongs (J. R A. S ; Vol. XVI (1884) P. 196)
Grierson (G A)—Some Bhojpuri Folksongs. (J. R.A. S Vol. XVIII (1886) pp- 207)
Grierson (G. A.)—Folklore from Eastern Gorakhpur (J. A S. B Vol Lii (1883) pp 1.
Grierson (G A.)—Two Versions of the Song of Gopichand. (J. A S B.; Vol. LIV, (1885) part I, pp. 35)
Grierson (G. A.) -The Song of Bijai Mal (J. A. S. B. Vol. Liii (1884) Part III, pp. 94)
Grierson (G. A)—The Song of Alha's marriage (Indian Antiquary Vol. Xiv (1885) pp-209)
Grierson (G. A.)—A Summary of the Alha Khand (I. A. Vol. XIV (1885) pp. 255)
Grierson (G A.)—Selected Specimens of the Behari language—The Bhojpuri dialect, The git Naika Banajarawa (Z. D. M. G. Vol XLiii (1889) pp-468)
Grierson (G A.)—The Popular Literature of Northern India. (Bulletin of the School of Oriental Studies, London Vol. I, Part III (1920) pp 87).
Grierson (G A)—The Lay of Alha (O. U. P., 1923)
Grierson (G. A.)—The Song of Manik Chandra— J.A. S. B. Vol. XIII, Part I, No. 3 (1878)
Grigson (W. V)—The Maria Gonds of Bastar. (OxFord, 1938)
Gurdon (P. R T.)—The Khasis (London, 1914)
Gurdon (P R. T.)—Some Assamese Proverbs (1896)
Haldar (S)—Ho Folklore (J B. O. R. S. Vol. VIII, 1922)

Hislop (S)—Papers relating to the Aboriginal Tribes of the Central Provinces. (Nagpur, 1866)
Hivale, Shamrao—The Pardhans of the Upper Narbada Valley (Bombay, 1946)

Hoffmann (J)— } Encyclopaedia Mundarica
Van Emelen (A)— } (Patna 1930-31)

Hutton (J. H.)—The Angami Nagas (London, 1921)
Hutton (J. H.)—The Sema Nagas (London, 1921)
Hunter (W. W)—Annals of Rural Bengal (1868)
Ibbetson (D)—Punjab Castes (Lahore, 1916)
Iyer (L. A. K.)—The Travencore Tribes and Castes. (Trivandrum, 1937-41)

Iyer (L. A K)—Kochin Tribes and castes (Madras, 1909-12)

Iyenger (M. V)—Popular Culture in Karnatak.
Jamsetjee Petit—Collection of Gujrati Proverbs (Bombay)
James Long—Eastern Proverbs and Emblems (London, 1881)

Jogendra Bhattacharya—Hindu Castes and Sects (Thacker, 1896).

Kunja Behari Das—A study of Orissan folklore (Vishva Bharati, Shanti Niketan, 1953)
Koppers (W)—'Bhagwan, the Supreme Deity of the Bhils' (Anthropos, (1940-41)
Leitner (G. W)—Manners and Customs of the Dards
Lewison (R. G.)—'Folk-lore of the Assamese' (J R. A. S. B. Vol. V (1939)
Longworth (D M)—Popular poetry of the Baloches

Luard (C E)—Ethnological Survey of Central India Agency (Lucknow, 1909)

Maconochie—Agricultural Proverbs of the Punjab.
Majumdar (D. N.)—A Tribe in Transition (Calcutta)
Majumdar (D. N.)—Folk-songs of Mirzapur
Majumdar (D N.)—The Fortunes of Primitive Tribes.

Majumdar (D N.)—The Matrix of Indian Culture.
Majumdar (D. N.)—The Affairs of a Tribe
Mukherjee (C)—The Santals (Calcutta, 1943)
Mills (J. P.)—The Lhta Nagas (1923)
Mills (J. P.)—The Ao Nagas (1926)
Natesa Shastri—Folklore in Southern India.
Natesa Shastri—Familiar Tamil Proverbs.
Nanjundayya (H. V.) & Anant Krishna Iyer (L. K.)—The Mysore Tribes and Castes. (Mysore 1928-35).
Pangtey (K. S.)—Lonely Furrows of the Borderland. (Lucknow).
Parray (N. E.)— The Lakhers (London, 1932)
Penzer (N M.)—The ocean of story. (London, 1924 28)
Playfair (A.)—The Garos (London, 1909)
Percival (P.)—Tamil Proverbs (Madras, 1874)
Projesh Banerji—The Folk- Dance of India (Allahabad, 1944)
Projesh Banerji—Dance of India (Allahabad)
Rafy (Mrs)—Folk-tales of Khasis (London, 1920)
Ravipati Guruvayuru—A collection of Telgu Proverbs. (Madras, 1868)
Risley (H. H)—The Tribes and Castes of Bengal. (Calcutta, 1891)
Rivers (W. H. R.)—The Todas (London, 1906)
Robertson (G. S.)—The Kafirs of Hindukush (1896)
Rochiram (G)—Handbook of Sindhi Proverbs (Karachi, 1845)
Rodrigner (E A.)—The Hindoo Castes (1846)
Rose (H. A.)—A Glossary of the Tribes and Castes of the Punjab and N. W. F. P.(Lahore, 1919)
Roy-(Sarat chandra)—The Mundas and their country (Calcutta, 1912)
Roy-(Sarat chandra)—The Oraons of Chota Nagpur (Ranchi, 1915)

Roy (Sarat chandra)—The Bırhors (Ranchi, 1925)
Roy (Sarat chandra)—Oraon Relıgion and Customs (Ranchi, 1928)
Roy (Sart chandra)—The Hill Bhuiyas of Orıssa, (Ranchi, 1936)
Roy (Sarat chandra)—The Kharıes (Ranchi, 1937)
Roy (Sarat chandra) —'The Dıvıne Myths of the Mundas (J- B. O. R. S. Vol II. (1916).
Russel (R. V.) & Hıra Lal — The Trıbes and Castes of Central Provınce of Indıa. (London, 1916)
Sapekar (G. G.)—Marathi proverbs (Poona, 1872)
Sarkar (B K.)—Folk Element ın Hındu Culture
Sawe (K. J.)—The Warlıs (Bombay, 1945)
Saligman (C. G.)—The Veddas (Cambridge, 1911)
Shaw (W.)—'Notes on the Thadon Kukis (J. A S. B Vol. XXIV, 1928)
Stocks (C.)—'Folklore and Customs of Lepchas of Sıkkım (J. A S B. Vol. XXI, 1925)
Shakesphere Lushei Kukı Clan (1912)
Sherıf (A. G.)—Hındı Folk songs (Hındı Mandır, Allahabad)
Sen Gupta (P P)—Dıctıonary of Proverbs (Calcutta, 1899)
Sen (D. C.)—Folk -lıterature of Bengal (Calcutta Unıversıty, 1920)
Sen (D. C.)—Glımpses of Bengal lıfe. (1925)
Sen (D. C)—Hıstory of Bengalı Language and Lıterature (Calcutta Unıversıty, 1911).
Sen (D. C.) Eastern Bengal ballads (In 4 Vols.)
Slater (G.)—Dravıdıan Elements ın Indıan Culture (1924)
Stack, (E)—The Mıkırs (1908)
Steel (F. A.)—Tales of the Punjab (London, 1894]
Steın (A)—Hatım's Tales (London, 1923)
Swynnerton (C)—Romantıc Tales from the Punjab. (West mınister, 1903).
Temple (R. C.)—The Legends of the Punjab (1885)

Thurston (E.) – Castes and Tribes of Southern India (in 7 vols.) (Madras, 1909)

Thurston (E.)—Omens and Superstitions of Southern India (London, 1912)

Tod —Annals and Antiquities of Rajasthan (OXFord, 1920)

Toru Dutta—Ancient Ballads and Legends of Hindustan (1882)

Thurston (E)—Ethnographical Notes on Southern India (Madras, 1906)

Waddel—Lamaism

(B) English Folk-lore

I

Collection of Ballads

The Book of British Ballads—Selected & edited by R. Brimley Johnson (Everyman's Library, Dutton & Co. Price (40 cents)

English and Scottish Ballads—Selected & edited by R. Adelaide Witham (Riverside Literature Series, Houghton Miffin Co. Price—50 cents)

A Collection of Ballads—Edited with introduction and Notes by Andrew Lang (Chapman & Hall)

Old English Ballads—Edited by F B Gummere with a learned Introduction & notes. (Athenaeum Press Series, Ginn & Co. N Y. Price 80 cents)

The Oxford book of ballads—By Sir Arther Quiller-Couch (Oxford University Press, London)

English and Scottish Popular Ballads—Edited by Helen Child Sargent and George L. Kittredge. (Student's Cambridge edition in one Volume, Houghton Miffin Co.)

The English and Scottish Popular ballads—Edited by Francis James Child Vols I—V (Houghton Miffin Co)

Cow-boy songs—Collected and edited by John A. Lomax (Sturgis and Walton).

Folk-ballad of Southern Europe—Translated into English verse by Sophie Jewett (G. P. Putnom's Sons)

The Balled of All Nations—by George Borrow (Alston Rivers Ltd. 18 York buildings, Adelphi, W. C. 2, London).

A Collection of old ballads. (1723-25),(with a learned introduction).

Reliques of Ancient English poetry (1765)—Edited by Bishop Tomas Percy (with preface, learned Introduction and critical Essay on the ancient minstrels).

Ancient songs and ballads—(Edited by Joseph Ritson (1790) with introduction etc).

Robin Hood—By Joseph Ritson (1795)

Minstrelsy of the Scottish Border—by Sir Walter Scott, (Vols I–III) 1802–3.

Minstrelsy—Ancient and Modern—by William Motherwell (1827)

Bishop Percy's Folio Manuscript—Vols. I–III and Suppliment (1867-68) by Hales and Furniwall.

II

Critical Books

F. B Gummere—The Beginnings of Poetry (Macmillan & Co 1901).

F. B. Gummere—The Popular Ballad (Archibald Constable & Co. Ltd. London 1907).

F. B Gummere—Chapter on "Ballads" [in Cambridge History of English Literature, Vol. II (1908)]

Walter M. Hart—Ballad and Epic (Harvard Studies and Notes Vol. XI, Ginn & Co. (1907)

Andrew Lang—Article on "Ballad" (in Encyclopeadia Britainica, 1910).

Andrew Lang—Sir Walter Scott and Border Minstrelsy. (Longman's Green & Co.; 1910)

T. F. Handerson—The Ballad in Literature. (Cambridge University Press, 1912).

Frank E. Bryant—A History of English Balladry. (1913).

J. C. H R. Steenstrup—The mediaeval Popular Ballad. Translated from the Danish by E. G. Cox (Ginn & Co. 1914).

Frank Sidwick—The Ballad (The Arts and Craft of Letters Series, G. H. Dorar & Co, 1915).

F. J. Child—Article on "Ballad poetry" (in Universal Cyclopaedia, 1892).

Oliphant Smeaton—Channels of English Literature. Volume on "Heroic poetry,' (Dent Sons; London).

C.H. Herford—The Warwick Library of English Literature. Volume on "Pastorals". (Blackie and Son, London).

A. H. Upham—Typical Forms of English Literature Article on "Ballad." (Oxford University Press, London, 1927).

Chaunecy Sanders—An Introduction to Research in English Literery History. Article on 'Problems in Folklore" by Stith Thomson. (Macmillan & Co, New york).

Andrew Lang—Chamber's Cyclopaedia of English literature (1902) pp 520-

T. F. Henderson—Scottish Vernacular literature (1898) pp. 355

Walter Scott—Minstrelsy (1902) (Introduction portion)

W. M. Hart—Publications of modern Language Association XXI (1906) pp. 755

W. M. Hart—Ballad and Epic

(C) European Folklore

Aubrey (J.)—Remains of Gentilisme and Judaisme. (Folklore Society, 1881)

Black (G. B.)- Folk-medicine (Folklore Society, London, 1883)

Brand (J.)- Observations on Popular Antiquities (London, 1877),

Burton (R)—Anatomy of melancholy (London, 1883)

Campbell (J. S)—Notes on the Spirit basis of belief & Customs (Bombay, 1885)

Chambers (R)--Book of Days. Vol.I-II (London)

Conway (M. D-)—Demonology and Devil--lore (London, 1879)

Cooper (W M)—Flagellation and the Flagellants. (London, 1887)

Cox (G. W)—Introduction to the Science of Comparative Mythology & Folklore, (London,1881)

Cox (G. W.)—Mythology of the Aryan Nations.

Cox (M. R.)—Introductian to Folklore

De Gubernatis (A)—Zoological Mythology or the Legends of animals (London,1872)

Farrer (J A,)—Primitive Manners and Customs (London, 1879)

Frazer (J. G.)—The Golden Bough (12 Vols)

Frazer (J. G.)—The Golden Bough (Abridged edition in one Vol)

Frazer (J G.)—The Belief in Immortality and the worship of the Dead. (3 Vols)

Frazer (J. G)—The Worship of Nature 2 Vols)

Frazer (J. G]—Folklore in the Old Testament. (3 Vols).

Frazer (J. G)—Totemism and Exogamy (4 Vols).

Frazer (J. G-)—Psyche's task.

Goldziher (J)—Mythology among the Hebrews. (London, 1877)

Gordom (Cumming)—From Hebrides to the Himalayas. Vols I-II (London, 1876

Gregor (W.)- Notes on the Folklore of North-east of Scotland (Folklore Society, 1881)

Grimm--Teutonic Mythology (in 4 Vols.) (London 1880-88)

Grimm—House-Hold tales (1884)

Hartland (E S.)—Science of Fairy-Tales (London, 1891)

Hearn (W.E.)—The Aryan Household (London, 1879)

Henderson(W.)—Notes on the Folklore of the Northern Countries of England and the Boarder.

Jacobs (J)—Celtic Fairy Tales

Jacobs (J)—English Fairy Tales

Jones (W) Finger-Ring lore (London, 1877)

Lang (Andrew)—Custom and Myth

Lang (Andrew)—Myth, Ritual and Religion (London, 1887).

Letourneau (C)—Sociology based on Ethnography

Lubbock (J)—Origin of civilisation and Primitive Condition of man (London, 1882)

Robertson-Smith (W.)—Kinship and marriage in early Arabia (Cambridge, 1883)

Scott (Sir W.)—Letters on Demonology and Witch-Craft (London, 1884).

Spencer (H)—Principles of Sociology Vols. I-II (London, 1885)

Starcke (C. N.)—The Primitive Family (London, 1889)

Trumbell (H. C)—The Blood Covenant (1887)

Taylor (E B)—Primitive Culture (2 Vols)

Taylor (E B)—Researches into the early history of Mankind.

Wake (C. S.)—Serpent worship

Westropp (H M)—Primitive Symbolism

Wilde (Lady)—Ancient legends, mystic charms and Superstitions of Ireland (London; 1888)

(D) American Folklore (I)

I—Bibliography.

Ralph, S. Boggs—Folklore Bibliography for 1937 (Southern Folklore Quarterly, March' 38)

Alan Lomax & Sidney Robertson — American Folksong & Folklore · A regional bibliography. (New York, 1942).

Alan Lomax & R U. Seeger — Folk-song : U. S. A New York, 1949)

Maria Leach—Funk and Wagnalls Standard Dictionary of Folklore, mythology and legend, Vol I-II (New york, 1949-50).

Milton Rugoff—A Harvest of World Folklore (New York, 1949)

II—Beliefs and Customs

Clandia de lys—A Treasury of American Superstitions. (Philosophical Library, New york, 1948)

Vance Randolph—Ozark Superstitions. (Columbia University Press, New york, 1947).

III—Folk-Songs

Norman Loyd & M. Bradford Boni — Fire-side book of Folksongs (Simon and Shuster, New york, 1947)

Oline Downes & Elie Siegmeister — A Treasury of American Songs (Alfred A. Knoff, N Y. 1943)

Sylvia & John Kolb—A Treasury of Folksongs (Bantom books, N Y. 1948)

Allan Lomax — Cowboy-songs and other Frontier ballads

John—American Ballads & Folk songs.

R. C. Seeger—Our Singing Country (Macmillian Co. N. Y 1941)

Vance Randolph—Ozark folksongs in 4 Vols. (State Historical Society of Missouri, Columbia 1946-50)

Carl Sandbury—The American song-bag (Harcourt Brace & Co., New York, 1926)

B. A. Botkin—A Handbook of American Folklore.

Roth Crawford Seeger—American Folk songs for children in Home, School & Nursery-School. (U. S A 1948).

IV—Folk-Tales

Stith Thompson—The Folk-tale (The Dryden Press, New york, 1946).

Ben C Clough—The American Imagination at Work (Alfred A. Knoff, N. Y. 1947)

Levette J. Davidson & Forrester Blake — Rocky Mountain tales(University of Oklahoma Press, 1947)

Harold W. Thompson—Body, Boots and Britches. (Philadelphia, J. B. Lippioncott. Co. 1940)

Richard Chose—The Jack tales and grandfather tales. (Boston, 1948)

Marrian Vallet Emarich & Gearge Korson — The Child's book of Folklore The Dial Press, New york (1947)

V—Records of Folk songs

Kolb - A treasury of Folk songs
A. Lomax - Folksongs n U. S. A.
Ben C. Lumpkin—Folk—songs on Records (Boulder, Colorado 1948)

VI—Folklore--Journals.

Journal of American Folklore (Philadelphia)
Newyork Folklore Quarterly.

Southern Folklore Quarterly
(Florida, U. S. A.)
Western Folklore (California).
Midwest Folklore (Indiana, U. S. A.)
Journal of the Texas Folklore society (Austin.)

(D) American Folklore (II)

H M Belden—Ballads and songs Collected by Missouri Folklore soceity (Columbia, Missouri, 1940)
Bary, Eckstrom and Smith—British ballads from Maine (New Haven, 1929)
A. K Davis—Traditional Ballads of Virginia (Cambridge, Mass, 1929)
Cecil Sharp & Karples—English Folk songs from the Southern Appalachians (New york, 1932)
Lomax—American Ballads and folk songs (New york, 1934)
Gerould—The ballad of Tradition (Oxford Unvrersitiy Press, 1932)
Entwistle—European Balladry (Oxford Uni Press, 1939)
Archer Taylor—The Proverb (Cambridge, Mass. 1931)
Stith Thomson—Tales of North American Indians (Combridge, Mass, 1929)
Stith Thompson—Motif Index of Folk literature
{ Aarne—The Types of the folk tale
{ Stith Thomson.
Dixon—Oceanic Mythology (Boston, 1916)



परिशिष्ट (घ)

कुछ प्रसिद्ध विदेशी लोक-संस्कृति परिषदों (Folklore Socities) के नाम और पते

संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रायः प्रत्येक राज्य मे लोक संस्कृति, परिषदों की स्थापना हुई है जो लोक साहित्य और संस्कृति के संग्रह का कार्य बड़े लगन से कर रही हैं। लोक-संस्कृति के प्रेमियों के लिए उनके नाम और पते तथा इन परिषदों के द्वारा प्रकाशित कुछ प्रसिद्ध शोध-पत्रिकाओं की सूची नीचे दी जाती है।

AMERICA

1 *Arkansas*—President—O. E. Rayburn, Secretary—Irene Carlisle, Address-University of Arkansas, Journal—*Arkansas Folklore*

2 Badger State—Pres.-J. J. Macdonald, Sec —J. W Jenkins. Journal—*Badger Folklore.*

3 Canada—Pres Marious Barbeau, Sec. K Peacock. Addr. National Museaum, Canada, Ottawa.

4. California—Pres. R. G Sproul,–Sec., August Fruge, University of California Press, Berkeley. Journal--Western Folklore.

5. New Mexico—Pres. John Arrington, Sec. E W. Banghmar, Journal -New Mexico Folklore Record

6. New york—Pres, -F. M. Warner, Sec. Edith Cutting Journal—New york Folklore Quarterly.

7. Pennsylvania—Pres.—J. F. Henninger Sec.,—G. F Reinert, Journal—Publications of the Pennsylvania German Folklore Society.

8. South-Eastern—Pres., F W. Bradley, Sec.,—Josef Rysan, Journal-Southern Folklore Quarterly.

9. Tennessee—Pres.—G W. Boswell, Sec. W.J. Griffin, Journal—Tennessee Folklore Society Bulletin.

10. West Virginia—Pres., Walter Barnes. Sec. Rut
Arn Musick, Journal-West Virginia Folklor

ENGLAND

11 Folklore Society of England Pres.—M A. Murray
Sec.—H. A. Lake Barnett , Journal—Folklore.
Gower Street, London.

12. The English Folk-Dance and Song Society
Cecil Sharp House.
2 Regent's Park Road ,
London, N. W. 1.

13. International Folk Music Council,
12, Clorane Gardens, London, N. W. 3